प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य - I

एम.ए. (हिंदी) तृतीय सेमेस्टर : पेपर - 1

1 चन्दबरदायी

व्याख्या भाग

1. पृथ्वीराज रासो का पद्मावती-समय

दूहा

1 **पूरब दिस गढ़ गढ़न पति, समुद शिखर अति दुग्ग।**
तहँ सु विजय सुरराज पति, जादू कुलह अभग्ग।।1।।
हसम हयग्गय देस गति, पति सायर म्रज्जाद।
प्रबल भूप सेवहिं सकल, धुनि निसान वहु साद।।2।।

शब्दार्थ–**दुग्ग** = दुर्ग, **म्रज्जाद** = मर्यादा, **हसम** = सेना, **समुद शिखर** = नगर, **गढ़न पति** = किलों में श्रेष्ठ, **जादू कुलह** = यादव वंश, **निसान** = नगाड़ा, **सुरराज** = देवताओं का राजा, **अभग्ग** = दुर्जेय, **धुनि** = ध्वनि, **सायर** = सागर।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि चन्दबरदायी विरचित **'पृथ्वीराज रासो'** के **'पद्मावती-समय'** से लिया गया है। इस ग्रंथ को हिन्दी का प्रथम महाकाव्य भी कहा गया है। यहाँ कवि पद्मावती के पिता राजा विजयपाल के समुद्रशिखर दुर्ग तथा उसके अपार वैभव का वर्णन करता है। इन दोहों के द्वारा 'पद्मावती-समय' की कथा प्रारम्भ होती है।

व्याख्या–इन पंक्तियों में कवि कहता है कि पूरब दिशा में सब दुर्गों का स्वामी समुद्र-शिखर नाम का एक विशाल किला है। वहाँ पर यादव वंश के देवताओं के स्वामी इन्द्र के समान प्रतापी राजा विजयपाल राज्य कर रहा था। उस राजा के पास एक विशाल सेना थी, जिसमें असंख्य हाथी और घोड़े थे। वह समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का राजा था। भाव यह है कि उसका राज्य सम्पूर्ण पृथ्वी पर फैला हुआ था। बड़े-बड़े शक्तिशाली राजा भी उसकी सेवा करते थे। जब उसकी विशाल सेना विजय के नगाड़े बजाती थी, तब उसकी विजय का घोष चारों ओर गूंजता था। भाव यह है कि उसकी विजय के नगाड़े हमेशा बजते रहते थे और उसकी कीर्ति को फैलाते रहते थे।

विशेष–1. यहाँ कवि ने पद्मावती के पिता राजा विजयपाल की सेना, यश आदि का अतिशयोक्तिपूर्ण शैली में वर्णन किया है।

2. समुद्रशिखर की दिशा पूर्व दिशा में बताकर कथानक रूढ़ि का प्रयोग किया गया है।

3. डिंगल-पिंगल भाषाओं का विषयानुसार सार्थक प्रयोग हुआ है।

4. छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास तथा रूपक अलंकारों का सहज और सुन्दर प्रयोग है।

5. दोहा छंद का सफल प्रयोग हुआ है।

6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

2 धुनि निसान बहु साद नाद सुरपंच बजत दिन।
दस हजार हय चढ़त हेम नग जटिल साज तिन।
गज असंख गजपतिय मुहर सेना तिय संखह।
इन नायक का धरी पिनाक धरमर रज रख्खह।
दस पुत्र पुत्रिय एक सम रथ सुरंग उम्मर डमर।
भंडार लक्षिय अगनित पदम सो पदमसेन कुँवर सुघर।।3।।

शब्दार्थ–**पदम** = सौ अरब रुपये की राशि, **मुहर** = सेना का अगला हिस्सा, **हेम** = सोना, **निसान** = नगाड़े, **पिनाक** = शिव-धनुष, **संखह** = संख्या, **उम्मर** = वस्त्र, **सुघर** = सुन्दर, **तिय** = तीन, **नग** = हीरे, **सुरपंच** = पंचम स्वर में।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि चन्दबरदायी द्वारा रचित **'पृथ्वीराज रासो'** के **'पद्मावती-समय'** से लिया गया है। इन पंक्तियों में समुद्रशिखर के राजा विजयपाल की सेना, धन-वैभव तथा उसकी रानी का वर्णन करते हुए कवि पुनः लिखता है–

व्याख्या–राजा विजयपाल के समुद्रशिखर किले में हमेशा उसकी विजय के नगाड़े बजते रहते थे। उन नगाड़ों का घोष सभी दिशाओं में गूंजता रहता था। प्रतिदिन पंचम स्वर में भेरी नाद गूंजता रहता था। राजा के पास एक विशाल सेना थी जिसमें दस हजार घुड़सवार थे। वे सोने तथा हीरे-मोतियों से जड़े हुए सुसज्जित थे। यही नहीं, सेना में अनेक हाथी भी थे। गज सेना के योद्धा जब हाथी पर सवार होकर सेना की अग्रिम पंक्ति में खड़े होते थे तो उनकी संख्या तीन शंख अर्थात् घुड़सवार सेना से तीन गुना थी। राजा स्वयं इस विशाल सेना का सेनापति होता था। वह अपने हाथ में पिनाक धनुष धारण करके सम्पूर्ण पृथ्वी के राज्य की रक्षा करता था। उस राजा विजयपाल के दस बेटे और एक बेटी थी। सभी रूप तथा गुणों में एक समान थे। उनके रथों पर सुंदर लगी ध्वजाएँ आकाश में फहराती रहती थीं। राजा के खजाने में असंख्य पद्म धन भरा हुआ था तथा पद्मसेन नाम की उसकी सुन्दर रानी थी। कहने का भाव है कि राजा विजयपाल के पास अपार सेना व धन-सम्पत्ति थी।

विशेष–1. यहाँ कवि ने वर्णनात्मक शैली अपनाते हुए राजा विजयपाल के धन-वैभव, सैन्य बल तथा उसके परिवार का परिचय दिया है।

2. यमक, अतिशयोक्ति, छेकानुप्रास तथा वृत्यानुप्रास अलंकारों का परिचय दिया है।

3. डिंगल-पिंगल भाषाओं का सार्थक प्रयोग है।

4. कवित्त छंद का सफल प्रयोग है। परन्तु डॉ. हरिनाथ टण्डन ने इसे छप्पय छंद सिद्ध करने का प्रयास किया है।

5. प्रसाद गुण का प्रयोग है।

6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

दूहा

3 पदमसेन कूँवर सुघर, ता घर नाई सुजान।
ता उर इक पुत्री प्रकट, मनहुँ कला ससिभान।।4।।

शब्दार्थ–**पदमसेन कूँवर** = रानी पद्मसेन , **ता** = उसके, **सुजान** = चतुर, **उर** = गर्भ, **ससिभान** = चन्द्रमा के समान।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख हिन्दी के आदिकाल कवि चन्दबरदायी द्वारा रचित **'पृथ्वीराज रासो'** के **'पद्मावती-समय'** से लिया गया है। यहाँ कवि ने राजा विजयपाल की रानी पद्मसेन के गर्भ से उत्पन्न पुत्री पद्मावती की सूचना दी है।

व्याख्या–कवि कहता है कि उस राजा विजयपाल के घर पद्मसेन नाम की एक चतुर और बुद्धिमत्ती रानी थी। उसके गर्भ से चन्द्रकला के समान सुन्दर पुत्री ने जन्म लिया। भाव यह है कि राजा के घर एक बेटी उत्पन्न हुई जो चन्द्रमा के समान बहुत ही सुन्दर और आकर्षक थी।

विशेष–1. यहाँ कवि ने कथा क्रम को आगे बढ़ाने के लिए यह सूचना दी है कि राजा विजयपाल के घर एक सुन्दर पुत्री ने जन्म लिया जो चन्द्रमा की कला के समान बड़ी सुन्दर थी।

2. छेकानुप्रास तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का सुन्दर व स्वाभाविक प्रयोग है।
3. डिंगल तथा पिंगल भाषाओं का स्वाभाविक प्रयोग है।
4. दोहा छन्द का सफल प्रयोग है।
5. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

कवित्त

4 **मनहुँ कला ससि भान कला सोलह सो बन्निय।**
बाज बेस ससिता समीप अमृत रस पिन्निय।
बिगसि कमल मृग भ्रमर बैन खंजन मृग लुट्टिया।
हरि कीर अरु बिम्ब मोति नख-शिख अहि घुट्टिग।
छत्रपति गयंद हरि हंस गति दिह बनाय सचै सचिय।
पदुमिनिय रूप पद्मावतिय मनहुँ काम कामिनि रचिय।।5।। **(Most Imp.)**

शब्दार्थ–सचिय = इन्द्र की पत्नी, **बिम्ब** = लाल रंग का एक फल, **गयंद** = हाथी, **ससि** = चन्द्रमा, **बन्निय** = बनाई गई, **लुट्टिया** = लूट लिया, **मनहुँ** = मानो, **दिह** = विधाता, **अहि घुट्टिग** = बनाया, **पिन्निय** = पिया हो, **बिगसि** = विकसित, **हरि** = तोता।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि चन्दबरदायी द्वारा रचित **'पृथ्वीराज रासो'** के **'पद्मावती-समय'** से लिया गया है। इन पंक्तियों में कवि राजा विजयपाल की बेटी पद्मावती के यौवन तथा रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहता है कि–

व्याख्या–राजा विजयपाल की बेटी पद्मावती इतनी सुंदर थी कि उसे देखकर ऐसा लगता था मानो साक्षात् चन्द्रमा की कला है। जिसका निर्माण चन्द्रमा की सोलह कलाओं से किया गया है। अभी वह कन्या बाल्यावस्था में है। उसकी आयु में जो कांति है उसे देखकर ऐसा लगता है मानो चन्द्रमा ने उसके पास बैठकर अमृतपान किया है। भाव यह है कि उसका सौन्दर्य चन्द्रमा के समान मन तथा आँखों को शांति प्रदान करता है।

कवि पद्मावती के नख-शिख का वर्णन करता हुआ कहता है कि उस सुन्दरी बाला ने खिले हुए कमल, मृग, भ्रमर, वेणु तथा खंजन आदि सभी के सौन्दर्य को लूट लिया है अर्थात् पद्मावती के शरीर की सुगन्ध ने कमलों की सुगन्ध को अंगीकार किया है। नेत्रों ने हिरणों की आँखों को भी जीत लिया है। उसके लम्बे काले बालों ने भ्रमरों के मान को कुचल दिया है। उसका मधुर स्वर मुरली की मधुरता को पराजित करता है और उसके सुन्दर नेत्रों की सजगता एवं चंचलता खंजन पक्षी की चंचलता को भी पराजित करती है। नायिका का गौर वर्ण का शरीर हीरे के समान चमकता है। उसकी नासिका तोते की नासिका के समान है। उसके अधर बिम्बा फल के समान हैं। पद्मावती की मंद-मंद गति को देखकर हाथी, हंस और सिंह भी लज्जित हो जाते हैं और वे कहीं दूर जाकर छिप जाते हैं। उसे देखकर ऐसा लगता है कि विधाता ने पद्मावती को इन्द्र की पत्नी अर्थात् शचि के रूप में बनाया है अर्थात् विधाता ने पद्मावती को एक दूसरी कामदेव की पत्नी बना दिया है। भाव यह है कि पद्मावती इन्द्र की पत्नी शचि और कामदेव की पत्नी रति के समान अद्वितीय सुन्दर है।

विशेष–1. यहाँ कवि ने परम्परागत शैली में पद्मावती के नख-शिख का बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन किया है।
2. छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपक अतिशयोक्ति तथा व्यतिरेक आदि अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।
3. डिंगल-पिंगल भाषाओं का मिश्रित प्रयोग है।
4. शब्द-चयन सर्वथा उचित एवं भावानुकूल है।
5. कवित्त छंद का सफल प्रयोग हुआ है।
6. पद्मावती का नख-शिख वर्णन बड़ा ही सुन्दर, रोचक एवं सरस कहा जा सकता है क्योंकि कवि ने उसके शरीर की तुलना कमल की गंध के साथ, नेत्रों की तुलना हिरणों के नेत्रों के साथ तथा काले बालों की तुलना काले भ्रमरों के साथ और वाणी की तुलना बाँसुरी की मधुरता के साथ की है, बल्कि ये सभी उपमान पराजित से दिखाई देते हैं।

दूहा

5 मनहुँ काम कामिनि रचिय, रचिय रूप की रास।
पशु पंछी सब मोहिनी, सुर नर मुनियार पास।।6।।
सामुद्रिक लच्छन सकल, चौसठ कला सुजान।
जानि चतुरदस अंग षट, रति बसंत परमान।।7।।
सखियन सँग खेलत फिरत, महलनि बान निवास।
कीर इस्क दिष्यिय नयन, तब मन भयौ हुलास।।8।।

शब्दार्थ–**चतुरदस** = चौदह विद्याएँ, **परमान** = प्रमाण, **हुलास** = प्रसन्नता, **सुजान** = प्रवीण, **मुनियार** = श्रेष्ठ मुनि, **मनहुँ** = मानो, **सामुद्रिक** = यह एक प्राचीन शास्त्र है जिसमें नारी के अंगों के आधार पर उनके शुभ-अशुभ का बोध होता है, **अंगषट** = छः वेदांग, शिक्षा, कला, निरुक्त, ज्योतिष, सुन्दर तथा व्याकरण, ये छः वेदांग कहलाते हैं।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि चन्दबरदायी द्वारा रचित **'पृथ्वीराज रासो'** के **'पद्मावती-समय'** से लिया गया है। यहाँ कवि पद्मावती के रूप-सौन्दर्य, उसके अंगों की शोभा तथा उसकी क्रीड़ाओं का वर्णन करते हुए कहता है कि–

व्याख्या–पद्मावती के रूप-सौन्दर्य को देखकर ऐसा लगता है कि विधाता ने रूप की राशि कामदेव की पत्नी रति को अपने सामने रखकर पद्मावती की रचना की है और पद्मावती के रूप में अन्य रति का निर्माण किया है। उसका रूप-सौन्दर्य अति मनोहारी है जो कि सभी पशु-पक्षियों को मोहित कर लेता है। पशु-पक्षियों की तो बात क्या करनी है, मनुष्य और श्रेष्ठ मुनि, देवता भी उसके सौन्दर्य जाल में बंध-से जाते हैं। पद्मावती के शारीरिक अंगों में सभी मंगलकारी सामुद्रिक लक्षण हैं। वह चौंसठ कलाओं में पारंगत है और चौदह विद्याओं की पूर्ण ज्ञाता है। यही नहीं, वह वेदों के छः अंगों व षट् दर्शन की भी ज्ञाता है। वह रति के समान सुन्दर है तथा बसन्त के समान पूर्ण यौवना है। जिस प्रकार बसन्त के आगमन पर सम्पूर्ण पृथ्वी पुष्पित हो उठती है, उसी प्रकार यौवन के आगमन से पद्मावती के सभी अंग सुन्दरता के कारण सुशोभित हो रहे हैं। वह सखियों के साथ राजमहल के उद्यान में क्रीड़ा करती रहती है। एक दिन उसे एक तोता दिखाई दिया जिसे देखकर उसका मन प्रफुल्लित हो उठा।

विशेष–1. यहाँ कवि पद्मावती के रूप-सौन्दर्य तथा गुण-विद्या आदि का प्रभावशाली वर्णन करता है। कवि के अनुसार पद्मावती में सभी लक्षण विद्यमान हैं जिनकी चर्चा सामुद्रिक शास्त्र में की गई है।

2. पद्मावती वेद-वेदांग तथा षट् दर्शन में भी पारंगत थी।
3. इन दोहों में उत्प्रेक्षा, छेकानुप्रास, यमक तथा उपमा अलंकारों का सुन्दर व स्वाभाविक वर्णन हुआ है।
4. डिंगल तथा पिंगल भाषाओं का सुन्दर मिश्रण किया गया है।
5. शब्द-चयन सर्वथा उचित व भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
6. माधुर्य गुण होने के कारण शृंगार रस का परिपाक हुआ है।
7. दोहा छंद का सफल प्रयोग देखा जा सकता है।

कवित्त

6 मन अति भयौ हुलास बिगसि जनु कोक किरन रवि।
अरुन अधर तिय सधर बिम्ब फल जानि कीर छवि।
यह चाहत चख चकृत उह जु तकिय झरप्पि झर।
चंच चहुट्टिय लोभ लियौ तब गहित अप्प कर।
हरषत अनन्द मन महि हुलस लै जु महल भीतर गई।
पंजर अनूप नग मनि जटिल सो तिहिं महँ रप्पत भई।।9।। **(Most Imp.)**

शब्दार्थ–**चहुट्टिय** = झपटना, **तकिय** = ताकना, **तिय** = उसका, **झरप्पि** = झपककर, **बिगसि** = खिलना, **कोक** = कमल, **हुलास** = प्रसन्नता, **चख** = आँखों, **चंच** = चोंच, **अरुन** = लाल।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि चन्दबरदायी द्वारा रचित **'पृथ्वीराज रासो'** के **'पद्मावती-समय'** से लिया गया हैं। जब पद्मावती ने तोते को देखा तो वह अत्यधिक आनन्दित हो उठी। इसी स्थिति का वर्णन करते हुए कवि पुनः लिखता है कि–

व्याख्या–उस तोते को देखकर पद्मावती का मन इस प्रकार आनंदित हो उठा जिस प्रकार सूर्य की पहली किरण का देखकर चकवा प्रसन्न हो उठता है। यहाँ कवि ने एक प्रसिद्ध कवि–समय की ओर संकेत किया है जिसके अनुसार रात्रि होने पर चकवा-चकवी अलग हो जाते हैं और प्रातः होते ही दोनों फिर मिल जाते हैं। पद्मावती के सुन्दर गुलाबी होंठों की कांति को देखकर चकवा उसे बिम्ब फल समझकर उनकी ओर झपटा। दूसरी ओर पद्मावती आश्चर्यचकित होकर उस तोते की ओर देखने लगी। दूसरी ओर बिम्ब फल खाने के लालच में तोते ने पद्मावती के लाल होंठों पर झपटा मारा और अपनी चोंच से उसके होंठों को पकड़ लिया। तभी पद्मावती ने अपना हाथ बढ़ाकर उस तोते को पकड़ लिया। तोते को हाथ में लेकर पद्मावती प्रसन्न हो उठी और उसके मन में आनन्द छा गया। वह प्रसन्नतापूर्वक तोते को लेकर महल में गई। वहाँ महल में सोने तथा रत्न-मणियों से सजा एक पिंजरा था। वहीं पद्मावती ने उस तोते को कैद कर लिया।

विशेष–1. यहाँ कवि ने पद्मावती तथा शुक की क्रिया-प्रतिक्रिया का बड़ा मनोहारी वर्णन किया है।

2. नारी के अधरों को बिम्ब फल बताना एक प्राचीन काव्य परम्परा है।

3. कवि ने चकवे से सम्बन्धित कवि-समय का सुन्दर प्रयोग किया है।

4. अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, भ्रांतिमान तथा श्लेष अलंकारों का सुन्दर व स्वाभाविक प्रयोग है।

5. पिंगल भाषा का सफल प्रयोग है जिसमें अपभ्रंश के सुन्दर शब्दों का मिश्रण किया गया है।

6. माधुर्य गुण होने के कारण शृंगार रस का सुन्दर प्रयोग है।

7. कवित्त छंद का सुन्दर प्रयोग है।

7

तिहि महल रष्षत भाई, गई खेल सब भुल्ल।
चित्त चहुट्टयो कीर सों, राम पढ़ावत फुल्ला।।10।।
कीर कुँवरि तन निरखि दिखि, नख सिख लौं यह रूप।
करता करी बनाय कै, पदामिनी सरूप।।11।।

शब्दार्थ–चहुट्टयो = चिमट गया, **तिहि** = उसे (तोते को), **भुल्ल** = भूलना, **करी** = बनाया, **कै** = कर, **करता** = ब्रह्मा, **फुल्ला** = प्रसन्न होकर, **नख सिख** = पैरों से लेकर सिर की केश-राशि तक।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि चन्दबरदायी द्वारा रचित **'पृथ्वीराज रासो'** के **'पद्मावती-समय'** से लिया गया है। यहाँ कवि ने स्पष्ट किया है कि पद्मावती उस तोते से अत्यधिक प्रेम करने लगी। तोता भी उसके सौन्दर्य को देखकर मन-ही-मन प्रसन्न होने लगा। इस स्थिति का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि–

व्याख्या–पद्मावती ने उस तोते को अपने महल में रख लिया। उसके साथ राजकुमारी का मन इतना रम गया कि वह अपने स्वाभाविक खेल-कूद को भी भूल गई। उसका मन तोते में ही रम गया और वह उसको राम-राम का पाठ पढ़ाकर प्रसन्न रहने लगी। तोते ने भी राजकुमारी के शरीर को नख से लेकर शिख तक और शिख से लेकर नख तक देखा। वह मन-ही-मन सोचने लगा कि विधाता ने पद्मावती के सुन्दर रूप का बड़ी रुचि के साथ निर्माण किया है। भाव यह है कि तोता पद्मावती के रूप-सौन्दर्य को देखकर अत्यधिक प्रभावित हो उठा।

विशेष–1. यहाँ कवि ने तोते के प्रति पद्मावती के मोह का बड़ा सुन्दर व स्वाभाविक वर्णन किया है।

2. तोते द्वारा पद्मावती को देखकर उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होना और विधाता की प्रशंसा करना कवि की सुन्दर कल्पना का परिचायक है।

3. यहाँ कवि ने काव्यशास्त्रीय पद्धति अपनाते हुए पद्मिनी नायिका के रूप में पद्मावती का सुन्दर वर्णन किया है।

4. डिंगल-पिंगल भाषा का सुन्दर मिश्रण है।

5. शब्द-चयन प्रसंगानुकूल व पात्रानुकूल है।

6. माधुर्य गुण होने के कारण शृंगार रस का सुन्दर परिपाक हुआ है।

7. अनुप्रास तथा लुप्तोपमा अलंकारों का सुन्दर प्रयोग है।

8. दोहा छंद का सफल प्रयोग है।

कवित्त

8

कुट्टिल केस सुदेस पौहुप रचियत पिक्क सद।
कमल गंध वय संध हंस गति चलत मंद मंद।
सेत वस्त्र सोहै सरीर नख स्वाति बुन्द जस।
भमर भँवहि भुल्लहि सुभाव मकरंद बास रस।
नैन निरखि पाय सदिन मूरति रचिय।
उमा प्रसाद हर हेरियत मिलहि राज प्रथिराज जिय।।12।।

(Imp.)

शब्दार्थ–**भँवहि** = भ्रमण करना, चक्कर काटना, **कुट्टिल** = घुंघराले, **सुदेश** = सुंदर, **भुल्लहि** = भूलकर, **नख** = नाखून, **सदिन** = शुभ दिन, **पौहुय** = पुष्प, **निरखि** = देखना, **पिक्क** = कोमल, **सद** = शब्द।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि चन्दबरदायी द्वारा रचित **'पृथ्वीराज रासो'** के 'पद्मावती-समय' से अवतरित है। यहाँ कवि ने नायिका के सौंदर्य तथा उसकी वयः संधि का बड़ा ही सरस और मनोहारी वर्णन किया है।

व्याख्या–कवि लिखता है कि पद्मावती के केश बड़े घुंघराले और कोमल थे। उसने फूलों से अपने केशों को सजाया हुआ था। उसकी वाणी कोयल की वाणी के समान बड़ी मधुर और मनमोहक थी। ऐसी पद्मावती कमल गन्धा थी अर्थात् उसके शरीर से कमलों की सुगन्धि आती थी। वह वयःसंधि को प्राप्त कर चुकी थी अर्थात् न तो अभी उसमें पूर्ण यौवन का आगमन हुआ था और न ही उसका बचपन समाप्त हुआ था। हंस की गति के समान वह धीरे-धीरे चलती थी। उसके शरीर पर श्वेत वस्त्र सुशोभित हो रहे थे। उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानो उसके वस्त्र स्वाति नक्षत्र की बूँद अथवा मोती के समान उज्ज्वल एवं सुंदर हैं। उसके शरीर से उत्पन्न होने वाली गंध से भ्रमर स्वाभाविक रूप से उसके चारों ओर मंडराते थे। भौंरे स्वभाव से बड़े चंचल होते हैं। वे किसी एक फूल पर टिक कर नहीं बैठते परंतु अपनी चंचलता को भूलकर वह पद्मावती के शरीर के चारों ओर चक्कर लगाते रहते थे। पद्मावती के अपूर्व सौंदर्य को देखकर तोता प्रसन्न होकर मन में सोचने लगा कि परमात्मा ने सौंदर्य की एक साक्षात् प्रतिमा को किसी शुभ घड़ी में ही रचा है। तत्पश्चात् वह तोता शिव तथा पार्वती का मन-ही-मन ध्यान करने लगा और उनसे प्रार्थना करने लगा कि यह सुंदर नारी पृथ्वीराज को ही प्राप्त हो। भाव यह है कि वह मन-ही-मन पद्मावती और पृथ्वीराज की शादी के लिए शिव-पार्वती की स्तुति करने लगा।

विशेष–**1.** यहाँ कवि ने नायिका के केश तथा उसकी चाल का बड़ा ही सुंदर वर्णन किया है।

2. वयःसंधि को प्राप्त पद्मावती के सौंदर्य का आकर्षक वर्णन किया गया है।

3. 'उमा प्रसाद' शब्द का प्रयोग करके कवि ने उस परंपरा की ओर संकेत किया है जिसके अनुसार हिंदू धर्म को मानने वाली युवतियाँ मनचाहा वर पाने के लिए पार्वती जी की पूजा करती हैं।

4. अनुप्रास तथा भ्रांतिमान अलंकारों का सहज एवं स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

5. सहज, सरल तथा भावानुकूल पिंगल भाषा का प्रयोग है।

6. माधुर्य गुण होने के कारण शृंगार रस का परिपाक है।

7. कवित्त छंद का सुंदर प्रयोग हुआ है।

9

सुक समीप मन कुँवरि को, लग्यो बचन के हेत।
अति विचित्र पंडित सुआ, कथत जु कथा अनेक।।13।।
पुच्छत बचन सु बाले उच्चरिय कीर सच्च सच्चाये।
कवन नाम तुम देस कवन मंद करय परवेस।।14।।
उच्चरिय कीर सुनि बचनं हिन्दवान दिल्ली गढ़ अयनं।
तहाँ इन्द्र अवतार चहुआनं तहं प्रथिराजह सूर सुभारं।15।।

शब्दार्थ–**अयनं** = घर, **सच्चाये** = सच-सच, **कवन** = कौन, **पुच्छत** = पूछती है, **बचन** = बचना, **लग्यो** = लग जाना, **सुभारं** = शक्तिशाली, **बचन के हेत** = मीठी-मीठी बातें सुनने के लिए, **सु बाले** = सुंदर युवती।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि चन्दबरदायी द्वारा रचित 'पृथ्वीराज रासो' के 'पद्मावती-समय' से अवतरित है। प्रस्तुत पद्यांश में कवि स्पष्ट करता है कि पद्मावती तोते के मुख से आलौकिक प्रशंसित हो गई और वह उससे कुछ प्रश्न पूछने लगी। इसी स्थिति का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि

व्याख्या–उस तोते के पास रहते हुए पद्मावती का मन उसकी बातों में लग गया और वह तोते की ओर आकर्षित हो गई। दूसरी ओर तोता भी बड़ा ही विचित्र विद्वान था। उसके पास ज्ञान का भंडार था और वह पद्मावती को अनेक प्रकार की कहानियाँ सुनाने लगा। उस सुंदर नारी पद्मावती ने तोते से पूछा–हे शुक! तुम मुझे सच-सच बताओ, तुम्हारा नाम क्या है और तुम्हारा देश कौन-सा है तुम मुझे यह भी बताओ कि तुम्हारे देश का राजा कौन है। पद्मावती के प्रश्नों को सुनकर तोता कहने लगा कि हिन्दुस्तान में दिल्लीगढ़ नाम का एक नगर है। वहाँ पर इन्द्र का अवतार तथा चौहान वंश में उत्पन्न शूरवीर राजा महाराज पृथ्वीराज है। वहीं दिल्ली के राजा हैं। भाव यह है कि पद्मावती के पूछने पर तोते ने उसे दिल्ली नगर तथा वहाँ के शूरवीर राजा पृथ्वीराज का परिचय दिया।

विशेष–1. यहाँ कवि ने कथाक्रम को आगे बढ़ाने के लिए गाथा छंद का सफल प्रयोग किया है।

2. अनुप्रास अलंकार का सफल प्रयोग हुआ है।

3. सहज तथा सरल, बोधगम्य पिंगल का प्रयोग किया गया है तथा शब्द-चयन सर्वथा उचित और भावानुकूल है।

4. संवाद शैली का सफल प्रयोग हुआ है।

5. तोते के माध्यम से पृथ्वीराज चौहान की वीरता पर प्रकाश डाला गया है।

6. माधुर्य गुण का प्रयोग है।

10

पद्मावति कुंवरी संघत, दुज कथा कहत सुनि–सुनि सुवत।।16।।
हिन्दवान थान उत्तम सुदेस, तहँ उदित द्रुग्ग दिल्ली सुदेस।।17।।
संभार नरेस चहुआँन थान, प्रथिराज तहाँ राजंत भान।।18।।

शब्दार्थ–**संघत** = साथ, **सुवत्त** = सुंदर कथाएँ, **उदित** = प्रसिद्ध, **द्रुग्ग** = स्थान, किला, **थान** = स्थान, **दुज** = पक्षी, **संभर** = झील के पास का क्षेत्र, **राजंत** = सुशोभित, **भान** = सूर्य।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि चन्दबरदायी द्वारा रचित 'पृथ्वीराज रासो' के 'पद्मावती-समय' से अवतरित है। यहाँ शुक पद्मावती की जिज्ञासा को शांत करते हुए पृथ्वीराज के बारे में सूचना देता है।

व्याख्या–पद्मावती के पास आकार तोता उससे कहता है कि मेरी बात को ध्यान से सुनो। मैं तुम्हें उस पृथ्वीराज की कथा सुनाता हूँ। शुक पृथ्वीराज की महिमा का गान करते हुए कहता है कि हिंदुस्तान एक श्रेष्ठ और सुंदर देश है। वहीं पर दिल्ली दुर्ग नाम का एक प्रसिद्ध स्थान है। यह चौहान वंश के सांभर राजाओं का सर्वश्रेष्ठ किला है। सांभर वंश के सूर्य के समान महाराज पृथ्वीराज वहीं पर सुशोभित हैं अर्थात् पृथ्वीराज ही दिल्ली गढ़ के राजा हैं।

विशेष–1. यहाँ कवि ने पृथ्वीराज के वंशजों को सांभर इसलिए कहा है क्योंकि उनके पूर्वज सांभर झील के आस-पास रहते थे।

2. यह पद्य पद्मावती-समय के कथाक्रम को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ है।

3. अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश तथा उपमा अलंकारों का सहज तथा स्वाभाविक प्रयोग है।

4. डिंगल तथा पिंगल भाषा का सहज प्रयोग हुआ है।

5. ओजगुण तथा वीर रस का परिपाक है।

6. पद्धरि छंद का सफल प्रयोग हुआ है।

11

बैसह बरीस षोड़स नरिंद,
आजानु बाहु भुअ लोक यन्द।।19।।
संभरि नरेस सोमेस पूत,
देवंत रूप अवतार धूत।।20।।

सामंत सूर सब्बै आपार,
भूजान भीम जिम सार भार।।21।।
जिहि पकरि साह साहब लीन,
तिहुँ बेर करिय पानीप हीन।।22।।

शब्दार्थ–बेर = बार, देवंत = देवता के समान, नरिन्द = नरेन्द्र, बाहु = भुजा, पूत = पुत्र, लीन = लिया, तिहुँ = ती... सब्बै = सब, आजानु = घुटनों, षोड्स = सोलह, बैसह = आयु, वयस, सार = लोहा, भीम = भीषण, जिहि = जिसने, पानी... = तेज, यंद = इंद्र, धूत = पराक्रमी।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि चन्दबरदायी द्वारा रचित **'पृथ्वीराज रासो'** के **'पद्मावती-समय'** से अवतरित है। यहाँ तोता पद्मावती के समक्ष पृथ्वीराज की वीरता तथा उसके गुणों का वर्णन करता है।

व्याख्या–पृथ्वीराज की आयु सोलह वर्ष की है। परंतु उसकी भुजाएँ घुटनों तक लंबी हैं। वह इस पृथ्वी लोक पर देवताओं के स्वामी इंद्र के समान शक्तिशाली है। वह सांभर नरेश सोमेश्वर का पुत्र है। उसे देखकर ऐसा लगता है मानो देवताओं ने ही पृथ्वीराज के रूप में पृथ्वी पर अवतार धारण किया है। पृथ्वीराज चौहान के सभी सामंत और मंत्री बड़े शूरवीर और अपार शक्ति के भण्डार हैं। पृथ्वीराज की भुजाओं में भीम की भुजाओं जैसा बल है। ऐसा लगता है मानो पृथ्वीराज अपनी बलशाली भुजाओं के द्वारा संपूर्ण पृथ्वी के भार को उठाने में सक्षम हैं। उसी पृथ्वीराज ने तीन बार शहाबुद्दीन गौरी को पराजित करके बंदी बनाया और उसे तेजहीन कर दिया।

विशेष–1. यहाँ कवि ने तोते के द्वारा पृथ्वीराज के स्वरूप, उसके गुणों तथा वीरता का वर्णन किया है।

2. अनुप्रास तथा उपमा अलंकारों का सुंदर तथा स्वाभाविक प्रयोग किया है।

3. डिंगल-पिंगल भाषा का सहज प्रयोग है। शब्द-चयन सर्वथा उचित तथा भावानुकूल है।

4. ओजगुण होने के कारण वीर रस का सुंदर परिपाक है।

5. पद्धरि छंद का प्रयोग किया गया है।

6. **टिप्पणी**–प्राचीन काल में सांभर और अजमेर बड़ा ही शक्तिशाली राजा था। पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर इसी क्षेत्र के राजा थे।

12 सिंगिनि सुसद्द चढ़ि जंजीर,
चुक्कै न सबद बेधंत तीर।।23।।
बल बैन करन जिमि दान पान,
सतसहस सील हरिचँद समान।।24।।
साहस सुक्रम विक्रम जु वीर,
दानव सुमत अवतार धीर।।25।।
दिस च्यार जानि सब कला भूप,
कंद्रप्प जानि अवतार रूप।।26।।

शब्दार्थ–**सिंगिनि** = धनुष की डोर,. **कन्द्रप्प** = कामदेव, **सुसद्द** = टंकार, **करन** = महाभारत का प्रसिद्ध दानवीर कर्ण, **बैन** = एक दानी राजा, **बेधन्त** = बेध देती है, **बल** = राजा।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि चन्दबरदायी द्वारा रचित **'पृथ्वीराज रासो'** के **'पद्मावती-समय'** अध्याय में से अवतरित है। यहाँ तोता पृथ्वीराज की शूरवीरता का वर्णन करते हुए स्पष्ट करता है कि वह अचूक निशाना लगाने तथा शब्दभेदी बाण चलाने में अत्यंत निपुण हैं।

व्याख्या–तोता पृथ्वीराज की वीरता का वर्णन करते हुए पद्मावती से कहता है कि पृथ्वीराज के धनुष पर लोहे के जंजीर की डोरी चढ़ी रहती है। वे शब्दबेदी बाण चलाने की कला में निपुण हैं और उनका निशाना कभी नहीं चूकता। दानशीलता में वह

राजा बलि, बेन राजा तथा कर्ण के समान हैं। श्रेष्ठ कर्म करने में वह राजा विक्रमादित्य के समान हैं और सत्य तथा शील का आचरण करने में वह राजा हरिश्चन्द्र के समान हैं। पृथ्वीराज में दैत्य के समान बड़ा ही भयंकर भुजबल है। वह चौदह विद्याओं में निपुण हैं और कामदेव के समान सुंदर हैं। ऐसा लगता है कि मानो साक्षात् कामदेव ने ही पृथ्वीराज के रूप में अवतार लिया हो। कहने का भाव यह है कि पृथ्वीराज चौहान एक बड़ा ही वीर, दानी और सुंदर राजा था।

विशेष–1. यहाँ कवि ने स्पष्ट किया है कि पृथ्वीराज शब्दबेदी बाण चलाने में निपुण था। इतिहास की दृष्टि से यह सत्य है।

2. तोते ने पद्मावती को नायक पृथ्वीराज के मानवीय गुणों का परिचय दिया है और स्पष्ट किया है कि सत्यवादी, सुशील तथा महादानी होने के साथ-साथ वह एक पराक्रमी योद्धा भी था।

3. अनुप्रास, उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का सहज एवं स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

4. डिंगल-पिंगल भाषा का सहज एवं स्वाभाविक प्रयोग है। शब्द-चयन सर्वथा उचित तथा सटीक है।

5. ओजगुण होने के कारण शृंगार रस का परिपाक हुआ है।

6. पद्धरि छंद का सफल प्रयोग हुआ है।

13 **कामदेव अवतार हुअ, सुअ सोमेसर नन्द।**
सहस किरन झलमल कमल, रिति समीप वर विन्द।।27।।
सुनत श्रवन प्रथिराज जस, उमग बाल विधि अंग।
तन-मन चित चहुवाँन पर, बस्यो सु सत्तह रंग।।28।।
बेस बिती ससि ता सकल, आगम कियो बसंत।
मात पिता चिंता भई, सोधि जुगति कौ कंत।।29।।

शब्दार्थ–**सुअ** = सुत, पुत्र, **नंद** = राजा, **सहस किरन** = सूर्य, **विन्द** = पति, **श्रवन** = श्रवण, **सुत्तह** = प्रेम, **कंत** = वर।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि चन्दबरदायी द्वारा रचित **'पृथ्वीराज रासो'** के **'पद्मावती-समय'** से अवतरित है। यहाँ तोता एक बार पुनः पृथ्वीराज के बारे में पद्मावती को बताता हुआ कहता है कि–

व्याख्या–राजा सोमेश्वर का पुत्र पृथ्वीराज कामदेव के अवतार के समान प्रकट हुआ। इसीलिए वह बड़ा ही सुंदर है। सूर्य की किरणों के समान वह दिव्यमान है। पृथ्वीराज कमलों को प्रफुल्लित करने वाले हजारों किरणों से सुशोभित चमकते हुए सूर्य के समान तेजस्वी है। वह रति के पास स्थित उसके पति कामदेव के समान सुंदर और आकर्षित है। इस प्रकार पृथ्वीराज चौहान की वीरता और यश को सुनकर पद्मावती के सभी अंग उमंगित हो उठे और उसके शरीर से रोमांच उत्पन्न हो गया। वह शरीर, मन और हृदय से पृथ्वीराज से प्रेम करने लगी। भाव यह है कि पद्मावती पृथ्वीराज के प्रेम के रंग में रंग गई। कवि पुनः कहता है कि पद्मावती की बाल्यावस्था व्यतीत हो गई थी। अब उसके शरीर में बसंत अर्थात् यौवन का आगमन होने लगा था। वह वयःसंधि को त्यागकर नवयौवना बन गई। यह देखकर उसके माता-पिता को चिंता होने लगी और उन्होंने निर्णय किया कि अब इसके लिए योग्य वर की खोज करनी चाहिए।

विशेष–1. यहाँ कवि ने पृथ्वीराज के सौंदर्य के साथ-साथ उसके गुणों का भी वर्णन किया है जिससे पद्मावती उसे प्रेम करने लगे।

2. पद्मावती के रोमांच आदि भावों का सुंदर चित्रण किया है।

3. कवि ने इस सामाजिक सत्य का भी उद्घाटन किया है कि जब एक माँ-बाप की बेटी जवान होती है तो माँ-बाप को उसकी शादी की चिंता होती है और वे योग्य वर खोजने लगते हैं।

4. अनुप्रास तथा रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

5. सहज, सरल तथा साहित्यिक डिंगल-पिंगल भाषा का प्रयोग है।

6. माधुर्य गुण है तथा शृंगार रस का परिपाक है।

14 सोधि जगति का कंत कियौ तब चित्त चहौं दिस।
लयौ विप्र गुर बोल कही समझाय बात तस।
नर नरिंद नरपती बड़े गढ़ द्रुग्ग असेसह।
सीलवन्त कुल सुद्ध देहु कन्या सु नरेसह।
तद चलन देहु दुजह लगन लगुन बन्द दिय अप्प तन।
आनँद उछाह समुदह सिपर बजत नह नीसान घन।।30।।

शब्दार्थ–उछाह = उत्साह, घन = मेघ, नह = नाद, नीसान = नगाड़े, अप्प तन = स्वयं, बन्द = वंदना, लगन = ... सोधि = शोध करना, ढूंढना, नरेसह = नरेश को, असेसह = अशेष, पूर्णरूप से शक्तिशाली, चहौं दिस = चारों दिशाओं में।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि चन्दबरदायी द्वारा रचित 'पृथ्वीराज रासो' के 'पद्मावती-स... से अवतरित है। पद्मावती के यौवनावस्था को देखकर उसके पिता विजयपाल को बड़ी चिंता हुई और उसने पुरोहित को ... योग्य वर खोजने को कहा। इसी स्थिति का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि–

व्याख्या–पद्मावती के माता-पिता ने अपनी बेटी के लिए योग्य वर पाने के लिए अपने मन को सभी दिशाओं में दौड़... अर्थात् उन्होंने यह पता लगाने का प्रयास किया कि आसपास के राजाओं में कौन-सा ऐसा राजा है जो उसकी बेटी के योग्य... इस विषय के बारे में सोचने के बाद उन्होंने अपने कुल पुरोहित को बुलाया और उसको सारी बात समझाकर कहने लगे–हे पुरो... जी! जो सब राजाओं का स्वामी हो और बड़े-बड़े किलों पर जिसका अधिकार हो, जो अपनी जनता में प्रिय हो, जो ऊँचे ... जन्मा हो तथा बड़ा शीलवान और चरित्रवान व्यक्ति हो, ऐसे किसी राजा के साथ हमारी बेटी पद्मावती का लगन निश्चित... दो। इसके बाद राजा विजयपाल ने पुरोहित की पूजा करके और लगन की सारी सामग्री देकर विदा कर दिया। मन-ही-मन... शुभ शकुनों को जानकर स्वस्थ हो गए कि पुरोहित इस कार्य में अवश्य सफल होगा। पद्मावती के बारे में यह सूचना मिलते... संपूर्ण राज्य में आनंद की लहर दौड़ गई और नगाड़े बजने लगे मानो आकाश में काले बादल गर्जना कर रहे हों।

विशेष–1. यहाँ कवि ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है और विवाह के योग्य कन्या के माता-पिता का स्वाभा... चिंतन किया है।

2. संपूर्ण पद्य में अनुप्रास अलंकार का स्वाभाविक प्रयोग है।

3. डिंगल-पिंगल भाषा का स्वाभाविक प्रयोग है तथा शब्द-चयन सर्वथा उचित तथा भावानुकूल है।

4. कवित्त छंद का प्रयोग हुआ है।

5. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

दूहा

15 सवा लष्ष उत्तर सयल, कमऊँ गढ़ दूरङ्ग।
राजत राज कुमोदमनि, हय गय द्रिब्ब अभंग।।31।।
नारिकेलि फल परठि दुज, चौक पूरि मनि मुत्ति।
दई जु कन्या! वचन बर, अति अनन्द करि जुत्ति।।32।।

शब्दार्थ–**अभंग** = अत्यधिक, **चौक पूरि** = चौक पूरकर, **मनि** = मोती, **सवा लष्ष** = शिवालिक, **कमऊँ** = कुमायूँ, **द्रिब** = वैभव, **राजत** = शोभित, **नारिकेलि** = नारियल, **हय** = घोड़े।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि चन्दबरदायी द्वारा रचित महाकाव्य, 'पृथ्वीराज रासो' के **'पद्मावती-समय'** से अवतरित है। 'पद्मावती-समय' में कवि ने पृथ्वीराज चौहान तथा पद्मावती के विवाह का वर्णन करते... युद्धों का सजीव वर्णन किया है।

व्याख्या–राजा विजयपाल द्वारा भेजे गए राजपुरोहित ने पद्मावती के लिए वर ढूँढ़ा। उसके सम्बन्ध में कवि कहता है कि राजपुरोहित ने हिमालय पर्वत की शिवालिक की श्रेणियों में कुमायूँ नाम का जो दुर्ग ढूँढ़ा, वहाँ पर कुमोदमणि नामक राजा राज्य करता था जिसके पास असंख्य हाथी एवं घोड़ों की सेना थी और उसके पास अपार वैभव था। वहाँ पहुँचकर राज पुरोहित ने मणियों तथा मोतियों के राजमहल का चौक पूर दिया और उस पर नारियल की स्थापना कर दी। इस प्रकार अत्यधिक प्रसन्न होकर उस राजपुरोहित ने विधि-विधान पूर्वक राजा कुमोदमणि के साथ पद्मावती की सगाई कर दी। भाव यह है कि राजपुरोहित ने राजा कुमोदमणि को वर के रूप में चयन कर लिया और उसके साथ पद्मावती की सगाई भी पक्की कर दी।

विशेष–1. यहाँ कवि कुमायूँ के राजा कुमोदमणि के धन वैभव तथा उसकी सेना का अतिशयोक्तिपूर्ण शैली में वर्णन करता है और साथ ही कवि ने राजा कुमोदमणि के साथ पद्मावती की सगाई का परम्परागत रूप से वर्णन किया है।

2. अनुप्रास तथा श्लेष अलंकारों का सुन्दर व स्वाभाविक वर्णन है।

3. सगाई के लिए परम्परागत मांगलिक अनुष्ठानों की चर्चा की गई है।

4. डिंगल तथा पिंगल भाषा का सहज प्रयोग है तथा भावानुकूल शब्दों का चयन किया गया है।

5. दोहा छंद का सफल प्रयोग हुआ है।

6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

भुजङ्गप्रयात

16 **बिहसित बरं लगन लिन्नौ नरिदं,**
बजी द्वार द्वारं सु आनन्द दुंद।।33।।
गढंन गढ़ं पत्ति सब बोलि नुत्ते,
सबं आइयं भूप कटु बंस जुत्ते।।34।।
चले दस साहस्सं असव्वार जानं,
पूरियं पैदलं तेतीस थानं ।।35।।

शब्दार्थ–**कटुं** = कुटुम्ब, **जानं** = बारात, **नरिदं** = नरेन्द्र राजा, **लिन्नौ** = ले लिया, **बिहसित** = हँसते हुए, **नुत्ते** = निमंत्रित।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि चन्दबरदायी द्वारा रचित महाकाव्य, **'पृथ्वीराज रासो'** के **'पद्मावती-समय'** से अवतरित है। इसके रचयिता **चन्दबरदायी** हैं। यहाँ कवि राजा कुमोदमणि के यहाँ सगाई के फलस्वरूप उत्पन्न हर्ष और उल्लास का वर्णन करते हुए कहता है कि–

व्याख्या–राजा कुमोदमणि ने प्रसन्नतापूर्वक इस लग्न अर्थात् सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया और सगाई का तिलक ले लिया। वहाँ घर-घर खुशियों के बाजे बजने लगे। उसने सभी राजाओं को विवाह में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया। वे राजा भी परिवार सहित राजा कुमोदमणि के यहाँ पधारे। दस हजार घुड़सवार इस बारात में शामिल हुए और सैनिक 33 डेरों में पड़ाव डालते हुए बारात के साथ चलने लगे।

विशेष–1. यहाँ कवि ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग करते हुए कुमायूँ नरेश तथा वहाँ के नागरिकों की प्रसन्नता का प्रभावशाली वर्णन किया है।

2. कवि ने बारात के प्रस्थान का भी समुचित वर्णन किया है।

3. अनुप्रास तथा पुनरुक्ति प्रकाश अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

4. डिंगल-पिंगल भाषा का मिश्रित प्रयोग है तथा शब्द-चयन सर्वथा उचित व भावानुकूल है।

5. भुजंग प्रयात छंद का सफल प्रयोग है।

6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

17 मंद गल्लितं मत्त सै पंच दंती,
मनो साम पाहार बुग पंति पंती। ।36।।
चलै अग्गि तेजी जु तत्ते तुखारं,
चौबरं चौरासी जु साकत्ति भारं। ।37।।
नगं कंठ नूपं अनूपं सु लालं,
रंगं पंच रंगं ढलक्कंत ढालं। ।38।।

शब्दार्थ–बुग पंति पंती = बगुलों की पंक्ति, **दंती** = हाथी, **चौबरं** = कलगी, **साकत्ति** = शक्ति, **ढलक्कंत** = हिलना, **साम** = श्याम, **मंद** = हाथियों के मस्तक पर बहने वाला जल, **तत्ते** = तीव्र, **चौरासी** = घोड़ों के गले में पहनाने वाली माला, **पाहार** = पर्वत, **तुखारं** = घोड़े, **गल्लितं** = बिखर रहा था।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि चन्दबरदायी द्वारा रचित महाकाव्य, 'पृथ्वीराज रासो' के 'पद्मावती-समय' खण्ड से अवतरित है। इसके रचयिता **चन्दबरदायी** हैं। यहाँ कवि राजा कुमोदमणि की बारात का वर्णन करता हुआ पुनः कहता है कि–

व्याख्या–पद्मावती की आई हुई बारात में पाँच सौ विशाल हाथी चल रहे थे। हाथियों के मस्तकों से मंदधारा बह रही थी। ऐसा लग रहा था मानो वे काले-काले पहाड़ या काले-काले बादल हैं जिनके ऊपर बगुलों की पंक्तियाँ उड़ रही थीं। बारात के आगे-आगे तेज गति से दौड़ने वाले तुखारी घोड़े दौड़ रहे थे, जिनके सिर पर कलगियाँ थीं और गलों में घुंघरूओं की माला सुशोभित हो रही थीं। उन घोड़ों में बड़ी शक्ति थी। अनूठे हीरे-मोतियों से जड़ी हुई कंठियाँ घोड़ों के गले में सुशोभित हो रही थीं। घोड़ों की पीठ पर रखी पंचरंगी लोहे की ढालें उनके चलने से हिल रही थीं। इस प्रकार यह बारात हाथी-घोड़ों से सुशोभित होकर आगे बढ़ रही थी।

विशेष–1. यहाँ कवि ने बारात में चलने वाली पैदल सेना, गज सेना और अश्व सेना का बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन किया है।
2. अनुप्रास तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।
3. डिंगल-पिंगल भाषा का सहज एवं स्वाभाविक प्रयोग है तथा वर्णनात्मक शैली है।
4. भुजंग प्रयात छंद का सफल प्रयोग है।
5. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

18 सुरं पंच साबद्द वाजित्र बाजं,
सहस्सं सहनाय थमृग मोहि राजं। ।39।।
समुद्र सिर सिखर उच्छाह छाहं
रचित मढएँ तारनं श्रीयगाहं। ।40।।
पदमावली विलखि कर बाल बेली,
कही कीर सौं बाल तब होइ केली। ।41।।
झटं जाहु तुम्ह कीर दिल्ली सुदेसं,
बरं चाहुआनं जु आनौ नरेसं। ।42।।

शब्दार्थ–बाल बेली = युवती, **आनौ** = ले आओ, **पंच** = पाँच प्रकार के वाद्य यन्त्र, **तारनं** = बन्दनवार, **वाजित्र** = बाजे, **विलखि** = व्याकुल होना, **श्रीयगाहं** = अत्यधिक शोभा, **सहनाय** = शहनाई, **साबद्द** = शब्द, ध्वनियाँ, **कीर** = तोता।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि चन्दबरदायी द्वारा रचित महाकाव्य, 'पृथ्वीराज रासो' के 'पद्मावती-समय' से अवतरित है। इसके रचयिता **चन्दबरदायी** हैं। प्रथम दो छंदों में पद्मावती की बारात में बजने वाले वाद्यों की ध्वनि का वर्णन किया गया है तथा अंतिम दो छंदों में राजकुमारी की व्याकुलता का वर्णन है जो तोते को पृथ्वीराज के पास भेजती है।

व्याख्या–कवि बारात का वर्णन करते हुए कहता है कि पाँच प्रकार के संगीत के वाद्य यंत्र बज रहे थे। इस मंगलमय अवसर पर हजारों शहनाइयाँ बज रही थीं, जिनकी मधुर ध्वनि सुनकर मृग भी मोहित हो रहे थे। संपूर्ण समुद्रशिखर में उत्साह और आनंद का वातावरण छाया हुआ था। वहाँ पर बड़े ही सुंदर मंडप बने हुए थे और बन्दनवारों की शोभा बड़ी ही आकर्षक थी। राजा कुमोदमणि की बारात देखकर राजकुमारी पद्मावती व्याकुल हो गई और उसने तोते को एकांत में बुलाकर कहा हे तोते! तुम जल्दी से सुंदर देश दिल्लीगढ़ जाओ और उस प्रतापी राजा पृथ्वीराज चौहान को लेकर आओ।

विशेष–1. यहाँ कवि ने एक ओर तो बारात के अवसर पर वाद्य यंत्रों की मधुर ध्वनि का वर्णन किया है और दूसरी ओर राजकुमारी की चिंता का वर्णन किया है जो पृथ्वीराज चौहान से विवाह करना चाहती है।

2. संदेशवाहक के रूप में तोते को दिल्ली भेजना काव्य रूढ़ि का सुंदर प्रयोग है।

3. अनुप्रास अलंकार का स्वाभाविक उपयोग है।

4. डिंगल-पिंगल भाषा का सहज उपयोग है तथा शब्द-चयन सर्वथा उचित तथा भावानुकूल है।

5. भुजंग प्रयात छंद का सफल प्रयोग हुआ है।

6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

दूहा

19 **आनों तुम्ह चहुआन वर, अरु कहि इहै सँदेस।**
साँस सरीरहि जो रहे, प्रिय प्रथिराज नरेस।।43।।

शब्दार्थ–**इहै** = यह, **अरु** = और, **कहि** = कहो, **साँस** = सास, **सरीरहि** = शरीर में।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश आदिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि चन्दबरदायी द्वारा रचित महाकाव्य, **'पृथ्वीराज रासो'** के **'पद्मावती-समय'** से अवतरित है। यहाँ कवि ने उस स्थिति का वर्णन किया है जब कुमोदमणि की बारात समुद्र शिखर की ओर चल पड़ती है। पद्मावती तोते को दिल्ली जाकर पृथ्वीराज को लाने का आग्रह करती है।

व्याख्या–हे तोते! तुम मेरे वर पृथ्वीराज चौहान को यहाँ ले आओ। तुम उन्हें यह संदेश देना कि मेरे शरीर में जब तक सांसें रहेंगी तब तक मेरा प्रियतम पृथ्वीराज चौहान ही होगा। भाव यह है कि मैं जीते-जी पृथ्वीराज को छोड़कर किसी अन्य पुरुष से शादी नहीं करूँगी।

विशेष–1. यहाँ कवि ने पद्मावती के एकनिष्ठ प्रेम का प्रभावशाली वर्णन किया है।

2. 'साँस सरीरहि' में अनुप्रास अलंकार का सफल प्रयोग हुआ है।

3. दोहा छंद का प्रयोग हुआ है।

4. डिंगल-पिंगल भाषा का प्रयोग है।

5. शब्द-चयन सर्वथा उचित तथा भावानुकूल है।

6. संवाद शैली का प्रयोग है।

कवित्त

20 **प्रिय प्रथिराज नरेस जोग लिखि कग्गर दिन्नौ।**
लगुन व रण रचि सरब दिन्न द्वादस ससि लिन्नौ।
सें अरु ग्यारह तीस साप परमानह।
जोवित्री कुल सुद्ध बरनि वर रष्षहु प्रानह।
दिप्पंत दिष्ट उच्चारिथ बर इकः पलक विलम्ब न करिय।
अलगार रयन दिन पंच महि ज्यों रुकमनि कन्हर बरिय।।44।।

शब्दार्थ–**दिष्ट** = भाग्य, **अलगार** = गुप्त रूप में, **कन्हर** = कृष्ण, **जोग** = यथायोग्य, **साप संवत्** = शक संवत्, **लगुन व रण** = लगन, **रष्षहु** = रक्षा करो, **बरनि** = वर्णन करके, **परमानह** = प्रमाणित, **दिन्नौ** = दिया, **द्वादस ससि** = शुक्ल पक्ष की द्वादशी, **कग्गर** = कागज।

1. पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता

1. पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता सिद्ध कीजिए। (Most Imp

अथवा

पृथ्वीराज रासो प्रामाणिक ग्रंथ है अथवा अप्रामाणिक ग्रंथ? युक्तियुक्त उत्तर दीजिए।

अथवा

पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

उत्तर–आरंभ में अधिकांश विद्वान पृथ्वीराज रासो को एक प्रामाणिक ग्रंथ समझते थे। इसीलिए कर्नल टॉड इसके साहित्य-सौंद पर मुग्ध हो गया। उसने रासो के लगभग तीन हजार पद्यों का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया। आगे चलकर फ्रेंच विद्वान गार्सा-द-तॉ ने इस ग्रंथ को प्रामाणिक घोषित कर दिया। यही कारण है कि रॉयल एशियाटिक सोसायटी ने इसका प्रकाशन आरंभ कर दिय परन्तु इसी बीच 1875 ई. में डॉ. बूलर को कश्मीर से **जयानक भट्ट** की रचना **'पृथ्वीराज विजय'** प्राप्त हुई जो कि संस्कृत रचित है। इस ग्रंथ को पढ़ने से यह पता लगा कि इसकी अधिकांश घटनाएं रासो की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक हैं। अतः प्रो. बू को रासो की प्रामाणिकता पर संदेह होने लगा। अतः उन्होंने इसका प्रकाशन रुकवा दिया।

रासो की प्रामाणिकता पर संदेह व्यक्त करने वालों में जोधपुर के कवि मुरारीदान और उदयपुर के कवि श्यामल दास थे परन्तु जब डॉ. बूलर ने पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता पर संदेह व्यक्त किया तो असंख्य भारतीय विद्वान बूलर के पक्ष में हो गए विशेषकर गौरी शंकर हीराचंद ओझा ने अनेक प्रमाण देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि यह एक आप्रामाणिक रचना है उधर डॉ. दशरथ शर्मा ने ओझा द्वारा उठाई गई शंकाओं को निर्मूल सिद्ध करने के लिए कुछ प्रमाण देकर यह सिद्ध कर दिखाय कि रासो एक प्रामाणिक ग्रंथ है। सच्चाई तो यह है कि रासो की प्रामाणिकता आज भी संदेहास्पद बनी हुई है। कुछ विद्वान इसे प्रामाणिक मानते हैं, कुछ अप्रामाणिक और कुछ अर्धप्रामाणिक। एक वर्ग ऐसा भी है जो कवि चन्दबरदायी को पृथ्वीराज क समकालीन मानता है तथा साथ यह भी कहता है कि उसने पृथ्वीराज रासो की रचना की। इस संदर्भ में विद्वानों के चार वर्ग हैं-

1. प्रथम वर्ग–प्रथम वर्ग में कविराज श्यामल दास, कविराज मुरारीदान, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, डॉ. बूलर, मारिसन श्री अमृतलाल शील, मुंशीदेवी प्रसाद, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डॉ. रामकुमार वर्मा आदि विद्वान हैं। यह वर्ग रासो को सर्वथ अप्रामाणिक घोषित करता है। इन विद्वानों का यह कहना है कि चन्द का अस्तित्व ही संदेहास्पद है और वह पृथ्वीराज क समकालीन नहीं था।

2. द्वितीय वर्ग–इस वर्ग में डॉ. श्यामसुंदर दास, मथुरा प्रसाद दीक्षित, मोहनलाल विष्णुलाल पाण्डया, मिश्रबन्धु, मोतीलाल मनेरिया आदि कुछ विद्वान हैं। इस वर्ग के विद्वान रासो के वर्तमान रूप को प्रामाणिक मानते हैं तथा चन्दबरदायी को पृथ्वीराज का समकालीन मानते हैं। परन्तु इनका मानना है कि रासो में काफी प्रक्षिप्त अंश जुड़ गए हैं।

3. तृतीय वर्ग–इस वर्ग में डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी, मुनिजिन विजय, अगरचन्द नाटा, कविराज मोहन सिंह तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी के नाम आते हैं। इन विद्वानों का कहना है कि पृथ्वीराज के दरबार में चन्द नाम का एक कवि था जिसने रासो की रचना की थी। परन्तु यह ग्रंथ अपने मूल रूप में प्राप्त नहीं है। आज जो रासो प्राप्त है वह मूल रासो का परिवर्तित और विकृत रूप है। अतः रासो एक अर्धप्रामाणिक रचना है।

4. चतुर्थ वर्ग–इस वर्ग में नरोत्तम स्वामी का नाम आता है। उन्होंने कहा कि चन्द पृथ्वीराज का समकालीन था परन्तु उसने प्रबंध रूप में रासो की रचना नहीं की। निरोत्तम स्वामी जैन ग्रंथमाला में रचित फुटकर पदों को फुटकर रचना कहता है।

(क) रासो की अप्रामाणिकता के प्रमुख कारण

विद्वानों ने रासो को अप्रामाणिक मानने के लिए तीन कारणों की चर्चा की है–

(क) घटना वैषम्य (ख) काल वैषम्य (ग) भाषा संबंधी अव्यवस्था।

(क) **घटना वैषम्य**–रासो में दिए गए अनेक नाम तथा घटनाएं इतिहास से मेल नहीं खातीं।

1. 'पृथ्वीराज रासो' में वर्णित अनेक घटनाएं व पात्रों के नाम इतिहास से मेल नहीं खाते। इस ग्रंथ में परमार, चालुक्य आदि क्षत्रियों को अग्निवंशी बताया गया है जबकि वे सूर्यवंशी सिद्ध हुए हैं।
2. 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज की माँ का नाम कर्पूर देवी के स्थान पर कमला बताया गया है।
3. इतिहास के अनुसार अनंगपाल दिल्ली का शासक नहीं था और न ही उसने पृथ्वीराज को गोद लिया था जबकि 'पृथ्वीराज रासो' में इन तथ्यों को दर्शाया गया है।
4. 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज के चौदह विवाहों का उल्लेख किया गया है। यह तथ्य भी इतिहास से मेल नहीं खाता।
5. 'पृथ्वीराज रासो' में गुजरात के राजा भीमसिंह का वध पृथ्वीराज के हाथों होते दर्शाया गया है जबकि यह घटना भी इतिहास सम्मत नहीं है।
6. इतिहास की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' में वर्णित 'सोमेश्वर वध' भी अशुद्ध सिद्ध होता है।
7. पृथ्वीराज के हाथों गौरी का वध भी इतिहास से मेल नहीं खाता।
8. 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज की बहन प्रथा का विवाह मेवाड़ के राजा 'समरसिंह' के साथ होना बताया गया है। यह तथ्य भी इतिहास से मेल नहीं खाता क्योंकि शिलालेखों के अनुसार 'समरसिंह' पृथ्वीराज के बाद 109 वर्षों तक जीवित रहा था।
9. 'पृथ्वीराज रासो' में दी गई तिथियों में भी अशुद्धियां हैं। पृथ्वीराज के जीवन संबंधी घटनाओं की इन तिथियों तथा इतिहास की तिथियों में लगभग 90-100 वर्षों का अन्तर है।
10. पृथ्वीराज का गोद जाना, संयोगिता स्वयंवर की घटना भी इतिहास सम्मत नहीं है।
11. 'पृथ्वीराज रासो' में अरबी, फारसी के शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है जबकि चन्दबरदायी तथा पृथ्वीराज के काल में अरबी एवं फारसी के शब्दों के प्रयोग का अधिक प्रचलन नहीं था।

(ख) **काल वैषम्य**–रासो में दी गई तिथियों तथा सम्वत् भी इतिहास से मेल नहीं खाते। कर्नल टॉड का कहना है कि रासो में दिए गए सम्वतों तथा ऐतिहासिक सम्वतों में सौ वर्ष का अन्तर है।

1. रासो में पृथ्वीराज की मृत्यु का सम्वत् 1158 माना गया है परन्तु इतिहास के अनुसार यह सम्वत् 1148 है। पृथ्वीराज का जन्म सम्वत् 1115 माना है परन्तु इतिहास के अनुसार 1220 है।
2. आबू पर भीम चालुक्य का आक्रमण तथा शाहबुद्दीन के साथ पूराजेर युद्ध की तिथियाँ भी सही नहीं मानी जाती।
3. पृथ्वीराज के जीवन की घटनाएं, उसका गोद लिया जाना, मेवाती मुगल युद्ध, संयोगिता स्वयंवर घटनाओं का हम्मीर रासो में उल्लेख नहीं मिलता जिसकी रचना सम्वत् 1460 के आसपास हुई थी।
4. रासोकार का कहना है कि शहाबुद्दीन गौरी का वध पृथ्वीराज ने सम्वत् 1214 में किया था परन्तु इतिहास के अनुसार गौरी का वध सम्वत् 1263 में शक्खर जाति द्वारा हुआ था।

इससे यह स्पष्ट होता है कि रासो कोई प्रामाणिक ग्रंथ नहीं है। यदि कवि चन्द पृथ्वीराज का समकालीन होता तो इसमें तनी सारी अशुद्धियां न होतीं। इस संदर्भ में **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** लिखते भी हैं–**"इस संबंध में इसके अतिरिक्त और कुछ कहने की जगह नहीं है कि यह ग्रंथ पूरा जाली है। यह हो सकता है कि इसमें इधर-उधर चन्द के कुछ पद्य भी बिखरे हों। पर उनका पता लगाना असंभव है। यदि किसी समसामयिक कवि का रचा होता और इसमें कुछ थोड़े अंश ही पीछे से मिले होते तो कुछ घटनाएं और इसमें कुछ सम्वत् तो ठीक होते।"**

(ग) **भाषा संबंधी अव्यवस्था**–रासो में अरबी, फारसी भाषाओं के शब्दों का अधिक प्रयोग मिलता है जो यह सिद्ध करता है कि चन्द के समय में इन भाषाओं का प्रयोग नहीं होता था। भाषा के आधार पर चन्द की रचना 16वीं शताब्दी ही सिद्ध होती है। प्रसिद्ध भाषाशास्त्री धीरेन्द्र वर्मा ने भी रासो को 16वीं शताब्दी की रचना माना है। **आचार्य शुक्ल** लिखते भी हैं–**"यह ग्रंथ न तो भाषा के इतिहास और न ही साहित्य के जिज्ञासुओं का काम है।"**

रासो को प्रामाणिक मानने वाले विद्वानों का मत

परन्तु रासो को एक दम जाली ग्रंथ भी नहीं कहा जा सकता। इसमें काफी प्रक्षिप्त अंश जुड़ गए हैं जिससे इस मूलरूप विकृत हो गया है। इसका मूल रूप साहित्य तथा अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। उल्लेखनीय बात है कि रासो के चार संस्करणों में से लघु संस्करण में अधिक प्रक्षिप्त अंश नहीं हैं। मुनि जिन विजय ने स्वीकार किया है कि रासो का मूल रूप बहुत छोटा था और उसकी भाषा अपभ्रंश थी। पुरातत्व प्रबंध संग्रह में रासो के चार छंद प्राप्त हुए हैं ये चारों लघुत्तम प्रतियों में भी हैं। यह ग्रंथ लगभग 15वीं शताब्दी का माना गया है। इस संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते भी हैं–

"इन पद्यों के प्रकाशन के बाद अब इस विषय में किसी को संदेह नहीं रह गया है कि चंद नामक कवि पृथ्वीराज के दरबार में अवश्य थे और उन्होंने ग्रंथ भी लिखा है। सौभाग्य से रासो में ये कुछ छंद कुछ विकृत रूप में प्राप्त हो गए हैं। इस पर से अनुमान किया जा सकता है कि वर्तमान रासो में चन्द के मूल छंद अवश्य मिले हुए हैं।"

डॉ. दशरथ शर्मा का मत–डॉ. दशरथ शर्मा ने सभी मतों का खंडन करते हुए कहा है कि–

1. मूल ग्रंथ रासो जाली नहीं है। इसकी रचना 1600 के आसपास नहीं हुई। लघुत्तम प्रतियों में न घटना वैषम्य है, काल वैषम्य है और न ही भाषा संबंधी अव्यवस्था है। यही नहीं इनमें इतिहास संबंधी त्रुटिपूर्ण घटनाओं का उल्लेख नहीं किया गया।
2. लघुत्तम प्रतियों के आधार पर राजपूत कुल की अग्निकुंड से उत्पत्ति नहीं हुई बल्कि ब्रह्मा के यज्ञ से वीर चौहान माणिक राय के उत्पन्न होने का उल्लेख मिलता है।
3. रासो की अशुद्ध वंशावली का विस्तार बीकानेर की लघुत्तम प्रति में नहीं है केवल कुछ नामों का अंतर विद्यमान है
4. अनंगपाल तथा पृथ्वीराज के संबंध की चर्चा तो लघुत्तम प्रति में भी है।
5. संयोगिता स्वयंवर का वर्णन सभी प्रतियों में विस्तारपूर्वक किया गया है परंतु लघुत्तम प्रति इच्छिनि विवाह का वर्णन मिलता है।
6. प्रथा का विवाह, शहाबुद्दीन समर सिंह युद्ध, भीम-सोमेश्वर युद्ध, पृथ्वीराज-सोमेश्वर युद्ध का वर्णन इस प्रति में नहीं मिलता और न ही इसमें पृथ्वीराज-पद्मावती के विवाह का वर्णन है।
7. लघुत्तम प्रति में कैमासवध का वर्णन मिलता है। पृथ्वीराज विजय के अनुसार कैमास पृथ्वीराज का प्रधान था। डॉ. दशरथ शर्मा अंत में लिखते हैं–**"सारांश यह है कि अपने मूल रूप में रासो की ऐतिहासिकता अक्षुण्ण है। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि बीकानेर की प्रति से भी रासो की पुरानी प्रति को खोज निकाला जाए। यदि रासो की प्राचीनतम प्रति मिल जाए तो उसमें निश्चित रूप से सुर्जन-चरित में उद्धृत बातें मिलेंगी, क्योंकि यह संस्कृत में रासो का सारांश है।"**

डॉ. मोहन लाल विष्णुलाल पाण्डया तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत–

1. जो विद्वान रासो के काल तथा इतिहास की तिथियों में 90 से 100 वर्षों का अंतर मानते हैं उनके तर्क का खण्डन करते हुए मोहन लाल विष्णुलाल पाण्डया ने **'आनंद संवत्'** की कल्पना करके इसकी सभी तिथियों की अशुद्धियों को निरर्थक सिद्ध कर दिया। अगर 'पृथ्वीराज रासो' की तिथियों को 'आनन्द संवत्' के अनुरूप माना जाए तो ये सभी तिथियाँ इतिहास सम्मत ठहरती हैं।
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह सिद्ध किया है कि 12वीं शताब्दी की भाषा में जो संयुक्त अरं मयी अनुस्वारांत की प्रवृत्ति मिलती है, वही प्रवृत्ति **"पृथ्वीराज रासो"** में भी मिलती है। अतः निश्चय ही यह कृति 12वीं शती की रचना सिद्ध होती है।
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने संवाद शैली के आधार पर इसे प्रामाणिक रचना माना है। वे कहते हैं कि 'पृथ्वीराज रासो' की रचना 'शुक शुकी' के संवाद के रूप में हुई थी। अतः जिन संगों में यह शैली नहीं मिलती, उन्हें प्रक्षिप्त

मानना चाहिए। इस दृष्टि से भी पृथ्वीराज रासो के केवल वे अंश ही प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं जिनमें इतिहास विरुद्ध तथ्य है। शुक–शुकी संवाद से जिन सर्गों का आरम्भ होता है, यदि उन सर्गों को संकलित करके इसकी रचना की जाए, तो वे सभी तर्क स्वयं ही व्यर्थ हो जाते हैं, जिनके आधार पर इसे अप्रामाणिक रचना बताया जाता है।

4. जो विद्वान इस रचना को अरबी-फारसी शब्दों का बाहुल्य के आधार पर अप्रामाणिक सिद्ध करने का प्रयास करते हैं उनके विरुद्ध यह तर्क दिया जा सकता है कि चंदबरदाई मूल रूप से लाहौर का निवासी था। तत्कालीन युग में लाहौर के आस-पास के क्षेत्रों पर मुस्लिम आक्रमणकारियों का प्रभाव पड़ चुका था। ऐसी दशा में चंदबरदाई द्वारा अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग किया जाना स्वाभाविक है।

5. जो विद्वान केवल इतिहास के तथ्यों, तिथियों, घटनाओं के आधार पर इस ग्रंथ को अप्रामाणिक सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। उन्हें इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि पृथ्वीराज रासो एक साहित्यिक रचना है। यह कोई इतिहास ग्रंथ नहीं है। साहित्यिक रचना व इतिहास में मूल भेद ही कल्पना का समावेश होता है। इतिहास में कल्पना का कोई स्थान नहीं होता। जबकि साहित्यिक रचना में कल्पना का समावेश अनिवार्य है। अतः इस रचना को केवल इतिहास का चश्मा लगाकर न देखा जाए।

पृथ्वीराज रासो को प्रामाणिक सिद्ध करने वाले विद्वानों ने भाषा संबंधी अव्यवस्था का समाधान भी प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि उस समय मुसलमानों के आक्रमण शुरू हो चुके थे। विशेषकर, लाहौर विदेशियों के संपर्क में आ चुका था। असंख्य विदेशी व्यापारी लाहौर में व्यापार के लिए आते थे। चन्द लाहौर का ही निवासी था अतः उसके पृथ्वीराज रासो में अरबी-फारसी का यत्र-तत्र प्रयोग किया है। इस प्रकार पृथ्वीराज को अप्रामाणिक मानना उचित नहीं है।

निष्कर्ष–संक्षेप में रासो की प्रामाणिकता तथा अप्रामाणिकता को लेकर अनेक मत प्राप्त होते हैं परंतु रासो को अप्रामाणिक घोषित नहीं किया जा सकता। रासो का लघुत्तम संस्करण उसके मूल रूप के काफी समीप है फिर चन्दबरदाई ने थोड़ा बहुत अपनी कल्पना का प्रयोग भी किया होगा। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि चन्द पृथ्वीराज का मित्र होने के साथ-साथ उसका दरबारी कवि भी था। उसका मूल-रूप अपभ्रंश में ही रचवाया हो। दूसरा यह रचना केवल एक साहित्यिक रचना है जिसमें इतिहास के साथ कल्पना का प्रयोग किया गया है। इस संदर्भ में **हजारी प्रसाद द्विवेदी** ने उचित ही लिखा है–**"निर्यक मंथन से जो दुस्तर फेन राशि तैयार हुई है उसे पार करके ग्रंथ के साहित्यिक रस तक पहुँचाना हिन्दी के विद्यार्थी के लिए असंभव-सा व्यापार हो गया है।"**

◆◆◆

2. पृथ्वीराज रासो का वस्तु-वर्णन

2. पृथ्वीराज रासो के वस्तु-वर्णन पर प्रकाश डालिए। **(Most Imp.)**

अथवा

पृथ्वीराज रासो के वस्तु-वर्णन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर–पृथ्वीराज रासो का वस्तु वर्णन–पृथ्वीराज रासो आदिकालीन सर्वप्रमुख कवि चन्दवरदायी की महान रचना है। इस रचना का आधार दिल्ली व अजमेर के शासक पृथ्वीराज चौहान का जीवन-चरित है। इस ग्रंथ में कवि ने अपने मित्र एवं अपने काव्य के नायक पृथ्वीराज चौहान की वीरता, सौंदर्य एवं शासकीय योग्यता का विशद् व्यापक वर्णन किया है। चूँकि महाकाव्य का फलक व्यापक है, अतः इसमें कवि द्वारा मुख्य कथा के साथ अनेक प्रकार के वस्तु-वर्णन भी किए गए हैं, जो बड़े स्वाभाविक, संवेदनशील और मार्मिक बन पड़े हैं। 'पृथ्वीराज रासो' में शास्त्रीय रूप में विद्वानों द्वारा बताए गए प्रायः सभी प्रकार के वस्तु-वर्णन हैं। महाकाव्य में कवि ने वस्तु-वर्णन के अंतर्गत 'युद्ध वर्णन', 'प्रकृति-चित्रण', 'नख-शिख वर्णन', 'विवाह-वर्णन', 'स्वयंवर', 'नगर वर्णन', 'जल के लिए', 'आखेट', 'रण सज्जा' आदि अनेक प्रकार के वर्णन किए हैं। पृथ्वीराज रासो के वस्तु वर्णन का विवेचन निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत किया जा सकता है–

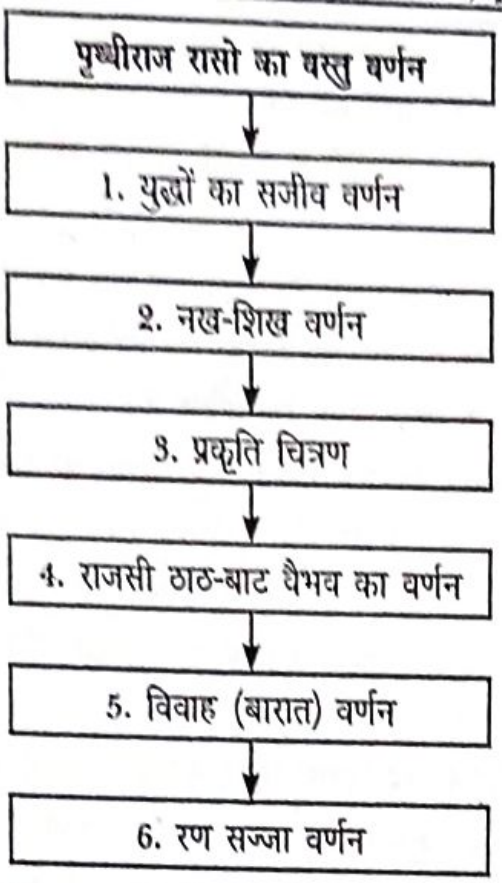

1. युद्धों का सजीव वर्णन—चन्दबरदायी मात्र कवि ही नहीं थे, बल्कि वीर योद्धा भी थे। अवसर मिलने पर वह पृथ्वीराज चौहान के साथ युद्धों में भाग लेते थे। उन्होंने पृथ्वीराज रासो में जो युद्ध का सजीव वर्णन किया है उसे देखकर यही कहा जा सकता है कि युद्धों में भाग लेने वाला व्यक्ति ही इस प्रकार युद्ध का वर्णन कर सकता है। कवि ने पृथ्वीराज-जयचंद युद्ध तथा शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध का यथार्थपरक वर्णन किया है। विशेषकर जयचंद की सेना का जो वर्णन किया है, वह बड़ा ही प्रभावशाली बन पड़ा है। भले ही कवि ने अतिशयोक्ति शैली को अपनाया हो, लेकिन उनके द्वारा किया गया युद्ध वर्णन का महत्त्व किसी प्रकार भी कम नहीं हो जाता। पृथ्वीराज रासो से उदाहरण देखिए—

"सरं करोणि रंग पलं पारि पर्क।
बजइ मंस संचि षंधि़ कासि करंक।
डुम ढ़ाल लोलंति दालं ति देसं।
गये हंस नंसीय़ गहै सुवेस।
परे पानि जंघं घरंग निनारे।।
मनउ मछ्छ मछ्छं तरे तीर मारे।
सिर जा सरोपां कछे सा सिवाली।
गहे अंत गुध्धी स सोहै मराली।
तट रंभ रत्तं भरंत विचीरं।
कंत स्यास स्वेतं कतं नीर पीरं।।"

2. नख-शिख वर्णन—नख-शिख वर्णन करने में चंद जी को पर्याप्त सफलता मिली है। वस्तुतः नख-शिख वर्णन करने में पृथ्वीराज रासो हिन्दी काव्य-रचनाओं में श्रेष्ठ स्थान रखता है। इसमें कवि ने जहाँ एक ओर सरस कल्पना का प्रयोग किया है, वहाँ दूसरी ओर नायिका के व्यक्तित्व का भी ध्यान रखा है। कवि ने नायिका को हृदय के मदन का अयन कहा है और उसके अधरों की तुलना पके हुए बिंब फलों के साथ की है। संयोगिता के ललाट पर लगे हुए कस्तूरी के तिलक की उपमा कवि ने सागर से उत्पन्न चन्द्रमा के गोद में बैठे हुए मृग के साथ की है। संयोगिता का नख-शिख वर्णन करते हुए कवि उसकी सखियों का वर्णन करना भी नहीं भूलता। कवि लिखता है—

"अधरल पल पल्लव सुवास।
मंजरिय तिलक पंजरिअ पास।
अलि अलक कंठ कलमंठ मंत।
संयोगि भोग बरू भयु बमंत।।"

सरस्वती का नख-शिख वर्णन करते समय कवि ने नख से शिख की प्रक्रिया को न अपनाकर शिख से नख तक की प्रक्रिया ो अपनाया है। इसका कारण यह है कि सरस्वती एक देवी है और कवि एक आराध्य के रूप में उसका वर्णन करता है। कवि सके कपोलों की तुलना प्रातःकालीन चंद्रमा के साथ करता है जो राहु के कलंक से बचने के लिए मृग के रथ को खुद खींच रहा । लेकिन रीतिकालीन कवियों के असमान चंद का नख-शिख वर्णन पूरी तरह मर्यादित और सुरुचिपूर्ण है। पद्मावती-समय से द्मावती के नख-शिख वर्णन का एक उदाहरण देखिए–

"मनहुं कला ससि भान, कला सोलह सो बन्निय।
बाल बेस ससि ता समीप, अंम्रित रस पिन्निय।।
बिगसि कमल मृग भ्रमर, बैन षंजन मृग लुट्टिय।
हीर कीर अरू बिम्ब, मोति नष सिष अहि घुट्टिय।।
छप्पनि गयन्द हरि हंस गति दिह बनाय संचै सचिय।
पद्मिनिय रूप पद्मावतिय, मनहुं काम कामिनि रचिय।।"

3. प्रकृति चित्रण–पृथ्वीराज रासो में कवि ने विभिन्न स्थलों पर प्रकृति के सुंदर चित्र अंकित किए है। कवि ने अपने इस महाकाव्य में प्रकृति को प्रायः सभी रूपों में चित्रण किया है, परंतु आलंबन व उद्दीपन रूप में प्रकृति के अद्भुत चित्र उन्होंने खींचे हैं। उनके प्रकृति चित्रण से प्रभावित होकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं–**शोभा चाहे प्रकृति की हो या मनुष्य की, परंपरा चलित उपमानों के सहारे ही विक्रय है।** जहाँ कवि ने प्रकृति वर्णन करते समय केवल नाम परिगणन शैली को अपनाया है, वहाँ नीरसरता और शुष्कता उत्पन्न हो गई है। विभिन्न ऋतुओं का वर्णन करते हुए कवि को सफलता प्राप्त हुई है। बसंत ऋतु का एक उदाहरण देखिए–

''सामग्गं कलधूत नूतन शिखरा मधुलेहि मधुवेष्टिता।
वाता सीत सुगंध मदं सरसा आलोल साचेष्टता।।
कंठी कंठ कुलाहिल मुकलया कामस्य उद्दपनी।
रत्ने रत्त बसन्त पत सरसा संजोगि भोगारते।।''

4. राजसी ठाट-बाट वैभव का वर्णन–कवि ने महाकाव्य में राजाओं के राजसी ठाट-बाट, उनके धन-वैभव, उनकी सैन्य-शक्ति उनके दृढ़ दुर्गों, सुदृढ़ रक्षा प्रणाली का भी समुचित वर्णन किया है। पद्मावती के पिता विजयपाल के राजसी ठाट-बाट, उसके धन-वैभव, सुदृढ़ किले, सैन्य शक्ति का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

"धुनि निसान बहु साद नाद सुरपंच बजत दिन।
दस हजार हय चढ़त हेम नग जटिल साज तिन।
गज असंख गजपतिय मुहर सेना तिय संखह।
इन नायक की घरी पिनाक, घरभर राज रखवह।
दस पुत्र-पुत्रिय एक सम रथ सुरंग उम्भर डमर।
भंडार लक्षिय अगतिन पदम सो पद्मसेन कुँवर सुघर।"

5. विवाह (बारात) वर्णन–कवि चन्दबरदायी ने पृथ्वीराज रासो में कुमायूँ के राजा कुमोदमणि की बारात का वर्णन किया है। वह विजयपाल की पुत्री पद्मावती से विवाह करने जा रहा है। कुमोदमणि की बारात का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि उसकी बारात में पाँच सौ विशाल हाथी चल रहे थे। हाथियों के मस्तकों से मंदस्रात हो रहा था। बारात के आगे-आगे तेज गति से दौड़ने वाले तुखारी घोड़े दौड़ रहे थे। कवि लिखता है–

"मंद गल्लितं मत्त सै पंच दंती,
मनो साम पाहार बुग पति पंती।
चलै अग्नि तेजी जु तत्ते तुखारं
चौबरं चौरासी जु साकत्ति भारं
नगं कंठ नूपं अनूपं सु लालं
रंग पंच रंग ढलक्कतं ढालं।।"

6. रण-सज्जा वर्णन–चूंकि पृथ्वीराज रासो मूलतः एक युद्ध काव्य है, अतः इसमें कवि ने राजाओं की रण-सज्जा का समुचित वर्णन किया है। 'पद्मावत समय' की इन पंक्तियों में कवि शाहबुद्दीन गौरी की रण-सज्जा का वर्णन करते हुए लिखता है

"तिन पष्परं पीठ हय जीन सालं
फिरंगी कती पास सुकलात लालं
तहाँ बाघ बाघ मरूरी रिछोरी
धनं सार समूह अरू चौरूँ झोरी
एराकी अरबी पटी तेज ताजी
तुरक्की महावान कम्मान बाजी।।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि पृथ्वीराज रासो का वस्तु-वर्णन अद्वितीय है। कवि को प्रत्येक प्रकार के वस्तु-वर्णन में अपार सफलता प्राप्त हुई है।

◆◆◆

3. पद्मावती समय का काव्य-सौंदर्य

3. 'पद्मावती समय' का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

अथवा

'पद्मावती समय' का कथ्य स्पष्ट कीजिए।

अथवा

'पद्मावती-समय' के कथानक का सार अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर–पद्मावती समयः सार–पृथ्वीराज रासो हिन्दी साहित्य के आदिकाल का प्रथम महाकाव्य है। इसके बृहद् संस्करण में 69 अध्याय तथा 16306 छंद हैं तथा महाकाव्य होने के कारण इस रचना के प्रत्येक खंड में पृथ्वीराज चौहान के जीवन से संबंधित कथा का वर्णन दिया गया है। कवि ने प्रत्येक अध्याय के लिए समय अथवा खण्ड शब्दों का प्रयोग किया है। परन्तु बृहद् रूपांतर के खंड के लिए 'समय' शब्द का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक 'समय' का नामकरण उसके समय की घटनाओं के आधार पर किया गया है। 'पद्मावती-समय' इस काव्य-रचना का बीसवाँ समय है। इसमें रासो के कथानायक तथा दिल्ली के राजा पृथ्वीराज चौहान तथा समुद्र शिखर की राजकुमारी पद्मावती के प्रेम विवाह का वर्णन किया गया है। पद्मावती-समय की कथा का सार इस प्रकार है–

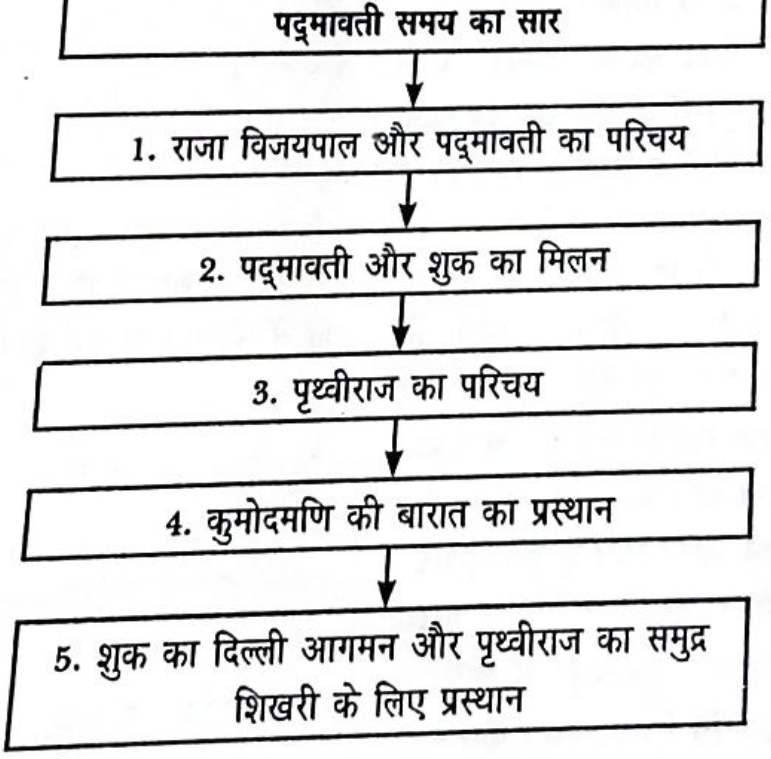

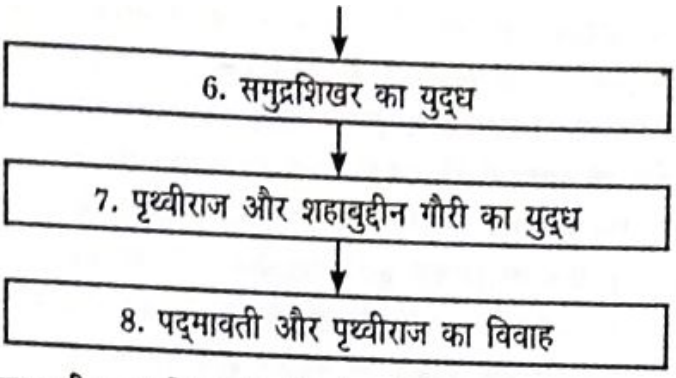

1. राजा विजयपाल और पद्मावती का परिचय–दिल्ली की पूर्व दिशा में एक यादववंशी राजा विजयपाल रहता था। वह समुद्र शिखर नामक किले में रहता था। वह अनेक किलों का स्वामी तथा शक्तिशाली राजा था। उसके पास अपार धन संपत्ति, विशाल सेना और विस्तृत राज्य था। बड़े वीर और प्रतापी राजा हमेशा उसकी सेवा करते रहते थे। राजा विजयपाल के दस पुत्र और एक पुत्री थी। राजा की सुंदर पत्नी का नाम पद्मसेन था जिसने पद्मावती नाम की सुंदर राजकुमारी को जन्म दिया। पद्मावती चंद्रमा की सोलह कलाओं की अद्वितीय सुंदरी थी। रति के समान सुंदर होने के कारण वह सबको आसक्त कर लेती थी। पशु-पक्षी, मनुष्य तथा देवता आदि भी उसकी सुंदरता को देखकर उस पर मोहित हो जाते थे। कवि उसके अनुपम सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहता भी ही है–

"मनहुं कला ससि भान, कला सोलह सो बन्निय।
बाल बेस ससि ता समीप, अंम्रित रस पिन्निय।।
बिगसि कमल मृग भ्रमर, बैन, षंजन मृग लुट्टिय।
हीर कीर अरू बिम्ब, मोति नप सिष अहि घुट्टिय।।
छप्पति गयन्द हरि हंस गति, दिह बनाय संचै सचिय।
पद्मिनिय रूप पद्मावतिय, मनहुं काम कामिनी रचिय।।"

पद्मावती में सभी शुभ लक्षण विद्यमान थे। सुंदर होने के साथ-साथ वह चौसठ कलाओं, चौदह विद्याओं तथा चार वेदों के अध्ययन में पारंगत थी। अभी-अभी वह वयःसंधि को प्राप्त हुई थी। वसंत की शोभा की तरह वह सभी में आनंद उत्पन्न करने लगी थी।

2. पद्मावती और शुक का मिलन–एक दिन पद्मावती अपनी सखियों के साथ राजमहल के दरबार में खेल रही थी। उसने वहाँ पर एक सुंदर तोता देखा। उसे देखकर वह बहुत प्रसन्न हुई। लेकिन तोते ने पद्मावती के सुन्दर लाल होंठों को देखकर उन्हें फल समझा। तोते ने पद्मावती पर झपट्टा मारा, पर पद्मावती ने बड़ी चालाकी से उसे पकड़ लिया और राजमहल के एक स्वर्ण पिंजरे में उसे बंद कर दिया। धीरे-धीरे पद्मावती उस तोते के साथ वातचीत करने लगी। वह दिन-भर उससे खेलती और राम नाम का पाठ पढ़ाती। उधर तोता पद्मावती का रूप देखकर प्रसन्न हो गया था। वह मन-ही-मन भगवान शिव तथा पार्वती से प्रार्थना करने लगा कि पद्मावती का विवाह राजा पृथ्वीराज के साथ हो जाए। वह तोता बड़ा बुद्धिमान और विद्वान था। इसलिए वह पद्मावती को ज्ञानवर्धक कहानियाँ सुनाने लगा। पद्मावती भी एकाग्र मन से उसके द्वारा कही गई कथाओं को सुनती थी और प्रसन्न होती थी।

3. पृथ्वीराज का परिचय–धीरे-धीरे पद्मावती उस शुक के साथ वार्तालाप करने लगी। एक दिन पद्मावती ने शुक से पूछा कि वह पृथ्वीराज किस देश का निवासी है और उसके देश का राजा कौन है। शुक ने पद्मावती को बताया कि वह दिल्ली का निवासी है। दिल्ली में एक दुर्ग है जहाँ पर इन्द्र के अवतार के रूप में पृथ्वीराज चौहान राज्य करते हैं। वह सांभर नरेश सोमेश्वर का वंशज है। भले ही उसकी आयु सोलह वर्ष की है, लेकिन वह एक वीर योद्धा तथा पराक्रमी राजा है। उसने गजनी के बादशाह शहाबुद्दीन गौरी को तीन बार पराजित किया, बंदी बनाया और उसकी प्रतिष्ठा को धूल में मिलाकर उसे छोड़ दिया। उसके धनुष पर लोहे की जंजीर की डोरी की प्रत्यंचा है और वह अचूक शब्द भेदीबाण चलाने में निपुण है। राजा बलि के समान वह दृढ़-प्रतिज्ञ है, कर्ण के समान दानी है, सत्यवादी हरिश्चन्द्र की तरह शीलवान है, विक्रमादित्य की तरह न्यायपूर्ण है तथा दैत्य के समान महाबलशाली है। उसका बड़ा सुंदर और आकर्षक व्यक्तित्व है। उसे देखकर लगता है कि वह कामदेव का साक्षात् रूप है। उसका यश सभी दिशाओं में फैला हुआ है।

शुक के मुख से पृथ्वीराज की वीरता तथा उसके रूप-सौंदर्य का वर्णन सुनकर पद्मावती पृथ्वीराज से प्रेम करने लगी
रे-धीरे बाल्यावस्था की क्रीड़ाओं को पार करके पद्मावती ने यौवनावस्था को प्राप्त किया। पद्मावती एक अनिंद्य सुंदरी थी
ता-पिता को उसके विवाह की चिंता सताने लगी और उन्होंने उसके योग्य वर खोजना शुरू कर दिया। पद्मावती के पि
जयपाल ने पुरोहित को बुलाया और उसे आज्ञा दी कि वह किसी शीलवान तथा श्रेष्ठवान राजा के साथ पद्मावती की सगाई
। पुरोहित शगुन की सामग्री लेकर शीघ्र ही समुद्र शिखर से विदा हो गया। यह समाचार मिलते ही सभी नगर निवासी आनंदि
ो उठे। वह पुरोहित पद्मावती के लिए योग्य वर खोजता हुआ शिवालिक पर्वत पर बसे हुए कुमायूँ राज्य में गया। वहाँ के रा
का नाम कुमोदमणि था। वह बड़ा ही सुंदर, कोमल, अपार धन संपत्ति तथा विशाल सेना का राजा था। उसी के साथ पुरोहित
पद्मावती की सगाई निश्चित कर दी और वह राजा विजयपाल को यह शुभ समाचार देने के लिए समुद्र शिखर से लौट आया

4. कुमोदमणि की बारात का प्रस्थान—विवाह की तिथि निश्चित हो जाने के बाद राजा कुमोदमणि अपने अधीन राजाओं और सेनापतियों को लेकर एक विशाल बारात के रूप में समुद्र शिखर की ओर चल पड़ा। उसकी विशाल सेना में दस हजार घुड़सवार तथा पाँच सौ हाथी थे। इसके अतिरिक्त असंख्य पैदल सैनिक बारात के साथ चल रहे थे। जब राजा विजयपाल को बारात के आगमन की सूचना मिली तब समुद्र शिखर दुर्ग में वाद्य यंत्र बजने लगे। बारात के स्वागत की तैयारी आरंभ हो गई असंख्य मंडप और तोरण बनाए गए। यह देखकर पद्मावती अत्यधिक व्याकुल हो गई। उसने एकांत में शुक को अपने पास बुलाया और कहा कि वह दिल्लीगढ़ जाकर पृथ्वीराज को आने का निमंत्रण दे आए। पद्मावती ने तोते को एक पत्र भी लिखकर दिया। उस पत्र में विवाह की तिथि लिखी थी। साथ ही यह भी आग्रह किया गया था कि जिस प्रकार कृष्ण ने रुक्मिणी का हरण किया था उसी प्रकार वह शिव मंदिर में प्रातःकाल के समय पद्मावती का हरण करके ले जाए। पत्र पाकर शुक बड़ा प्रसन्न हुआ और वह दिल्लीगढ़ की ओर उड़ गया।

5. शुक का दिल्ली आगमन और पृथ्वीराज का समुद्र शिखर के लिए प्रस्थान—पद्मावती से पत्र लेकर वह शुक वायु के वेग से आकाश में उड़ने लगा और दिल्लीगढ़ पहुँच गया। उसने वह पत्र पृथ्वीराज को सौंप दिया। पत्र पढ़ते ही पृथ्वीराज चौहान ने समुद्र शिखर के लिए प्रस्थान करने का निर्णय लिया। दिल्लीगढ़ का भार उसने प्रधान सेनापति चामुंड राय को दे दिया। अपने साथ हुए शूरवीरों, सामंतों तथा तीन हजार सैनिकों के साथ वह समुद्र शिखर की ओर चल पड़ा। महाराज का मित्र कवि चंदबरदायी भी उसके साथ था। जिस दिन राजा कुमोदमणि बारात लेकर समुद्र शिखर दुर्ग में पहुँचा उसी दिन पृथ्वीराज भी गुप्त रूप से वहाँ पहुँच गया। इधर शहाबुद्दीन गौरी को इसकी सूचना मिल गई। वह अपनी विशाल सेना तथा भयंकर योद्धाओं के साथ पृथ्वीराज के लौटने के मार्ग में इंतजार कर रहा था। चंदबरदायी ने पृथ्वीराज को सूचित किया कि शहाबुद्दीन गौरी उस पर आक्रमण करने जा रहा है।

6. समुद्र शिखर का युद्ध—जब राजा कुमोदमणि के आने का समाचार मिला तो समुद्र शिखर के राजा विजयपाल के सभी लोग बारात के स्वागत के लिए तैयारियाँ करने लगे। नगर की स्त्रियाँ अपने-अपने छज्जों पर बैठकर बारात देखने लगीं। परंतु राजकुमारी अपने राजमहल में व्याकुल होकर रोने लगी। दुख और निराशा के कारण उसका मुँह काला हो गया। फिर भी उसने धैर्य नहीं छोड़ा और वह पृथ्वीराज के आने की प्रतीक्षा करने लगी। उसी समय शुक पद्मावती के पास आ पहुँचा और उसने पृथ्वीराज के आने की सूचना दी। यह समाचार पाकर पद्मावती बहुत खुश हो उठी। उसने मैले वस्त्र त्याग दिए और स्नान के पश्चात् सुंदर शृंगार किया और अपने शरीर के अंगों पर आभूषण धारण किए। उसने सोने के थाल में मोती भर लिए और आरती सजाई और पूजा के लिए वह पूर्व निश्चित समय पर मंदिर पहुँच गई। उसने सर्वप्रथम शंकर-पार्वती की पूजा की और चारों ओर प्रदक्षिणा करके उन्हें प्रणाम किया। मंदिर में पृथ्वीराज ने समय बर्बाद न करके पद्मावती का हाथ पकड़ा और उसे अपने साथ घोड़े पर बिठा लिया। शीघ्र ही उसका घोड़ा हवा से बातें करने लगा। नगर में शीघ्र ही यह समाचार फैल गया कि पृथ्वीराज ने पद्मावती का हरण कर लिया है। फलतः समुद्र शिखर नगर में युद्ध के नगाड़े बजने लगे। विजयपाल ने हाथियों की सेना तैयार करके पृथ्वीराज का पीछा करना शुरू कर दिया। शीघ्र ही राजा कुमोदमणि तथा राजा विजयपाल की सेनाओं ने पृथ्वीराज को चारों ओर से घेर लिया। पृथ्वीराज ने भी पीछे मुड़कर अपनी सेना के साथ शत्रुओं का सामना किया। दोनों ओर से भयंकर युद्ध होने लगा, बाणों की वर्षा के कारण योद्धा कट-कट कर गिर रहे थे। अंत में कुमोदमणि के योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए और पृथ्वीराज की विजय हुई। इस प्रकार राजा कुमोदमणि तथा विजयपाल को पराजित करके पृथ्वीराज अपनी सेना के साथ दिल्ली की ओर बढ़ गया।

7. पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गौरी का युद्ध—शहाबुद्दीन गौरी तो पहले ही मार्ग में पृथ्वीराज का इंतजार कर रहा था। उसके पास भयंकर विशाल सेना थी और सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र थे। उसकी भयंकर सेना तोप-तलवार, बंदूक एवं बाणों से सुसज्जित हुई थी। योद्धाओं ने अपने तन पर लोहे के जिरहबख्तर धारण कर रखे थे। गौरी की सेना का एक योद्धा एक हजार सैनिकों का सामना कर सकता था। यहाँ तक कि घोड़ों पर लोहे के कवच थे। गौरी की सेना में हाथी और घोड़े थे। उसकी सेना ने जल्दी

पृथ्वीराज को चारों ओर से घेर लिया। दोनों ओर से युद्ध के नगाड़े बजने लगे। शीघ्र ही योद्धा आपस में भिड़ गए और मार-काट शुरू हो गई। पृथ्वीराज ने एक हाथ में घोड़े की लगाम पकड़ ली और दूसरे हाथ में तलवार लेकर शत्रुओं का संहार करते रहे। यह युद्ध लंबे समय तक चलता रहा। पूरा युद्ध-क्षेत्र हाथी-घोड़ों तथा सैनिकों के कटे हुए अंगों से भर गया था। परंतु युद्ध में अभी तक कोई निर्णय नहीं हो सका। जब पृथ्वीराज ने देखा कि युद्ध का निर्णय नहीं हो रहा तो वह क्रोधित हो उठे। उन्होंने तलवार लेकर शत्रुओं पर ऐसे हमला किया जैसे शेर हाथियों के समूह पर करता है। पृथ्वीराज ने अपनी तलवार से शत्रुओं के हाथियों की सूँडें काट दीं और मस्तक चीर दिए। इससे युद्ध-क्षेत्र में भगदड़-सी मच गई। शत्रु के हाथी उलटकर अपनी सेना को रौंदने लगे। इस युद्ध के कारण उड़ती हुई धूल ने सूर्य को भी ढक लिया जिससे दिन रात में बदल गया। शीघ्र ही पृथ्वीराज चौहान ने शहाबुद्दीन गौरी की गर्दन में धनुष की डोरी डालकर उसे पकड़ लिया। उसे देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो बाज ने झपट्टा मारकर गौरैया को पकड़ लिया हो। अब गौरी पृथ्वीराज की कैद में था। वह शत्रुओं की सेना को चीरता हुआ दिल्ली की ओर बढ़ने लगा। इस युद्ध में गौरी के पाँच सरदार मारे गए। पृथ्वीराज के पचास योद्धा वीरगति को प्राप्त हो गए। पृथ्वीराज ने शत्रुओं को पराजित करके विजय प्राप्त की और गौरी को बंदी बनाकर अपने साथ दिल्ली ले गया।

8. पद्मावती और पृथ्वीराज का विवाह–पृथ्वीराज पद्मावती को लेकर दिल्ली पहुँच गया। वह सबसे पहले दिल्ली के अष्टभुजा देवी के मंदिर में पहुँचा। वहाँ उसने ब्राह्मणों को बुलवाया और विवाह का शुभ मुहूर्त निकलवाया। शुभ मुहूर्त में वेद मंत्रों का उच्चारण किया गया और इस प्रकार पद्मावती और पृथ्वीराज का विवाह संपन्न हो गया। इस अवसर पर पद्मावती अद्वितीय सुंदरी के रूप में सुशोभित हो रही थी। विवाह सम्पन्न होने के बाद पृथ्वीराज ने बादशाह गौरी को दंड दिया तथा उससे 80,000 श्रेष्ठ सुंदर घोड़े दंड के रूप में प्राप्त किए और उसे क्षमा कर दिया। इसके बाद राजा पृथ्वीराज ने यतियों, जोगियों, भाटों, संन्यासियों, जंगम एवं ब्राह्मणों को दान दिया और पद्मावती के साथ राजमहल में प्रवेश किया। इस अवसर में चारों ओर नगाड़ों की ध्वनि सुनाई देने लगी। चंद्रमुखी सुंदरियाँ अपने सिर पर जल से भरे कलश लेकर राजा का स्वागत करने लगीं। इन स्त्रियों ने सोने के थाल सजाए हुए थे और उनमें मोती भरे हुए थे। वे स्त्रियाँ मंगल गीत गा रही थीं। पृथ्वीराज के सिर पर मुकुट रखा और मस्तक पर तिलक लगाया और सेवक उन पर चँवर डुला रहे थे।

◆◆◆

---

4. 'पद्मावती-समय' के काव्य-सौन्दर्य पर विचार कीजिए। (Most Imp.)

अथवा

'पद्मावती-समय' एक श्रेष्ठ काव्य-रचना है। सोदाहरण स्पष्ट करें।

उत्तर–पद्मावती समय : काव्य सौंदर्य–'पद्मावती-समय' पृथ्वीराज रासो का बीसवाँ समय अर्थात् अध्याय है। इसके रचयिता चन्दबरदायी हैं। प्रस्तुत काव्य-रचना में इतिहास तथा कल्पना का सुन्दर मिश्रण देखा जा सकता है। 'पद्मावती-समय' पृथ्वीराज रासो का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अध्याय कहा जा सकता है। 'पद्मावती-समय' में कुल 97 पद्य हैं। कवि की काव्य-कुशलता इसी अध्याय में देखी जा सकती है। इस अध्याय की कथावस्तु बड़ी ही रोचक, सरस व प्रभावशाली है। कवि ने इसमें कथानक का गठन सफलतापूर्वक किया है। इसकी सभी घटनाएँ सुसम्बद्ध हैं। घटनाक्रम में तारतम्यता होने के कारण पाठकों में निरन्तर उत्सुकता उत्पन्न होती रहती है। अन्य दृष्टि से 'पद्मावती-समय' एक सफल काव्य-रचना कही जा सकती है। वस्तु-वर्णन, भावाभिव्यंजना, भाषा, अलंकार-योजना, छंद-योजना आदि सभी दृष्टियों से यह एक सफल काव्य-रचना है। 'पद्मावती-समय' के काव्य-सौन्दर्य का विवेचन हम निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत कर सकते हैं–

पद्मावती समय का काव्य-सौंदर्य

↓

1. वस्तु-वर्णन

↓

2. प्रकृति वर्णन

↓

3. बारात वर्णन

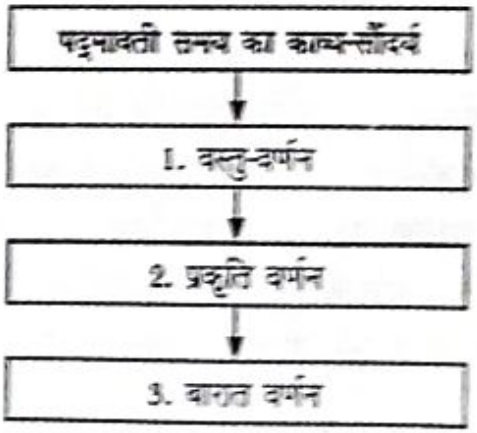

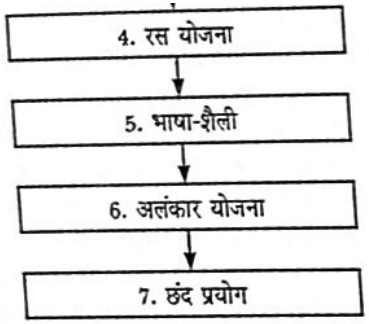

1. वस्तु-वर्णन–'पद्मावती-समय' अपने वस्तु-वर्णन के लिए एक उल्लेखनीय काव्य-रचना मानी जा सकती है। इसमें पद्मावती का रूप-सौन्दर्य, बारात, सेना का प्रस्थान तथा युद्ध-वर्णन आदि काफी प्रभावशाली बन पड़े हैं। इसके साथ-साथ कवि ने पद्मावती का नख-शिख वर्णन भी सफलतापूर्वक किया है। इसके लिए कवि सांकेतिक तथा आलंकारिक भाषा का अधिक प्रयोग करता है। एक उदाहरण देखिए–

"मनहुं कला ससि भौंन, कला सोलह सो बन्निय।
बाल बेस ससिता समीप, अम्रित रस पिन्निय।
बिगसि कमल म्रिग भ्रमर, बैन षंजन मृग लुट्टिय।
हरि कीर अरु बिम्ब, मोति नष सिष अहि घुट्टिय।
घट्पति गयन्द हरि हंस गति, बिह बनाय सेचै सचिय।
पद्मिनिय रूप पद्मावतिय, मनहु काम कामिनी रचिय।"

कवि ने 'पद्मावती-समय' में पृथ्वीराज का जो वर्णन किया है, वह भी काफी आकर्षक बन पड़ा है। इस काव्य-रचना के पाँचवें पद्य में पद्मावती शुक से पृथ्वीराज का पता पूछती है। शुक पृथ्वीराज का वर्णन करता हुआ कहता है कि दिल्लीगढ़ नाम का एक नगर है। जहाँ इन्द्र का अवतार चौहानवंशी अत्यंत वीर और बलवान राजा पृथ्वीराज है। वह कहता है–

"हिन्दवान थान उत्तम सुदेश, तहँ उदत द्रग्ग दिल्ली सुदेस"

× × × × × ×

"संचरि नरेस चहुआंन यानं, पृथिराज तहं बाजतं भानं
बैसह बरीस षोडस नरिदं, आजानु बाहु भुअलोक चंदं
संभरि नरेस सोमेस पूत, देवन्त रूप अवतार दूत
तासु मंसूर सवै अपार भूजांन भीम जिम सार भार।"

शुक पद्मावती को यह भी सूचित करता है कि पृथ्वीराज शब्दभेदी बाण चलाने में समर्थ हैं (उसने तीन बार शहाबुद्दीन गौरी को पकड़कर उसे क्षमा कर दिया और उसकी प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिला दिया)।

इसी प्रकार सेना का वर्णन करने में कवि को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। यह वर्णन उत्साह भाव को उद्दीप्त करता है। कवि ने न केवल पृथ्वीराज की सेना का वर्णन ही किया, बल्कि शहाबुद्दीन गौरी की सेना का भी वर्णन किया है–

"क्रोध जोध जोधा अनंत करिय पन्ती आनि-रज्जिय
वान नालि हयनालि तुपक तीरह सब रज्जिय
पठवे पहार मनो सारू के, भिरि भुजान गपनेस बल
आए हकारि हकारि भुरि, घुरसान, सुलतान दल।"

उपर्युक्त पंक्तियों में क्रोधित योद्धाओं, घोड़े, हाथियों, धनुष-बाण, तोप, तलवार आदि से सुसज्जित सेना का बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन किया गया है। कवि स्पष्ट करता है कि शहाबुद्दीन गौरी की सेना में खुरासानी, कंधारी, बलखी, तुर्की तथा फिरंगी सैनिक थे। विभिन्न घोड़ों का वर्णन करते हुए कवि पुनः लिखता है–

"जहँ बाग मरूरी रिठोरी
धमं सार समूह अरू चौर झौरी
एराकी, अरब्बी, पटी, तेज, ताजी
तुरक्की, महावान, कम्मान, बार्जी।"

युद्ध-वर्णन में भी कवि ने विशेष रुचि ली है। 'पद्मावती-समय' में शहाबुद्दीन गौरी और पृथ्वीराज चौहान के युद्ध का जो सजीव वर्णन किया है, वह बड़ा ही बड़ा प्रभावशाली बन पड़ा है। पाठक इसे पढ़ते ही भावविह्वल हो जाता है और उसके सामने युद्ध के भयानक और वीभत्स दृश्य उभर उठते हैं–

"कहीं कमध कहीं मय्य कहीं कर चरन अन्त दुरि।
कहीं कंध बहि तेग कहीं सिर जुट्टि फुट्टि उर।
कहीं दन्त सन्त हय खुर पुपरि कुम्भ भ्रसंडह रूंड सब।
हिन्दवान रान भय भानुमुख गहिय तेग चहुआन जब।।"

उपर्युक्त पद्यांश से पता चलता है कि भयंकर युद्ध के कारण असंख्य योद्धा मर चुके हैं और घायल हो चुके हैं। कहीं उनके कवन्ध पड़े हैं, कहीं सिर पड़े हैं तो कहीं हाथ-पैर कट कर अलग हो गए हैं। पेट की आँतड़ियाँ बाहर निकल आई हैं। पृथ्वीराज के वीर सैनिक शत्रुओं की सेना पर ऐसे प्रहार कर रहे हैं जैसे शेर हाथियों पर प्रहार करते हैं। जब पृथ्वीराज स्वयं युद्ध में भाग लेते हैं तो चारों ओर खलबली मच जाती है। हाथियों की सूँड कट गई है। वे चिंघाड़ते हुए दूर भाग रहे हैं–

"करी चीह चिक्कार करि कलप भग्गे
मंद तजियं लाज ऊभग्ग मग्गे
दोरि गज अंध चहुआन केरो
घेरिय गिरध चिहो चक्क फेरो।"

2. प्रकृति-वर्णन–जहाँ तक प्रकृति-वर्णन का प्रश्न है, 'पद्मावती-समय' में यह अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं होता। फिर भी कवि ने कुछ स्थलों पर प्रकृति का सजीव व स्वाभाविक वर्णन किया है। कवि प्रायः प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन रूप का ही वर्णन कर पाया है। विशेषकर ग्रीष्म ऋतु, शिशिर ऋतु, शरद ऋतु, हेमन्त, बसन्त आदि ऋतुओं का वर्णन बड़ा ही हृदयग्राही बन पड़ा है। इस प्रकार का वर्णन पाठक को सहज आनन्द प्रदान करने में सक्षम है। शिशिर ऋतु के वर्णन का एक उदाहरण देखिए–

"रोमाली घन नीर निब्ब परये गिरि ढंग नारायते
पवय पीन कुचानि पानि समला पुंकार झुकारये
शिशिर सबरि बारूणे च विरहा मम हृदय विद्दारये
मां कांत मृग बद्ध सिंघ मने कि देव उब्बारये।"

फिर भी 'पद्मावती-समय' में प्रकृति चित्रण बहुत कम मात्रा में हुआ है। कवि का ध्यान प्रायः नायिका के नख-शिख वर्णन, बारात वर्णन, युद्ध वर्णन पर ही केन्द्रित रहा है।

3. बारात-वर्णन–'पद्मावती-समय' में बारात का बड़ा ही आकर्षक वर्णन किया गया है। यह वर्णन करते समय बारात के समुचित पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। बारात हाथी, घोड़ों पर सवार होकर आगे चली आ रही है। हाथी के गडस्थलों से मद स्राव टपक रहा है। उनके श्वेत दांत बड़े ही आकर्षक लग रहे हैं। कवि बारात के समय बजने वाले वाद्य यन्त्रों तथा उनसे उत्पन्न होने वाले संगीत की भी चर्चा करता है। कवि यह लिखना नहीं भूलता कि बारातियों में विवाह के अनुकूल प्रसन्नता देखी जा सकती है। यह सारा वर्णन बड़ा ही प्रभावशाली व मनोहारी बन पड़ा है। पाठक यह सब पढ़कर अपने आपको बाराती समझ बैठता है–

"चले दस महस्सं असवार जानं
पूरियं पैदल तैंतीस बन
मत्त मद गलित सै पंच दती
मनो सांम पाहार बुगपंत पंती

चले अग्नि तेजी, जु तत्ते तुषारं
चौपटं चौरासी जु साकत्ति भारं
कंठ, नगं, नूपं अनोपं, सुलाल
रंग, पंच रंग ढलकंत ढालं
पंच सुर सावुद्ध वापित्र वालं
सहस सहनाय म्रिग मोहि राजं
समुद्र सिर सिपर उच्छाह छाहं
रचितं मंडपं तोरनं श्रीयगाहं।''

4. रस-योजना–भाव रस की दृष्टि से 'पद्मावती-समय' का बहुत महत्त्व है। इस अध्याय में दो रसों का परिपाक देखा जा सकता है। ये हैं–शृंगार और वीर। कवि ने शृंगार रस के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का वर्णन किया है। युद्ध वर्णन में वीर रस का परिपाक हुआ है। रौद्र, भयानक तथा वीभत्स दृश्यों की स्थिति भी देखी जा सकती है। 'पद्मावती-समय' में शुरुआत शृंगार रस से होता है और अंत भी शृंगार रस से। मध्य में वीर रस का परिपाक है।

(i) शृंगार रस–पहले बताया जा चुका है कि शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण किया गया है, लेकिन प्रधान तो शृंगार रस ही है। काव्य का आरम्भ करते ही कवि पद्मावती के अप्रतिम सौन्दर्य का बड़ा ही आकर्षक वर्णन करता है क्योंकि वही ही काव्य-रचना की नायिका है–

''कुटिल केश सुदेश, पौह परि चियत पिक्कसद
कमल गन्ध वयसंध, हंस-गति चलित मंद-मंद
सेत वस्त्र सोहै सरीर, नष स्वांति बूँद जस
भ्रमर भंवहि भुल्लहिं सुभाव, मकरन्द वास रस
नैन निरखि सुष पाय सुक, यह सुदिन मूरति रचिय
उमा प्रसाद हर हेयियत, मिलहिं राज प्रथिराज जिय।''

इस पद्य से स्पष्ट होता है कि पद्मावती का प्रेम एक पक्षीय है। वह पृथ्वीराज के वियोग के कारण अत्यधिक व्याकुल है। पद्मावती-समय में कवि ने संयोगपूर्ण विरह का ही वर्णन किया है। अतः कवि ने वियोग शृंगार की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

(ii) वीर रस–पृथ्वीराज रासो तथा उसके सर्ग 'पद्मावती-समय' का प्रधान रस तो वीर रस ही है। कवि ने पृथ्वीराज चौहान की वीरता तथा धीरता का आरम्भ से ही बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन किया है। यही नहीं, शहाबुद्दीन गौरी की सेनाओं का युद्ध-वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक और यथार्थपरक लगता है। इसमें कवि ने योद्धाओं की मनोस्थिति पर समुचित प्रकाश डाला है। 'पद्मावती-समय' में पृथ्वीराज, शहाबुद्दीन गौरी, विजय तथा कुमोदमणि, चार राजाओं की वीरता का वर्णन किया गया है। युद्ध के पूर्व कवि ने सेनाओं की रंग-सज्जा का जो वर्णन किया है, वह बेमिसाल है। रंग-सज्जा के बाद सेनाओं में भयंकर युद्ध शुरू हो जाता है। बाणों की वर्षा होने लगती है, खून की नदियाँ प्रवाहित होने लगती हैं। युद्ध का वर्णन करते हुए कवि लिखता भी है–

''कम्मानं बांन छुट्टहिं अपार
लागतं लोह इमि सारधार
घमसान घान सब वोर खेत
घन श्रोन बहत अरु रूकत रेत।''

धीरे-धीरे युद्ध भयंकर होता जाता है और वीर रस का वातावरण तैयार होने लगता है। कवि को ऐसा लगता है कि मानो वीर रस स्वयं शरीर धारण करके युद्ध क्षेत्र में कूद पड़ा है। एक उदाहरण देखिए–

"गही तेग चहुआंन हिंदवान रानं,
गजं जूथ परि कोप के हरि समान।।
करे रूण्ड मुण्डं करी कुम्भ फारे,
घरं सूद सामन्त हूकि गर्ज भारे।।
करी चीह चिक्कार करि कलप भग्गे,

गौण रूप में कवि ने भयानक, रौद्र तथा बीभत्स रसों का वर्णन किया है।

भयानक रस— "पलहि प्रु राज प्रथिराज बाग
थकि सुर गगन धर धसत भाग
सागंत सर सब काल रूप
गहि लोह-लोह बाहि सु भूप।"

बीभत्स रस— "कहीं कमध की, मध्य, कहीं कर चरण अंतरहि
कहीं कंधवहि तेग, कहीं सिर झुट्टिइ, फुट्टिइ धर।

रौद्र रस—"बजी सुबन्ध हय गय पलानं
दौरे सुज्जित सिरसाह सिरान
सुम्ह लोह-लोहयुष जंपि जोध
हन्नाह सूर सब पहिर क्रोध।"

5. भाषा-शैली—'पद्मावती-समय' की भाषा के बारे में विद्वानों ने अलग-अलग विचार व्यक्त किये हैं। कारण यह है कि इस काव्य-रचना की भाषा के अनेक रूप देखे जा सकते हैं। इसमें कहीं अपभ्रंश भाषा का तो कहीं ब्रज भाषा का प्रयोग हुआ है। भाषा-भेद के कारण ही कुछ विद्वान इसे अप्रामाणिक रचना भी सिद्ध करते हैं। परन्तु हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि 'पद्मावती-समय' डिंगल-पिंगल है। वीर रस प्रधान वर्णन करते समय कवि डिंगल भाषा का प्रयोग करता है, परन्तु ऐसे स्थलों पर वह अरबी-फारसी व तुर्की शब्दों का प्रयोग करने में नहीं हिचकता, परन्तु जहाँ कहीं कोमल भावनाओं तथा रूपों का वर्णन करना होता है, वहाँ कवि पिंगल भाषा का वर्णन करता है। पिंगल भाषा ही ब्रज भाषा है। परन्तु चन्दबरदायी की भाषा भावानुकूल व प्रसंगानुकूल है। जैसे-जैसे भाव बदलते हैं, वैसे-वैसे कवि की भाषा भी बदल जाती है। इससे यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि भाषा पर कवि का असाधारण अधिकार था। काव्य-रचना के आरम्भ में ही कोमलकान्त पदावली का प्रयोग किया गया है तो आगे चलकर अंगारों की वर्षा होने लगती है। पद्मावती का नख-शिख वर्णन करते हुए कवि ने कोमलकान्त पदावली में वर्णन किया है—

"मनहुं कला ससि भांन, कला सोलह सो बन्निय
बाल बैस ससिता समीप, अम्रित रस पिन्निय
बिगसि कमल मृग भ्रमर, बैन, पंजन मृग लुट्टिय
हरि कीर अरू बिम्ब मोति नख सिख अहि घुट्टिय
छत्रपति गयन्द हरि हंस गति, विह बनाय संचै सचिय
पद्मिनिय रूप पद्मावतिय, मनहुं काम कामिनि रचिय।"

ओजगुण प्रधान भाषा के प्रयोग में कवि को बहुत सफलता प्राप्त हुई है। इस प्रकार के वर्णन में कवि चित्रात्मक भाषा का प्रयोग करता है। वीर रस से ओतप्रोत अनेक उदाहरण 'पद्मावती-समय' से प्राप्त हो जाते हैं, जिसमें वीर योद्धाओं की युद्ध कला, रणक्षेत्र का वातावरण, शस्त्रों का टंकार आदि सजीव रूप में अंकित हुआ है। ऐसे अवसर पर कवि की भाषा सशक्त, जीवन्त तथा प्रभावशाली बन गई है, यथा—

"बज्जिय घोर निसान राज चहुआन चहूँ दिस।
सकल सूर सामन्त समर बल जंत्र-मंत्र तिसि।
उट्ठि राजा पृथिराज बाग लग मनोवीर नट।
कढ़त तेग मनो वेग लगत मनो बीज झट्ट घट।
थकि रहे सूर कौतिग गगन रगन मगन भइ श्रोन थर।
हर हरषि वीर जग्गे हुलस दुख रङ्गिनव रत्त वर।"

6. अलंकार-प्रयोग–'पद्मावती-समय' अलंकार प्रयोग की दृष्टि से एक सफल रचना कही जा सकती है। कवि ने बड़े ही सहज तथा अनायास रूप से ही अलंकारों का प्रयोग किया है। 'पद्मावती-समय' में लगभग बीस अलंकारों का प्रयोग देखा जा सकता है जिसमें अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, यमक, रूपक, व्यतिरेक, अर्थान्तरन्यास, अतिशयोक्ति, भ्रांतिमान, उदाहरण तथा दृष्टान्त आदि प्रमुख हैं। कुछ उदाहरण देखिए–

उपमा– **''रति बसन्त परमानं**
नष स्वाति बुंद जस।''

रूपक– **''मंडल मयंक बर नारि सब।''**

अनुप्रास– **''इसम हयग्गह देस अति**
पर भर रज रष्षह।''

अतिशयोक्ति– **''इक नायक कर धरी।**
पिनाक घर भर रज रखह।''

7. छन्द प्रयोग–जहाँ तक छन्द प्रयोग का प्रश्न है, 'पृथ्वीराज रासो' को छन्दों का जंगल कहा गया है। कवि ने इसमें लगभग 100 छंदों का प्रयोग किया है। कुछ तो ऐसे छन्द हैं जिनका न तो पहले प्रयोग हुआ था और न ही पहले छन्द शास्त्र में मिलते हैं। 'पद्मावती-समय' में पाँच-छः छन्दों का ही प्रयोग किया गया है। इसमें दूहा, गाथा, कवित्त, पद्धरि, भुजंगी, छप्पय आदि का उल्लेख किया जा सकता है। 'पद्मावती-समय' में 13 बार कवित्त छंद का प्रयोग किया गया है। लेकिन दूहा छन्द ही कवि का सर्वाधिक प्रिय छन्द कहा जा सकता है। दूहा छन्द का उदाहरण देखिए–

''पूरब दिसि गढ़ गढ़न पति, समुद सिषर अति दुग्ग।
तहं सु विजय सुरराज पति, जादू कुलह अभग्ग।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'पद्मावती-समय' को संवेदना तथा शिल्पपक्ष की दृष्टि से आदिकाल से ही सर्वश्रेष्ठ रचना कहा जा सकती है। यह भाषा, छन्द, अलंकार, वस्तुवर्णन तथा भावरस की दृष्टि से एक अद्वितीय काव्य-रचना है। 'पद्मावती-समय' भले ही पृथ्वीराज रासो का अभिन्न अंग है पर इस बात का ध्यान रखना होगा कि मिश्री चाहे बोरी में हो या डली के रूप में हो, वह सर्वत्र मिठास उत्पन्न करती है। 'पद्मावती-समय' में भी यह मिठास विद्यमान है।

◆◆◆

लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. पृथ्वीराजरासो का परिचय सार रूप में लिखिए।

उत्तर–'पृथ्वीराजरासो' को आदिकालीन रासो काव्यों में सर्वश्रेष्ठ रचना के रूप में स्वीकार किया गया है। गार्सा दा तासी तथा आचार्य शुक्ल ने चन्दबरदायी को 'पृथ्वीराजरासो' का रचयिता माना है। पृथ्वीराजरासो को अप्रामाणिक या अर्द्धप्रामाणिक मानने वाले विद्वान भी इसे साहित्यिक कृति के रूप में स्वीकार करते हैं। पृथ्वीराजरासो में वर्णित, पात्रों, युद्धों व राजाओं के विषय में दिये गए तथ्यों का भले ही इतिहास से पूर्ण मेल न हो किन्तु उसकी व्याख्यात्मक पर कोई सन्देह नहीं है। पृथ्वीराजरासो में एक सफल महाकाव्य के सभी लक्षण एक साथ देखे जा सकते हैं। इसे हिन्दी साहित्य का प्रथम विकासशील महाकाव्य भी माना जाता है। भले ही इतिहासकार इसकी उपयोगिता पर सन्देह व्यक्त करें, परन्तु साहित्य मर्मज्ञ और साहित्य के इतिहासकार इसके महत्व को स्वीकार करते हैं। वास्तव में पृथ्वीराजरासो एक (महाकाव्यात्मक) चरितकाव्य है। इसकी रचना संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश से चली आती हुई चरित्र काव्य शैली में की गई है। इस महाकाव्य की कथा मंथर गति से चलती है परन्तु कवि ने विशेष अवसरों पर मार्मिक प्रसंगों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। एक विद्वान् आलोचक के शब्दों में, **''पृथ्वीराज की बाल्य क्रीड़ा, शशिव्रता और पृथ्वीराज का प्रथम साक्षात्कार, संयोगिता हरण,** वियोग वर्णन, गजनी के कारागृह में पृथ्वीराज का पश्चाताप और अन्त **में चन्दरबरदायी से उनकी भेंट आदि प्रसंग बड़े ह्रदयस्पर्शी** है। इस ग्रन्थ में वीर और शृंगार दोनों रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है।''

पृथ्वीराजरासो में वस्तु वर्णन एवं प्रकृति वर्णन भी सजीवतापूर्ण किया गया है। पृथ्वीराजरासो में युद्ध वर्णन, आखेट वर्णन, विवाह वर्णन, नगर वर्णन, जलकेलि, विजय वर्णन आदि को देखते हुए कहा जा सकता है कि कवि की वर्णनशक्ति अद्भुत है। पृथ्वीराजरासो में सभी प्रकार के रसों का चित्रण हुआ है किन्तु वीर रस एवं शृंगार ही इसके प्रधानरस हैं। प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत षड्ऋतु वर्णन उद्दीपन रूप में हुआ है। ऐसे स्थलों पर कवि की कल्पना शक्ति का परिचय मिलता है। चन्दवरदायी ने 'पृथ्वीराजरासो' में डिंगल-पिंगल भाषा का प्रयोग किया गया है। भाषा सर्वत्र भावानुकूल है। इस काव्य की भाषा में विविधता के साथ-साथ निरन्तर धारावाहिकता बनी रहती है। पृथ्वीराजरासो हिन्दी साहित्य के साथ-साथ भाषा के भी गौरवपूर्ण प्राचीन रूप को प्रस्तुत करता है।

रासोकार ने अलंकार योजना भी बहुत सुन्दर ढंग से की है। पूर्ण अलंकार योजना पूर्णतः स्वाभाविक एवं अनुकूल है। शब्दालंकारों में अनुप्रास और यमक का सर्वाधिक प्रयोग किया गया है। सादृश्यमूलक अर्थालंकारों में कवि ने परम्परागत उपमानों का ही अधिक प्रयोग किया है। कवि को उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों के प्रयोग में भी विशेष सफलता मिली है। कवि ने छप्पय, गाथा, दूहा, सट्टक, पद्धरिया आदि छंदों का विशेष रूप में प्रयोग किया है। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पृथ्वीराजरासो एक महान काव्य-रचना है। रासो काव्य परम्परा में एक मील का पत्थर है।

प्रश्न 2. पृथ्वीराजरासो की प्रामाणिकता पर टिप्पणी कीजिए। **(Most Imp.)**

उत्तर–पृथ्वीराजरासो को प्रामाणिक मानने वाले विद्वानों का मत है कि समय के साथ-साथ पृथ्वीराजरासो में काफी प्रक्षिप्त अंश जुड़ गए हैं जिससे उसका मूल रूप ओझल-सा हो गया है। रासो के लघु संस्करण में अधिक प्रक्षिप्त अंश नहीं हैं। विद्वान् इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि चन्दबरदायी कवि पृथ्वीराज का समकालीन था। इन विद्वानों ने तो मूल रूप अप्राप्त माना है। मोहनलाल विष्णु लाल पाण्डेय ने आनन्द संवत की कल्पना की है। उनके अनुसार रासो की सभी घटनाओं में 90 वर्ष जोड़ देने से सभी संवत् ठीक हो जाते हैं। किन्तु ऐसे करने से भी रासो की सभी तिथियाँ इतिहास से मेल नहीं खातीं।

अब तक रासो के चार संस्करण प्राप्त हुए हैं। पहले में लगभग 16306 छंद है, दूसरे में सात हजार, तीसरे में साढ़े तीन हजार और चौथे में केवल 1300 छंद है। मुनिजिनविजय का मत है कि रासो का मूल रूप अल्पकाय था और उसकी भाषा भी अपभ्रंश थी। पुरातन प्रबन्ध संग्रह में चार छंद भी मिले हैं जो रासो की लघुतम प्रतियों में भी विद्यमान हैं।

डॉ. दशरथ शर्मा ने पृथ्वीराजरासो पर आरोपित शंकाओं का खण्डन करते हुए निम्नांकित विचार व्यक्त किये हैं, जिनसे अनेक विद्वान सहमत हैं–

1. मूल रासो जाली ग्रन्थ नहीं है। उसकी रचना सम्वत् 1600 के आस पास नहीं हुई। रासो की लघुतम प्रतियों के आधार पर घटना वैषम्य, काल वैषम्य और भाषा संबंधी अव्यवस्था का भी समाधान हो जाता है, परन्तु डॉ. दशरथ शर्मा का विचार है कि रासो एक लघुत्तम संस्करण भी है जो कि अप्राप्य है।
2. चतुर्थ संस्करण में राजपूत कुलों की आबू के अग्नि कुण्ड से उत्पत्ति का उल्लेख नहीं है। इसमें यही लिखा है कि ब्रह्म के यज्ञ से वीर चौहान मानिकराय उत्पन्न हुआ था।
3. ओझा जी के अनुसार रासो की अशुद्ध वंशावली बीकानेर से प्राप्त लघुतम प्रति में नहीं है। फिर भी 'पृथ्वीराज विजय' की वंशावली से इसके कुछ नाम मेल नहीं खाते।
4. अनंगपाल और पृथ्वीराज के संबंध की अशुद्धि तो इस प्रति में भी है।
5. लघुत्तम प्रति में संयोगिता स्वयंवर के वर्णन के स्थान पर इच्छिनी के विवाह का वर्णन है।
6. भीम सोमेश्वर और पृथ्वीराज सोमेश्वर (युद्ध, पृथा का विवाह, शहाबुद्दीन, समरसिंह युद्ध आदि) का इस प्रति में उल्लेख नहीं है। यहाँ तक कि पृथ्वीराज और पद्मावती के विवाह का भी उल्लेख नहीं है।

इन सब कारणों को देखते हुए कहा जा सकता है कि पृथ्वीराजरासो एक प्रामाणिक रचना है।

प्रश्न 3. पृथ्वीराजरासो को अप्रामाणिक मानने वाले विद्वानों के मतों को सार रूप में लिखिए।

अथवा

पृथ्वीराजरासो की अप्रामाणिकता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर–'पृथ्वीराजरासो' को अप्रामाणिक मानने वाले विद्वानों में डॉ. वूलर, गौरशंकर हीराचंद ओझा, मुंशी देवी प्रसाद, कविराज श्यामलदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि के नाम प्रमुख हैं। इन विद्वानों ने 'पृथ्वीराजरासो' को अप्रामाणिक ग्रंथ घोषित करने के लिए निम्नांकित तर्क दिये हैं–

1. 'पृथ्वीराजरासो' में वर्णित अनेक घटनाएँ व पात्रों के नाम इतिहास से मेल नही खाते। इस ग्रंथ में परमार, चालुक्य आदि क्षत्रियों को अग्निवंशी बताया गया है, जबकि वे सूर्यवंशी सिद्ध हुए हैं।

2. 'पृथ्वीराजरासो' में पृथ्वीराज की माँ का नाम कर्पूर देवी के स्थान पर कमला बताया गया है।
3. इतिहास के अनुसार अनंगपाल दिल्ली का शासक नहीं था और न ही उसने पृथ्वीराज को गोद लिया था, जबकि 'पृथ्वीराजरासो' में इन तथ्यों को दर्शाया गया है।
4. 'पृथ्वीराजरासो' में पृथ्वीराज के चौदह विवाहों का उल्लेख किया गया है। यह तथ्य भी इतिहास से मेल नहीं खाता
5. 'पृथ्वीराजरासो' में गुजरात के राजा भीम का वध पृथ्वीराज के हाथों होते दर्शाया गया है, जबकि यह घटना भ इतिहास सम्मत नहीं है।
6. इतिहास के दृष्टि में 'पृथ्वीराजरासो' में वर्णित 'सोमेश्वर-वध' भी अशुद्ध सिद्ध होता है।
7. पृथ्वीराज के हाथों गौरी का वध भी इतिहास से मेल नहीं खाता।
8. 'पृथ्वीराजरासो' में पृथ्वीराज की बहन प्रथा का विवाह मेवाड़ के राजा 'समर सिंह' के साथ बताया गया है। यह तथ्य भ इतिहास से मेल नहीं खाता, क्योंकि शिलालेखों के अनुसार समर सिंह पृथ्वीराज के बाद 109 वर्षों तक जीवित रहा था।
9. भाषा की असमानता के कारण भी इसे अप्रामाणिक ग्रंथ सिद्ध किया है। 'पृथ्वीराजरासो' में अरबी फारसी के बहुत शब्दों का प्रयोग हुआ है जो चन्दबरदायी के समय में किसी भी प्रकार प्रयोग में नहीं लाए जाते थे। अतः पृथ्वीराजरास की भाषा चन्दबरदायी के समय की न होकर 16वीं शताब्दी की रचना प्रतीत होती है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने तो इ 16वीं सदी की काव्य-रचना माना है।

प्रश्न 4. पृथ्वीराजरासो के वस्तु वर्णन पर सार रूप में प्रकाश डालिए। **(Most Imp.)**

उत्तर–पृथ्वीराजरासो का विशाल एवं विशद् आकार विभिन्न प्रकार के वस्तु वर्णनों से परिपूर्ण है। इसमें वस्तु वर्णनों का ऐस ताँता लगा हुआ है कि पाठक इस महान काव्य की वस्तु-वर्णन में आनन्दमग्न हो जाता है। इन वस्तु वर्णनों में विविधता, सरसत एवं विदग्धता भी है। इस महान काव्य में पाठक को कहीं विशाल नगरों के भव्य दृश्य दिखाई देते है तो कहीं सरिता और सरोव से युक्त वन प्रदेश के सुरम्य वर्णन। कहीं-कहीं पाठक गंगा एवं यमुना जैसी पावन नदियों के दर्शन करके अपने-आपको धन समझने लगता है। कहीं राज-दरबार की शान-बान का विस्तृत वर्णन मिलता है तो युद्ध की तैयारियों में व्यस्त सैना। कहीं समाज विवाह के उत्सव पर बारात, आगवानी, द्वाराचार, जनवासा, मण्डप, मंगल गीत, दान-दहेज, कन्या की विदाई अर्थात् विवाह-संस्का के पूर्ण दर्शन होते है। मांगलिक कामों का वर्णन दावत व सहभोज, विभिन्न आचार-विचार के वर्णन, शकुन-अकुशन के वर्णन यु रचनाओं के वर्णन आदि एक साथ देखे जा सकते हैं। पृथ्वीराजरासो के पद्मावती समय के आरम्भ में कवि ने राजा विजयपाल क सैन्य-शक्ति, धन-सम्पत्ति तथा परिवार का वर्णन अत्यन्त सजीवता से किया है। इस वर्णन की उदाहरण स्वरूप ये पंक्तियाँ देखिए-

धुनि निसान बहु साद नाद सुरपंच बजत दिन।
दस हजार हय चढ़त हेम नग जटिल साज तिन।
गज असंख गजपतिय मुहर सेना तिय संखह।
इन नायक का थरी पिनाक धरमर रज रख्खह।
दस पुत्र पुत्रिय एक सम रथ सुरंग उम्मर डमर।
भंडार लक्षिय अगनित पदम सो पदमसेन कुँवर सुधर।।

सारा रासो ग्रंथ अन्यान्य वस्तु वर्णनों से परिपूर्ण है। वर्णनों की गम्भीरता के कारण ही इस ग्रंथ में महाकाव्य की गुरुता ए गंभीरता का समावेश हुआ है। पृथ्वीराजरासो के कवि ने अपने वस्तु वर्णन में सबसे अधिक तीन वर्णनों को अधिक महत्व दिया है-

(क) युद्ध वर्णन (ख) आखेट वर्णन (ग) विवाह वर्णन

पृथ्वीराजरासो में कवि ने युद्ध-वर्णन में अत्यन्त कौशलता का परिचय दिया है। ऐसा लगता है कि सारा पृथ्वीराजरासो यु क्षेत्र है। कवि के युद्ध वर्णन में इतनी सजीवता है कि सारा वर्णन एक स्थायी प्रभाव स्थापित कर देता है। इसी प्रकार कवि पृथ्वीराज के आखेट खेलने का भी बड़ा ही सजीव एवं सुंदर वर्णन किया है। पृथ्वीराजरासो में युद्ध एवं आखेट वर्णनों के साथ-सा पृथ्वीराज के दस राजकुमारियों के साथ विवाहों का भी अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। विवाह वर्णनों की सबसे बड़ी विशेषता य है कि उनमें सभी प्रकार के लोकाचारों का विस्तृत वर्णन किया गया है। भारतीय वैवाहिक पद्धतियों का सांगोपांग वर्णन मिलत है। साथ भारत की प्राचीन संस्कृति का भी परिचय मिलता है। अतः वस्तु वर्णन की दृष्टि से पृथ्वीराजरासो महाकाव्य के साथ-सा महान काव्य भी है।

प्रश्न 5. हिन्दी रासो काव्य परम्परा का परिचय देते हुए पृथ्वीराजरासो का स्थान निर्धारित कीजिए।

अथवा

पृथ्वीराजरासो की उन प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए जिनके कारण हिन्दी रासो काव्य परम्परा में उसका महत्वपूर्ण स्थान है।

उत्तर–रासो साहित्य के अन्तर्गत जिन रचनाओं की गणना की जाती है, वे सभी उपलब्ध हैं तथा उनके रचयिताओं के बारे में बहुत कुछ ज्ञात है किन्तु पाठ, काल और तिथियों की दृष्टि से ये रचनाएँ आज भी विवाद का विषय बनी हुई हैं। हिन्दी के प्रमुख रासोग्रंथ ऐहितहासिक व्यक्तियों के जीवन चरित्र पर आधारित हैं किन्तु इनकी ऐतिहासिकता सन्देहात्मक है। क्योंकि इनमें ऐतिहासिक घटनाओं को मनमाने ढंग से प्रस्तुत किया है। वस्तुतः हमारे देश में प्राचीन ऐतिहासिक व्यक्तियों के इतिहास को सुरक्षित रखने की ओर कवियों का ध्यान नहीं गया। इसलिए इनमें इतिहास और कल्पना का मिश्रण हो गया है। आचार्य शुक्ल ने आदिकाल को इन रासो ग्रंथों में वीर रस के वर्णन के आधार पर वीर गाथाकाल नाम दिया है। उन्होंने इन वीर रसात्मक काव्यों को रासो कहा है। इस काल की रासो काव्य परम्परा अत्यन्त समृद्ध है। खुमान रासो, हम्मीर रासो, विजयपाल रासो, वीसलदेव रासो, पृथ्वीराजरासो आदि प्रमुख रासो काव्य रचनाएँ है।

'खुमानरासो' में द्वितीय खुमान के चरित्र का वर्णन किया गया है जिसने चितौड़गढ़ पर आक्रमण करने वाले खलीफा अलमामू को हराया था। हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा अन्य कुछ विद्वानों ने इसका समय 17वीं से 18वीं शताब्दी के बीच का स्वीकार किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार इस रचना की चर्चा हिन्ही साहित्य के आदिकाल में नहीं होनी चाहिए। काव्य सौष्ठव की दृष्टि से यह रचना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह डिंगल भाषा में रचित विशाल काव्य-रचना है। इसमें युद्धों का विस्तृत वर्णन है। बीसलदेव रासो एक गेय काव्य है। इसे प्रेमाख्यान काव्य की कोटि में रखा जाना चाहिए।

इसके रचना काल को लेकर भी काफी विवाद है। परमाल रासो कालिंजर (चन्देल राज्य) के राजा परमदिदेव या परमाल देव का आश्रित कवि जगनिक था। जगनिक ने इस रचना में महोबा के दो प्रसिद्ध वीरों आल्हा और ऊदल की वीरता की कथा गेय रूप में प्रस्तुत की है। 'विजयपाल रासो' के रचयिता नल्लसिंह है। इस रचना के केवल 42 छन्द प्राप्त हुए हैं। इस रासो ग्रंथ में विजयपाल की दिग्विजय का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार 'हमीर रासो' कवि शारंगधर की रचना माना जाती है। इस रचना के विषय में विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। यह अभी तक अपने पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं हुई है। इसके केवल आठ छंद उपलब्ध हुए हैं। इसी आधार पर इसका अनुमान किया जाता है। इसके अतिरिक्त बुद्धिरासों, राउजैतसी रासो, राम रासो, राणारासो, कामस रासो, शक्त सिंह रासों आदि छोटे बड़े रासों काव्य भी उपलब्ध हैं।

उपर्युक्त रासो ग्रंथों की चर्चा के आधार पर कहा जा सकता है कि रासो काव्य ग्रंथो में पृथ्वीराजरासो सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह वीर गाथा काल की प्रतिनिधि काव्य-रचना तो है ही, हिन्दी काव्य में भी इसे आदि काव्य का गौरव प्राप्त है। इसका नायक पृथ्वीराज चौहान है। वह अपने समय का अत्यन्त शूरवीर योद्धा था। वह योद्धा होने के साथ-साथ रसिक भी था। उसके अनेक विवाहों का वर्णन इस ग्रंथ में किया गया है। इसके वीर रस और शृंगार रस प्रमुख रस हैं। इसमें तत्कालीन युग का विशद चित्रण किया गया है। प्राकृतिक एवं वस्तु वर्णन में भी कवि को सफलता मिली है।

काव्य-कला की दृष्टि से यह काव्य-रचना बेजोड़ है। इसमें एक सफल महाकाव्य के सभी गुण व विशेषताएं एक साथ देखे जा सकते हैं। इसमें 69 सर्ग हैं। अनेक छंदों को सफल प्रयोग किया गया है। भाषा की दृष्टि से भी पृथ्वीराजरासो अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। हास्य रस के अतिरिक्त लगभग सभी रसों का किसी-न-किसी रूप में वर्णन हुआ है। अतः स्पष्ट है कि पृथ्वीराजरासो का रासो काव्य परम्परा में निश्चित रूप से महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रश्न 6. पृथ्वीराजरासो में वर्णित वीर रस पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर–पृथ्वीराजरासो युद्धों के वर्णन में विशेष रूप से प्रसिद्ध महाकाव्य है। कवि ने अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा द्वारा युद्ध के लिए सेना का प्रयाण, राजा के द्वारा मृगया तथा युद्ध के वास्तविक दृश्यों का बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन किया है। कवि न केवल शूरवीरों की प्रशंसा करता है, बल्कि युद्ध में शूरवीरों द्वारा वीरगति प्राप्त करने का भी प्रभावशाली वर्णन करता है। हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट तथा तलवारों की झनझनाहट कवि को अत्यधिक आकर्षित करती है। युद्ध का वर्णन करने में कवि

... की कोई सीमा नहीं है। जहाँ कहीं युद्ध के सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं, वहीं वीर रस की सशक्त अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। जहाँ कहीं वे वीर रस का वर्णन करते हैं, वहीं उनकी भाषा ओजपूर्ण हो जाती है। एक उदाहरण देखिए—

"कालिंजर जब परिय भरिय सेनापति साहिय।
पंच फौज पकड़ह करवारि सम्हारिय।
धर परि बहुभीर सथ्थ जब सेना भग्गिय।
गर घाती कम्मान लियौ गहिय उर्झंगिय।
उत्तरे वीर पच्छैं फिरे हाय हाय मुख हुंकार्यौ
पज्जून फौजि मुख वीर को कन्हलेह गोरी बर्यौ।।"

वीर रस के वर्णन से संबंधित असंख्य प्रसंग पृथ्वीराजरासो में भरे पड़े हैं। पृथ्वीराजरासो के सर्ग संख्या सात, तेरह, पन्द्रह, सत्रह, इकत्तीस, बत्तीस तथा चौंतीस में कवि ने युद्धों के द्वारा कथा-नायक की शूरवीरता का बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन किया है। इसके साथ-साथ कवि ने सैनिकों के युद्ध कौशल तथा अस्त्र-शस्त्रों की टंकार का ओजपूर्ण वर्णन किया है। युद्ध वर्णन के कुछ दृश्य तो पाठक के रोंगटे खड़े कर देते हैं।

एक उदाहरण देखिए—

"बज्जिय घोर निसान रान चाहुआन चहूँ दिसि।
सकल सूर सामन्त समर बल जंत्र मंत्र तिसि।"

अतः स्पष्ट है कि पृथ्वीराजरासो में अनेक सर्गों में वीर रस का अत्यन्त ओजस्वी रूप में वर्णन किया गया है। कवि ने युद्ध वर्णन के माध्यम से नायक की शूरवीरता, सैनिकों की युद्ध कौशलता, अस्त्र-शस्त्रों की टंकार, युद्ध-विजय, शत्रु सैनिकों का घायल होकर गिरना आदि का अत्यन्त ओजस्वी वर्णन देखते ही बनता है। पृथ्वीराजरासो के 7, 13, 15, 17, 31, 32, 34, 55, 56, 57, 61, 66 एवं 67 सर्गों में कवि ने वीर रस का प्रभावशाली वर्णन किया है। वीर रस के इन वर्णनों में सैनिकों का जोश और रणभूमि में युद्ध का वातावरण अत्यन्त सजीव हो उठा है जिसे पढ़कर पाठक युद्ध का सा दृश्य देखने लगता है।

(Most Imp.)

प्रश्न 7. पद्मावती का नखशिखनिरूपण कीजिए।

अथवा

पद्मावती के रूप-सौंदर्य पर सार रूप में प्रकाश डालिए।

उत्तर—पृथ्वीराजरासो में बताया गया है कि पद्मावती राजा विजयपाल की पुत्री थी। राजा की सुन्दर पत्नी पद्मसेन ने पद्मावती को जन्म दिया था। पद्मावती चन्द्रमा की सोलह कलाओं की अद्वितीय सुन्दरी थी। रति के समान सुन्दर होने के कारण वह सब को आसक्त कर लेती थी। उसके अंग-अंग से सौंदर्य झलकता था। कवि ने कहा है कि पशु-पक्षी, मनुष्य व देवता आदि भी उसकी सुन्दरता को देखकर मोहित हो जाते थे। कवि ने उसके नख-शिख के अनुपम सौंदर्य का वर्णन करते हुए लिखा है—

"उस सुन्दरी बाला ने खिले हुए कमल, मृग, भ्रमर, वेणु तथा खंजन आदि सभी के सौन्दर्य को लूट लिया है अर्थात् पद्मावती के शरीर के सुगन्ध ने कमलों की सुगन्ध को अंगीकार किया है। नेत्रों ने हिरणों की आँखों को भी जीत लिया है। उसके लम्बे काले बालों ने भ्रमरों के मान को कुचल दिया है। उसका मधुर स्वर मुरली की मधुरता को पराजित करता है और उसके सुन्दर नेत्रों की सजगता एवं चंचलता खंजन पक्षी की चंचलता को पराजित करती है। नायिका का गौर वर्ण का शरीर हीरे के समान चमकता है। उसकी नासिका तोते की नासिका के समान है। उसके अधर विम्बा के फल के समान है। पद्मावती की मंद-मंद गति को देखकर हाथी, हंस और सिंह भी लज्जित हो जाते हैं और वे कहीं दूर जाकर छिप जाते हैं। उसे देखकर ऐसा लगता है कि विधाता ने पद्मावती को इन्द्र की पत्नी अर्थात् शचि के रूप में बनाया है।"

"मनहुं कला ससि भान, कला सोलह सो बन्निय।
बाल बेस ससिता समीप, अंम्रित रस पिनिन्य।।
बिगसि कमल म्रिग भ्रमर, बैन, पंजन मृग लुट्टिय।
हीर कीर अरू बिम्ब, मोति नष सिप अहि घुट्टिय।।
छप्पति गयन्द हरि हंस गति, दिह बनाय संचै सचिय।
... रूप पद्मावतिय, मनहुं काम कामिनी रचिय।।"

पद्मावती में सभी शुभ लक्षण विद्यमान थे। सुंदर होने के साथ-साथ वह चौसठ कलाओं, चौदह विद्याओं तथा चार वेदों के अध्ययन में पारंगत थी। अभी-अभी वह वयःसंधि को प्राप्त हुई थी। बसंत की शोभा की तरह वह सभी में आनन्द उत्पन्न करने लगी थी।

प्रश्न 8. 'पद्मावत समय' में वीर रस एवं शृंगार रस की प्रधानता है–इस कथन की समीक्षा कीजिए। (Imp.)

उत्तर–पद्मावत समय पृथ्वीराजरासो का प्रमुख सर्ग है। इसमें कवि ने राजा विजयपाल की पुत्री पद्मावती एवं पृथ्वीराज के प्रेम और विवाह का वर्णन तथा समुद्रशिखर के युद्ध एवं पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गौरी के युद्धों का वर्णन है। इस प्रकार शृंगार और वीर दोनों रसों का सजीव चित्रण इस सर्ग में हुआ है। प्रस्तुत सर्ग के आरम्भ में ही कवि ने पदमावती के अनुपम सौंदर्य का वर्णन किया है। पद्मावती ही काव्य नायिका है। कवि पद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखा है–

"कुटिल केश सुदेश, पौह परि चियत पिक्कसद
कमल गन्ध वयसंध, हंसगति चलित मंद मंद
सेत वस्त्र सोहै सरीर, नष स्वांति बूँद जस
भ्रमर भंवहि भुल्लहिं सुभाव, मकरन्द बास रस
नैन निरखि सुष पाय सुक, यह सुदिन मूरति रचिय
उमा प्रसाद हर हेयियत, मिलहिं राज प्रथिराज जिय।"

इस पद्य से स्पष्ट होता है कि पद्मावती का प्रेम एकपक्षीय है। वह पृथ्वीराज के वियोग के कारण अत्यधिक व्याकुल है। पद्मावती समय में कवि ने संयोगपूर्ण विरह का ही वर्णन किया है। अतः कवि ने वियोग शृंगार की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

प्रस्तुत सर्ग का दूसरा प्रमुख रस वीर रस है। कवि ने पृथ्वीराज चौहान की वीरता का आरम्भ से ही चित्रण किया है। वह पृथ्वीराजरासो ग्रंथ का नायक है। पद्मावती समय में शहाबुद्दीन गौरी के साथ युद्ध का सजीव चित्रण किया गया है। चन्दबरदायी के इस युद्ध वर्णन की प्रमुख विशेषता है कि उन्होंने युद्ध के समय सैनिकों की मनोस्थिति पर भी समुचित प्रकाश डाला है। इस सर्ग में पृथ्वीराज चौहान, शहाबुद्दीन गौरी, राजा विजयपाल और कुमोदमणि चार राजाओं की वीरता का उल्लेख किया है। युद्ध से पूर्व सेनाओं की साज-सज्जा का वर्णन की अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है। साज सज्जा के तुरन्त बाद भयंकर युद्ध आरम्भ हो जाता है। एक दूसरे पर वार किये जाते हैं। खून की नदियाँ बह निकलती है। युद्ध का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है–

"कम्मान बांन छुट्टहिं अपार
लागतं लोह इमि सारधार
घमसान धान सब बोर खेत
घन श्रोन बहत अरु रूकत रेत।।"

धीरे-धीरे युद्ध भयंकर होता जाता है और वीर रस का वातावरण तैयार होने लगता है। कवि को ऐसा लगता है कि मानो वीर रस स्वयं शरीर धारण करके युद्ध क्षेत्र में कूद पड़ा है।

अतः स्पष्ट है कि 'पद्मावती समय' में शृंगार एवं वीर दोनों रसों का सजीव एवं सुन्दर चित्रण किया गया है।

◆◆◆

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पृथ्वीराजरासो के रचयिता का क्या नाम है?
उत्तर–चंदबरदायी।

2. पृथ्वीराजरासो में कुल कितने सर्ग (समय) हैं?
उत्तर–69।

3. बृहद् संस्करण के अनुसार पृथ्वीराजरासो के छंद की संख्या कितनी है?
उत्तर–16306।

4. रासो के दूसरे संस्करण में कितने छंद संकलित हैं?
उत्तर–7000।

5. हिन्दी का आदि महाकाव्य कौन-सा है?
उत्तर- पृथ्वीराजरासो।
6. पृथ्वीराजरासो के कुल कितने संस्करण उपलब्ध हैं?
उत्तर- चार।
7. पृथ्वीराजरासो के तृतीय संस्करण में कुल कितने अध्याय हैं?
उत्तर- 19 अध्याय (समय)।
8. पृथ्वीराजरासो के तृतीय संस्करण में कुल कितने छंद हैं?
उत्तर- 3500।
9. पृथ्वीराजरासो के चतुर्थ संस्करण में कुल कितने पद संकलित हैं?
उत्तर- 1300 पद।
10. सर्वप्रथम किस विदेशी विद्वान ने पृथ्वराज रासो को प्रामाणिक घोषित किया था?
उत्तर- फ्रांसीसी विद्वान गार्सा द तासी ने।
11. सर्वप्रथम किस विदेशी विद्वान ने पृथ्वीराजरासो की प्रामाणिकता पर सन्देह किया?
उत्तर- डॉ. बूलर ने।
12. किन दो भारतीय विद्वानों ने पृथ्वीराजरासो को अप्रामाणिक माना है?
उत्तर- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं डॉ. रामकुमार वर्मा।
13. आनंद संवत की कल्पना किसने की है?
उत्तर- मोहन लाल विष्णुलाल पांड्या ने।
14. पृथ्वीराजरासो के अनुसार पृथ्वीराज चौहान की माता का क्या नाम है?
उत्तर- कमला।
15. पृथ्वीराजरासो का प्रधान रस कौन-सा है?
उत्तर- वीर रस।
16. किस पाश्चात्य विद्वान ने पृथ्वीराजरासो के प्रथम तीन हजार पदों का अंग्रेजी अनुवाद करवाया था?
उत्तर- कर्नल टॉड ने।
17. डॉ. श्याम सुन्दर दास पृथ्वीराजरासो को कैसी रचना मानते हैं?
उत्तर- प्रामाणिक रचना।
18. किन्हीं दो विद्वानों के नाम लिखिए जो पृथ्वीराजरासो को प्रामाणिक रचना बताते हैं?
उत्तर- डॉ. श्याम सुन्दर दास तथा मथुरा प्रसाद दीक्षित।
19. किन्हीं दो विद्वानों के नाम लिखिए जो पृथ्वीराजरासो को अर्द्ध प्रामाणिक रचना मानते हैं?
उत्तर- डॉ. दशरथ शर्मा और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।

20. ... उत्पन्न माना है?
उत्तर- अग्नि वंश से।
21. रासोकार ने पृथ्वीराज चौहान की मृत्यु कितनी बताई है?
उत्तर- 43 वर्ष की आयु में।
22. रासोकार के अनुसार शहाबुद्दीन मुहम्मद गौरी ... किसने की थी?
उत्तर- पृथ्वीराज चौहान ने।
23. पृथ्वीराजरासो में पृथ्वीराज चौहान के कितने विव... वर्णन किया गया है?
उत्तर- 14 विवाहों का।
24. पृथ्वीराज चौहान कहाँ के राजा थे?
उत्तर- दिल्ली के।
25. वीरगाथा काल का सर्वाधिक प्रसिद्ध काव्य किसे... गया है?
उत्तर- पृथ्वीराजरासो को।
26. पृथ्वीराजरासो में सर्ग को क्या कहा गया है?
उत्तर- समय।
27. भगवान विष्णु के दस अवतारों का वर्णन किस स... किया गया है?
उत्तर- 10वें समय में।
28. पृथ्वीराज चौहान कैसी बाण कला में प्रवीण था?
उत्तर- शब्द वेधी कला में।
29. आपकी दृष्टि में पृथ्वीराजरासो की नायिका कौन है
उत्तर- संयोगिता।
30. पृथ्वीराजरासो में किस भाषा का प्रयोग किया गया
उत्तर- पिंगल व डिंगल।
31. पृथ्वीराजरासो में प्रयुक्त दो प्रमुख छंदों के नाम लिख...
उत्तर- दोहा एवं छप्पय।
32. पृथ्वीराज की बहन पृथाबाई का विवाह किससे हुआ थ...
उत्तर- चित्तौड़ के रावल समर सिंह के साथ।
33. पृथ्वीराजरासो के अंतिम युद्ध का वर्णन किसने लिखा...
उत्तर- चंदबरदायी के पुत्र जल्हण ने।
34. 'पद्मावती समय' पृथ्वीराजरासो का कौन-सा समय है
उत्तर- बीसवां समय।
35. समुद्र शिखर का राजा कौन था?
उत्तर- विजयपाल।

36. पृथ्वीराज की पत्नियों के नाम की सूची किस सर्ग में दी गई है?

उत्तर—65वें सर्ग में विवाह समय।

37. पृथ्वीराजरासो का कौन-सा समय सबसे विशाल है?

उत्तर—61वां समय।

38. पृथ्वीराजरासो के रचयिता चंदबरदायी का जन्म कहाँ हुआ?

उत्तर—लाहौर में।

39. चंदबरदायी के पिता का क्या नाम था?

उत्तर—राव वेण।

40. चंदबरदायी के विद्यागुरु का क्या नाम था?

उत्तर—गुरु प्रसाद।

41. चंदबरदायी को किस देवी का उपासक कहा जाता है?

उत्तर—जालंधरी जालपा देवी का।

42. चंदबरदायी ने कितने विवाह किए?

उत्तर—दो।

43. चंदबरदायी की दोनों पत्नियों के नाम लिखिए।

उत्तर—कमला (उपनाम पिंगा) तथा गौरी (उपनाम राजौरा)।

44. चंदबरदायी के कितने पुत्र तथा पुत्रियाँ हुईं?

उत्तर—ग्यारह—दस पुत्र तथा एक पुत्री।

45. चंदबरदायी के सर्वाधिक योग्य पुत्र का क्या नाम था?

उत्तर—जल्हण।

46. चंदबरदायी की लड़की का क्या नाम था?

उत्तर—राजकाई।

47. विजयपाल किस वंश से संबंध रखता था?

उत्तर—यादव वंश से।

48. राजा विजयपाल के कितने पुत्र थे?

उत्तर—दस पुत्र।

49. राजा विजयपाल की कितनी पुत्रियाँ थीं?

उत्तर—एक।

50. राजविजय सिंह की पत्नी का नाम क्या था?

उत्तर—पद्मसेनी।

51. राजविजय सिंह की पुत्री का क्या नाम था?

उत्तर—पद्मावती।

52. कवि ने पद्मावती को स्त्री के किस रूप में चित्रित किया है?

उत्तर—पद्मिनी स्त्री के रूप में।

53. किसने पद्मावती के होठों को बिम्ब फल समझकर झपट्टा मारा था?

उत्तर—तोते ने।

54. पृथ्वीराजरासो के अनुसार पृथ्वीराज चौहान के पिता का क्या नाम है?

उत्तर—अजमेर नरेश सोमेश्वर।

55. किसके अनुसार पृथ्वीराजरासो की मूल रचना किनके संवाद के रूप में हुई थी?

उत्तर—शुक-शुकी संवाद के रूप में।

56. 'पद्मावती समय' के अनुसार पृथ्वीराज और पद्मावती के मध्य प्रेम संबंध स्थापित करने में प्रणयदूत का कार्य कौन करता है?

उत्तर—तोता।

57. पद्मावती समय में पृथ्वीराज चौहान का किस मुसलमान शासक से युद्ध हुआ?

उत्तर—शहाबुद्दीन गौरी से।

58. पृथ्वीराज ने पद्मावती के अपहरण करने के पूर्व दिल्ली का शासन किसे सौंपा?

उत्तर—चामुण्डराव को।

59. पद्मावती के समक्ष तोते में किसके गुणों का वर्णन किया था?

उत्तर—पृथ्वीराज चौहान के।

60. शहाबुद्दीन गौरी कहाँ का राजा था?

उत्तर—गजनी का।

61. पद्मावती पृथ्वीराज चौहान को कहाँ मिली थी?

उत्तर—शिव मन्दिर में।

62. विजयपाल ने अपनी पुत्री पद्मावती का रिश्ता किससे स्थिर किया था?

उत्तर—कुमायूँ के राजा कुमोदमणि से।

63. पद्मावती किससे विवाह करना चाहती थी?

उत्तर—पद्मावती पृथ्वीराज चौहान से विवाह करना चाहती थी।

64. पद्मावती समय के दो काल्पित पात्रों के नाम लिखिए।

उत्तर—विजयपाल तथा कुमोदमणि।

65. पद्मावती समय के किन्हीं दो एतिहासिक पुरुष पात्रों के नाम बताइए।

उत्तर—पृथ्वीराज चौहान तथा शहाबुद्दीन गौरी।

2 विद्यापति

व्याख्या भाग

विद्यापति पदावली

1 नन्दक नन्दन कदम्ब तरु-तर
घिरे घिरे मुरलि बजाव।। 1।।
समय-संकेत-निकेतन बइसल
बेरि-बेरि बोलि पठाव।। 2।।
सामरि, तोरा लागि
अनुखन विकल मुरारि ।। 3।।
जमुना क तिर उपवन उदवेगल
फिरि फिरि ततहि निहारि।। 4।।
गोरस बेंचए अवइत जाइत
जनि जनि पूछ बनमारि।। 5।।
तोंहे मतिमान, सुमति, मधु सूदन
वचन सुनह किछु मोरा।। 6।।
भनइ विधापति सुन वरजौवति
बन्दह नन्द-किसोरा।। 7।।

(Most Imp.)

शब्दार्थ–नन्दक नन्दन = नंद के पुत्र श्रीकृष्ण। **कदम्ब तरु-तर** = कदम्ब के पेड़ के नीचे। **समय** = राधा से मिलने के लिए निश्चित किया गया समय। **संकेत-निकेतन** = मिलने का निर्धारित स्थान। **वइसल** = बैठे हुए। **बेरि-बेरि** = बार-बार। **बोलि पठाव** = बुलावा भेज रहे हैं। **सामरि** = श्यामा, नायिका। **तोरा लागि** = तुझ में अनुरक्त होकर। **विकल** = दुःखी। **अनुखन** = हर पल। **जमुना क तिर** = यमुना का किनारा। **उदवेगल** = उद्विग्न होकर। **फिरि-फिरि** = मुड़-मुड़ कर। **ततहि** = उसी ओर। **निहारि** = देखने लगते हैं। **गोरस** = दूध-दही। **मतिमान** = समझदार। **वरजौवति** = श्रेष्ठ युवती। **बंदह** = वंदना करना।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश श्री रामवृक्ष वेनीपुरी द्वारा संपादित एवं मैथिली कोकिल विद्यापति विरचित **'वियापति पदावली'** के **'वंदना खंड'** से लिया गया है। इन पंक्तियों में कविवर विद्यापति ने रस के देवता श्रीकृष्ण की वंदना की है। राधा से मिलने के लिए कृष्ण निश्चित समय से पहले ही निर्धारित स्थान पर पहुँच जाते हैं, किन्तु राधा के वहाँ समय पर न आने के कारण वे अत्यंत व्याकुल हो उठते हैं। इन पंक्तियों में राधा की सखी अथवा कृष्ण की दासी राधा को श्रीकृष्ण से मिलने के लिए कहती है।

व्याख्या–राधा की सखी अथवा श्रीकृष्ण की दूती कहती है, हे राधा! नंद के पुत्र श्रीकृष्ण कदम्ब के वृक्ष के नीचे बै धीरे-धीरे मुरली बजा रहे हैं अर्थात् तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। श्रीकृष्ण ने तुमसे मिलने का जो समय और स्थान निश्चित किया वे उसी स्थान पर बैठे हुए तुम्हें बुला रहे हैं। कहने का तात्पर्य है कि श्रीकृष्ण मुरली बजाकर राधिका जी को वहाँ आने का स कर रहे हैं। हे श्यामा! तुम्हारे लिए श्रीकृष्ण हर पल बेचैन हो रहे हैं अर्थात् उनकी व्याकुलता हर क्षण बढ़ती जा रही है। य के तट पर स्थित उपवन में कृष्ण बेचैन होते हुए बार-बार तथा मुड़-मुड़ कर उस मार्ग की ओर देखते हैं जिस मार्ग से तुम्हारे आने की संभावना हैं। दूध, दही और गोरस आदि को बेचने के लिए जो गोपियाँ उस मार्ग से आती-जाती हैं, वे उन गोपियों तुम्हारे विषय में पूछते हैं। हे राधा! तुम स्वयं बुद्धिमत्ती हो, श्रीकृष्ण भी श्रेष्ठ बुद्धि वाले हैं। फिर भी तुम मेरी यह तनिक-सी सुनो। विद्यापति कवि कहते हैं कि हे श्रेष्ठ युवती राधा! मेरी बात सुनो! तुम नंद किशोर श्रीकृष्ण की वंदना करो अर्थात् उनसे जाकर अवश्य मिलो और उन्हें पूर्णतया प्रसन्न करो। कहने का तात्पर्य है कि राधा जी के मिलने से ही श्रीकृष्ण प्रसन्न हो जाएं

विशेष–1. इन पंक्तियों में जहाँ एक ओर राधा एवं श्रीकृष्ण की आराधना की है, वहीं दूसरी ओर यह भी स्पष्ट किया कि इस काव्य-रचना का प्रमुख लक्ष्य भक्ति-भाव की अपेक्षा शृंगार रस की अभिव्यंजना करना है।

2. सम्पूर्ण पद्य में शृंगार रस की सुंदर योजना की गई है।

3. कोमलकांत पदावली का सफल प्रयोग देखते ही बनता है।

4. भाषा माधुर्य गुण सम्पन्न है।

5. अभिधा शब्द-शक्ति के प्रयोग के कारण वर्ण्य-विषय सहज, सरल एवं रोचक बन पड़ा है।

6. 'तोंहे मतिमान', 'सुमति मधुसूदन' में पर्यायोक्ति अलंकार की छटा है।

7. 'नंदक नंदन' में सभंग अलंकार का प्रयोग हुआ है।

2 **देख देख राधा रूप आपर।**
अपुरुब के बिहि आनि मिला ओल।।
खिति-तल लावनि-सार।।
अंगहि अंग अनँग मुरछायत
हेरए पड़ए अथीष्ट।
मनमथ कोटि-मथन करु जे जन
से हेरि महि-मधि गीर।।
कत-कत लखिमी चरन-तल ने ओछए
रागिनि हेरि विभोरि।
करु अभिलाख मनहि पदपंकज
अहोनिसि कोर अगोरि।। **(Most Imp.)**

शब्दार्थ–**रूप** = सौंदर्य। **आपर** = असीम। **अपुरुब** = अपूर्व। **के** = किस। **बिहि** = विधाता। **लावनि-सार** = सौंदर्य का सार। **अनंग** = कामदेव। **हेरए** = देखकर। **मुरछायत** = मूर्च्छित हो जाता है। **अथीष्ट** = अस्थिर, चंचल। **मनमथ कोटि** = करोड़ों कामदेव। **मथन करु** = लज्जित कर देते हैं। **जे जन** = जो कृष्ण। **हेरि** = राधा के सौंदर्य को देखकर। **से** = वह। **महि मधि** = पृथ्वी पर गिर-गिर पड़ते हैं। **लखिमी** = लक्ष्मी। **कत-कत** = कितनी। **ने ओछए** = न्यौछावर होना। **अहोनिसि** = दिन-रात। **कोर** = गोद। **अगोरि** = रक्षा करो।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश **'श्री रामवृक्ष बेनीपुरी'** द्वारा संपादित एवं मैथिली कोकिल विद्यापति विरचित **'विद्यापति पदावली'** शीर्षक काव्य ग्रंथ में संकलित **'वंदना खंड'** से उद्धृत है। इन पंक्तियों में महाकवि विद्यापति ने राधा के असीम एवं अपूर्व सौंदर्य का चित्रांकन किया है।

व्याख्या–कवि ने राधा के अपूर्व सौंदर्य का उल्लेख करते हुए कहा है कि राधा के अपार सौंदर्य की ओर देखिए। राधा के सौंदर्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी रचना के लिए विधाता ने पृथ्वी के सारे सौंदर्यों के तत्त्व लेकर मिला दिये हो। कवि के कहने का तात्पर्य है कि राधा का रूप इतना सुंदर है कि मानो उसके रूप-सौंदर्य में पृथ्वी के सारे सौंदर्य तत्त्वों का

समावेश हो गया है। उसके रूप-सौंदर्य अथवा उसके प्रत्येक अंग की असीम सुंदरता को देखकर कामदेव भी व्याकुल हो मूर्च्छित-सा हो जाता है। कहने का तात्पर्य है कि सुंदरता का देवता कामदेव भी उसके सौंदर्य से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। इतना ही नहीं, जो कृष्ण अपने रूप-सौंदर्य से करोड़ों कामदेव को भी लज्जित कर देते हैं। वे भी राधा के अपूर्व रूप-सौंदर्य को देखकर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि राधा का रूप-सौंदर्य इतना अधिक है कि कृष्ण उसके प्रति आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकते।

कवि पुनः कहता है कि राधा की सुंदरता को देखकर कितनी ही लक्ष्मियाँ उसके चरणों पर न्यौछावर की जा सकती हैं। कितनी ही सुंदरियाँ राधा के रूप-सौंदर्य पर मुग्ध होकर देखती हैं तथा मन में अभिलाषा करती हैं कि वे राधा के चरण कमलों को दिन-रात अपनी गोद में रखकर उनकी देखभाल करती रहें। कहने का भाव है कि राधा का रूप-सौंदर्य इतना आकर्षक है कि केवल पुरुष ही नहीं, अपितु नारियाँ भी उसकी ओर आकृष्ट हुए विना नहीं रह सकतीं।

विशेष–1. यहाँ कवि ने राधा के अपूर्व सौंदर्य का बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन किया है। राधा के रूप-सौंदर्य का वर्णन करके यह भी स्पष्ट कर दिया है कि इस काव्य ग्रंथ का प्रतिपाद्य शृंगार रस है।

2. अतिशयोक्ति, प्रतीप, वीप्सा, व्यतिरेक तथा हेतूत्प्रेक्षा अलंकारों का सुंदर एवं स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।
3. सहज, सरल तथा साहित्यिक मैथिली भाषा का सुंदर प्रयोग है।
4. भाषा की मधुरता देखते ही बनती है।
5. माधुर्य गुण है तथा शृंगार रस का परिपाक हुआ है।
6. सम्पूर्ण पद में संगीतात्मकता है तथा गीति काव्य की विशेषताएँ विद्यमान हैं।

3

सैसव जौवन दुहु मिलि गेल।
स्रवन क पथ दुहुलोचन लेल ।। 2।।
वचनक चातुरि लहु-लहु हास।
धरनिये चाँद कएल परगास।। 4।।
मुकुर लई अब करई सिंगार।
सखि पूछइ कइसे सुरत-विहार।। 6।।
निरजना उराज हेरइ कत बेरि।
हसइ से अपन पयोधर हेरि।। 8।।
पहिल वदरि-सम पुन नवरंग।
दिन दिन अनँग अगोरल अंग ।। 10।।
माधव पेखल अपुरूब बाला।
सैसव जौवन दुहु एक भेला।। 12।।
विद्यापति कह तुहु आगे आनि।
दुहु एक जोग हइ के कह सयानि।। 14।। **(Most Imp.)**

शब्दार्थ–सैसव = बचपन। **जौबन** = जवानी, युवावस्था। **दुहु** = दोनों। **स्रवन क** = कान। **पथ** = रास्ता। **लोचन** = आँख। **सयानि** = बुद्धिमत्ती। **आगे आनि** = अज्ञानी, अनजान, अबोध। **माधव** = कृष्ण। **नवरंग** = नींबू। **भेला** = दोना। **पयोधर** = स्तन। **कत बेरि** = कितनी ही बार। **सुरत-विहार** = प्रेम-लीला। **निरजना** = एकांत। **अनँग** = कामदेव। **वचनक** = वाणी। **चातुरि** = चतुराई। **लहु-लहु** = मंद-मंद। **हास** = हँसी। **धरनिये** = पृथ्वी पर। **परगास** = प्रकाश। **मुकुर** = दर्पण। **लई** = लेकर। **उराज** = उरोज, स्तन।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश **'श्री रामवृक्ष बेनीपुरी'** द्वारा संपादित एवं मैथिली कोकिल **'विद्यापति'** द्वारा रचित **'विद्यापति पदावली'** के **'वयःसंधि'** खंड से अवतरित है। मैथिली भाषा में रचित पदावली एक शृंगारिक रचना है। यहाँ कवि नायिका राधा की वयः संधि का वर्णन करता है।

व्याख्या–कवि कहता है कि उस नायिका का शैशव और यौवन दोनों परस्पर मिल गए हैं। उसके दोनों कानों का पास दोनों नेत्रों ने ले लिया है। भाव यह है कि उसके नेत्र फैलकर कानों की ओर बढ़ गए हैं और अब वह कटाक्ष करने लगी है। उसके वचनों में सरलता समाप्त हो गई है और चतुराई उत्पन्न हो गई है। अब वह मंद-मंद मुस्कुराने लग गई है। उसकी छवि को देखकर ऐसा लगता है मानो चन्द्रमा पृथ्वी पर प्रकाश फैला रहा हो अर्थात् चन्द्रमा पृथ्वी पर उतर आया है। अब वह अपने हाथों में दर्पण लेकर अपना शृंगार करती है। यही नहीं, वह अपनी सखियों से काम लीला की बातें भी पूछने लगी है। एकांत स्थान पर वह अपने उभरते हुए उरोजों को न जाने कितनी बार देखती है और उन्हें देखकर हंसने लगती है। पहले उसके उरोज बेर के आकार जैसे थे परंतु अब विकसित होकर नारंगी के समान बढ़ गए हैं। अब कामदेव उसके अंगों पर पहरा देने लग गया है। भाव यह है कि उसके अंगों में काम भावना उत्पन्न हो गई है। कृष्ण ने इस सुंदर बाला को देखा जो शैशव और यौवन के संगम की अवस्था में पहुँच चुकी है। अंत में कवि विद्यापति कहते हैं कि राधा के इस रूप को देखकर एक सखी अन्य सखी से कहने लगी कि तुम तो अभी तक नासमझ और अनजान हो! कौन कहता है कि वह पूर्ण युवती हो गई है अर्थात् अभी तक उसमें शैशव और यौवन अवस्था में विद्यमान है।

विशेष–1. यहाँ कवि ने वयः संधि को प्राप्त राधा के शारीरिक सौंदर्य का बड़ा सुंदर और प्रभावशाली वर्णन किया है।

2. सम्पूर्ण पद्य में पर्यायोक्ति, उपमा, काकु व्रक्रोक्ति तथा पुनरुक्ति प्रकाश अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

3. अभिधा शब्द-शक्ति का प्रयोग है तथा सम्पूर्ण पद्य में गीतिका विद्यमान है।

4. सहज, सरल तथा प्रवाहमयी मैथिली भाषा का प्रयोग हुआ है।

5. शब्द-चयन सर्वथा उचित और भावाभिव्यक्ति में अनुकूल है।

6. माधुर्य गुण है तथा शृंगार रस का परिपाक है।

4 **पहिल बदरि कुच पुन नवरंग।**
दिन दिन बाढ़य पिड़ए अनंग।।2।।
से पुन भए गेल बीण का पोर।
अब कुछ बाढ़ल सिरिफल जोर।।4।।
माधव पेखल रमनि संधान।
घाटहि भेटल करत सिनान।।6।।
तनसुक सुवसन हिरदय लागि।
जे पुरुख देखब तेकर भागि।।8।।
उर हिल्लोलित चाँचर केस।
चामर झाँपल कनक-महेस।।10।।
भनइ विद्यापति सुनह मुरारि।
सुपुरुख विलासए से बरनारि।।12।। **(Imp.)**

शब्दार्थ–**पहिल** = पहले। **बरनारि** = सुंदर नारी। **सुपुरुख** = श्रेष्ठ पुरुष। **चामर** = चँवर। **तनसुक** = एक प्रकार का कपड़ा। **माधव** = कृष्ण। **बदरि** = बेर। **विलासए** = विलास। **मुरारि** = कृष्ण। **चाँचर** = चंचल। **सिनान** = स्नान। **सिरिफल** = बेल। **बाढ़य** = बढ़ाना, विकसित। **झाँपल** = ढँक लेना। **हिल्लोलित** = धड़कना। **संधान** = वयः संधि। **नवरंग** = नारंगी। **कुच** = स्तन। **महेस** = महादेव। **उर** = हृदय। **भागि** = भाग्यशाली। **रमनि** = नायिका। **पेखल** = देखना। **अनंग** = कामदेव। **पिड़ए** = पीड़ा।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश **'श्री रामवृक्ष बेनीपुरी'** द्वारा सम्पादित एवं मैथिली कोकिल विद्यापति विरचित **'विद्यापति पदावली'** के **'वयःसंधि'** खंड से अवतरित है। यहाँ कवि ने राधा के उरोजों की सुंदरता का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है। जब नायिका अपने शैशव को छोड़कर युवावस्था में प्रवेश करती है तो उसके कुचों में निरंतर परिवर्तन उत्पन्न होने लगता है। कवि यहाँ इसी स्थिति का वर्णन करता है।

व्याख्या–यहाँ कवि नायिका राधा के अंगों के विकास का परिचय देता हुए कहता है कि पहले उसके उरोज बेर के समान थे, परंतु अब वे बढ़कर नारंगी के समान हो गए हैं। प्रतिदिन कामदेव उसमें काम-पीड़ा की वृद्धि कर रहा है। भाव यह है कि उभरते यौवन के कारण उस नायिका के अंगों में काम-जन्य पीड़ा बढ़ती जा रही है। अब उसके उरोज बढ़कर बड़े नींबुओं के

समान हो गए हैं और अन्त में वे श्रीफल के समान बड़े हो गए हैं। श्रीकृष्ण ने उस राधा को वयः संधि की अवस्था में घाट पर स्नान करते देखा था। उस समय राधा ने अपने तन पर साड़ी का पतला कपड़ा धारण किया हुआ था, जो कि भीगकर उसके हृदय से चिपक गया था। जिस नायक ने उस राधा को इस अवस्था में देखा है, वह सचमुच भाग्यवान है। उसके वक्षस्थल पर पड़े हुए गीले बाल धड़कन के कारण चंचल हो रहे थे। उन बालों को देखकर ऐसा लगता था, मानो स्वर्ण निर्मित शिवलिंग को चँवर से ढक दिया हो। अन्त में विद्यापति कवि कृष्ण से कहते हैं कि हे कृष्ण! मेरी बात को ध्यान से सुनो। जो व्यक्ति उस सुंदर नारी के साथ विलास करेगा, वह श्रेष्ठ पुरुष होगा।

विशेष–1. यहाँ कवि ने नायिका राधा के उरोजों के क्रमिक विकास पर प्रकाश डाला है।

2. अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का सुंदर एवं स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

3. माधुर्य गुण होने के कारण शृंगार रस का सुंदर परिपाक है।

4. सहज, सरल तथा स्वाभाविक मैथिली भाषा का सफल प्रयोग है।

5. शब्द-चयन सर्वथा उचित है तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।

6. सम्पूर्ण पद में गेयता विद्यमान है।

5

खने खन नयन कोन अनुसरई।
खने खन बसन धूलि तनु भरई।।2।।
खने खन दसन-छटा छटहास।
खने खन अधर आगे गहु बास।।4।।
चउँकि चलए खने खन चलु मन्द।
मनमथ-पाठ पहिल अनुबंध।।6।।
हिरदय-मुकुल हेरि-हेरि थोर।
खने आँचर दए, खने होय भोर।।8।।
बाला सैसव तारुन भेंट।
लखए न पारिअ जेठ कनेठ।।10।।
विद्यापति कह सुन वर कान।
तरुनिम सैसव चिह्नइ न जान।।12।।

शब्दार्थ–**खने-खन** = क्षण-क्षण। **सैसव** = शैशव, बचपन। **कनेठ** = छोटा। **होय** = होना। **अनुबंध** = भूमिका। **गहु बास** = वस्त्र आगे करना। **धूलि** = धूल। **तरुनिम** = यौवन। **जेठ** = बड़ा। **थोर** = थोड़ा-सा। **मनमथ** = कामदेव। **अधर** = होंठ। **अनुसरई** = कटाक्ष। **नयन** = आँख। **तनु** = शरीर। **दसन** = दाँत। **छटहास** = हँसी करना। **चलु** = चलना। **हिरदय** = हृदय की कली, स्तन। **हेरि** = देखना। **भोर** = भोली। **तारुन** = तारुण्य। **लखए** = देखना।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश **'श्री रामवृक्ष बेनीपुरी'** द्वारा सम्पादित एवं मैथिली कोकिल **'विद्यापति'** द्वारा रचित **'विद्यापति पदावली'** के **'वयःसंधि'** खंड से अवतरित है। यहाँ विद्यापति ने वयःसंधि को प्राप्त नायिका के शारीरिक और मानसिक स्थिति में उत्पन्न परिवर्तनों पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या–कवि कहता है कि वयः संधि को प्राप्त नायिका राधा अपने-आप में अटपटी क्रियाएँ करने लग गई है। कारण यह है कि उसने शैशवावस्था को मूलतः छोड़ा नहीं है और यौवन उसमें प्रवेश करने लग गया है। क्षण-क्षण में उसकी आँखें कटाक्ष करने लगती हैं और क्षण-क्षण में उसका आँचल धूल में गिरने लगता है और शरीर धूल से भरने लगता है। क्षण-क्षण में दाँतों की ज्योति हँसी के साथ फैलने लगती है। वह क्षण-क्षण में अपनी हँसी को छिपाने के लिए होंठों के आगे अपना वस्त्र कर लेती है। क्षण-क्षण में वह चौंककर चल पड़ती है और कभी मंद पड़ जाती है। कामदेव के पाठ की यह पहली भूमिका है। वह अपने हृदय की कली अर्थात् उरोजों को देख लेती है। क्षण भर में वह आंचल ले लेती है और अपने आप को भूल जाती है। उस युवती में शैशव और यौवन की भेंट हो चुकी है। यह पता नहीं चलता कि उन दोनों में से छोटा कौन है और कौन बड़ा। अन्त में विद्यापति कहते हैं कि हे श्रेष्ठ कृष्ण! सुनो। यौवन को प्राप्त बचपन को पहचाना नहीं जा सकता अर्थात् दोनों इस प्रकार घुल-मिल जाते हैं कि यह पता नहीं चलता कि बालिका शैशव को प्राप्त है अथवा यौवनको।

विशेष–1. यहाँ कवि ने वयः संधि को प्राप्त नायिका के मनोभावों तथा क्रियाकलापों का बड़ा सुंदर और आकर्षक वर्ण किया है।

2. अनुप्रास, रूपक तथा पुनरुक्ति प्रकाश अलंकारों का प्रयोग है।

3. अभिधा तथा लक्षणा शब्द-शक्तियों का सफल प्रयोग हुआ है।

4. सहज, सरल तथा प्रवाहमयी मैथिली भाषा का प्रयोग है।

5. शब्द-चयन सर्वथा उचित तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।

6. माधुर्य गुण है तथा शृंगार रस का परिपाक हुआ है।

7. सम्पूर्ण पद में गेयता विद्यमान है।

6

कि आरे! नव जौवन अभिरामा।
जत देखल तत कहए न पारिअ
ओ अनुपम एक ठामा।। 2।।
हरिन इन्दु अरविन्द करिनि हेम
पिक बूझल अनुमानी।
नयन बदन परिमल गति तन-रुचि
अओ अति सुललित बानी।।4।।
कुच जुग परसि चिकुर फुजि पसरल
ता अरुझायल हारा।
जनि सुमेरु ऊपर मिलि ऊगल
चाँद बिहिनु सब तारा।। 6।।
लोल कपोल ललित मनि-कुंडल
अधर बिम्ब अध जाई।
भौंह धपर, नासापुट सुन्दर
से देखि कीर लजाई।। 8।।
भनइ विद्यापति से बर नागरि
आन न पावए कोई।
कंसदलन नारायन सुन्दर
तसु रंगिनी पए होई।। 10।। (Imp

शब्दार्थ–ओ अनुपम = वह अनुपम पदार्थ। बूझल अनुमानी = अनुमान से ही जाने जा सकते हैं। नासापुट = नाक रंगिनी = रमणी। कहए न पारिअ = कहते नहीं बनता। कुच जुग = दोनों उरोज। अति सुललित = अत्यन्त मधुर। अरुझायल = उलझा हुआ। बिम्ब = बिम्बफल। कंसदलन = कंस का वध करने वाले (श्रीकृष्ण)। मिलि ऊगल = मिलकर उगा हुआ। परसि = स्पर्श करते हुए। फुजि परसल = खुलकर बिखरे हुए। परिमल = सुगंधित। चिकुर = केश। तत = उतना। अरविन्द = कमल करिनि = हथिनी। बर नागरि = श्रेष्ठ नारी का।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश 'श्री रामवृक्ष बेनीपुरी' द्वारा संपादित एवं मैथिली कोकिल विद्यापति विरचित 'विद्यापति पदावली' के 'नख-शिख' खंड से अवतरित है। इस खंड में कवि ने नायिका के अप्रतिम सौंदर्य का वर्णन किया है। यहाँ कवि विद्यापति दूती के माध्यम से नायिका के अंगों के सौंदर्य का बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन करते हैं।

व्याख्या–दूती राधिका के रूप-सौंदर्य का वर्णन श्रीकृष्ण के समक्ष करती हुई कहती है कि राधा का नवयौवन कितना सुं है अर्थात् राधा पर अभी नया-नया यौवन आया है। उसका यौवन जितना देखने में सुंदर लगता है, वैसा उसका वर्णन नहीं कि जा सकता। कहने का भाव यह है कि राधा के यौवन का सौंदर्य अवर्णनीय है। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि संसार

छहों अनुपम वस्तुएँ एक ही स्थान पर एकत्रित हो गई हैं अर्थात् संसार की छह सुंदर वस्तुएँ एक साथ उसके सौन्दर्य में समाहित हो गई हैं। उसके नयन हिरण के नेत्रों के समान सुंदर हैं। उसका मुख चन्द्रमा के समान और उसके शरीर और सांसों से निकलने वाली सुगंध कमल की सुगंध के समान है। उसकी चाल हथिनी की चाल के समान मस्त है। उसके शरीर की आभा सोने के समान है तथा उसकी ध्वनि कोयल की ध्वनि के समान मधुर है। कहने का तात्पर्य है कि संसार की छहों वस्तुओं का सौंदर्य राधा के सौंदर्य में समाहित है।

दूती पुनः कहती है कि उसके दोनों कुचों से स्पर्श करते हुए उसके काले बालों में उसके गले का हार उलझा हुआ है। उसके गले में पड़ा वह मोतियों का हार ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो सुमेरू पर्वत पर चन्द्रमा-विहीन आकाश में तारे उग आए हों। उसके गालों पर चंचल मणियों से युक्त कुण्डल की आभा पड़ रही है जिससे उसका सौंदर्य और भी निखर गया है। उसके होंठों के रंजित वर्ण अर्थात् लाल रंग देखकर बिम्बफल भी लज्जित हो जाता है। कहने का तात्पर्य है कि उसके होंठों की लाली बिम्बफल की लालिमा से भी अधिक सुंदर है। उसकी काली भौंहों को देखकर भ्रमर और उसकी नासिका की सुंदरता को देखकर तोते लज्जित हो जाते हैं अर्थात् उसकी भौंहें भ्रमर से अधिक काली और नाक तोते की नाक से सुंदर है। कविवर विद्यापति कहते हैं कि ऐसी सुंदर रमणी को श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कोई नहीं प्राप्त कर सकता। कंस को मारने वाले श्रीकृष्ण ही ऐसी सुंदर एवं श्रेष्ठ रमणी को प्राप्त कर सकते हैं।

विशेष–1. यहाँ कवि ने परंपरागत उपमानों का प्रयोग करते हुए राधा के पूर्व सौंदर्य का मनोहारी वर्णन किया है।

2. यथासंख्य, व्यतिरेक तथा उपमा अलंकारों का सुंदर व स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

3. सहज, सरल तथा मैथिली भाषा का प्रयोग है तथा कोमलकांत पदावली है।

4. माधुर्य गुण है तथा शृंगार रस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

5. अभिधा तथा लक्षणा शब्द-शक्तियों का सफल प्रयोग किया गया है।

6. कवि की कल्पना-शक्ति बड़ी मनोहारी बन पड़ी है।

7. संपूर्ण पद्य में गेयता विद्यमान है।

7 **माधब, की कहब सुन्दरि रूपे।**
कतेक जतन बिहि आनि समारल
देखल नयन सरूपे।। 2।।
पल्लब-राज चरन-जुग सोभित
गति गजराज क भाने
कनक-कदलि पर सिंह समारल
तापर मेरु समाने।। 4।।
मेरु उपर दुइ कमल फुलायल
नाल बिना रुचि पाई।
मनि-मय हार धार बहु सुरसरि
तओ नहिं कमल सुखाई।। 6।। **(Most Imp.)**
अधर बिम्ब सन, दसन दाड़िम-बिजु
रबि ससि उगथिक पासे।
राहु दूर बस नियरो न आबथि
तैं नहि करथि गरासे।। 8।।

सारँग नयन बयन पुनि-सारँग
सारँग तसु समधाने।
सारँग उपर उगल दस सारँग
केलि करथि मधुपाने।। 10।।
भनइ विद्यापति सुन बर जौबति
एहन जगत नहि आने
राजा सिवसिंघ रूपनरायन–
लखिमा देइ पति भाने।। 12।।

शब्दार्थ–सरूपे = सत्य। **सुरसरि** = गंगा नदी। **गजराज क** = श्रेष्ठ हाथी के। **की कहब** = क्या कहा जाए। **कनक-कदलि** = सोने के केले के थम के समान। **नाल** = कमल डंडी। **मनि-मय हार** = मणियों से जुड़ा हुआ हार। **तओ** = इसलिए। **सुखाब** = सूखना। **मेरु** = पहाड़। **समारल** = समाया है।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश **'श्री रामवृक्ष बेनीपुरी'** द्वारा संपादित एवं मैथिली कोकिल विद्यापति विरचित **'विद्यापति पदावली'** से **'नख-शिख'** खंड से अवतरित है। इस खंड में कवि ने नायिका के अप्रतिम सौंदर्य का वर्णन किया है। यहाँ कवि विद्यापति दूती के माध्यम से नायिका के अंगों के सौंदर्य का बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन करते हैं।

व्याख्या–दूती श्रीकृष्ण को संबोधित करते हुए कहती है कि हे माधव! उस सुंदरी (राधा) के सौंदर्य को किस प्रकार कहा जाए अर्थात् नायिका इतनी रूपवती है कि किसी भी प्रकार उसके सौंदर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता। उसके सौंदर्य को अपने आँखों से देखकर ऐसा लगता है कि ब्रह्मा जी ने अनेकानेक प्रयास करके उसके असीम सौंदर्य को सँवारा है। उसके दोनों चरण खिले हुए कमल के समान सुशोभित हो रहे हैं। उसकी चाल हाथी की चाल के समान मस्ती भरी है। उसकी सोने के केले के समान सुंदर जंघाओं पर सिंह की कटि के समान क्षीण कटि है अर्थात् कमर अत्यंत पतली है। उसकी क्षीण कटि पर सुमेरु पर्वत के समान उसका उन्नत वक्षस्थल है। उसके सुमेरु के समान वक्षस्थल पर कमल के समान उरोज़ हैं जो पूर्णतः खिले हुए कमल के फूल की भाँति विकसित हैं। ये खिले हुए दोनों फूल नाल के बिना ही सुशोभित हैं। उसके वक्षस्थल पर सुशोभित मणिमय हार की लड़ियाँ ऐसी सुशोभित हो रही हैं कि मानो पर्वत से निकली हुई गंगा की अनेक धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं। इन्हीं गंगा की धाराओं के कारण तो कमल कभी सूखते नहीं हैं।

विशेष–1. यहाँ कवि ने परंपरागत उपमानों का प्रयोग करते हुए नायिका के नख-शिख सौंदर्य का प्रभावशाली वर्णन किया है।

2. 'कनक कदलि', 'गजराज', 'मेरुकमल' आदि में रूपकातिशयोक्ति अलंकार की छटा अति शोभनीय है। अन्यत्र कवि ने अनुप्रास तथा संबंधातिशयोक्ति अलंकारों का सुंदर प्रयोग किया है।

3. साहित्यिक मैथिली भाषा का सुंदर प्रयोग है तथा शब्द-चयन सर्वथा उचित तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।

4. माधुर्य गुण है तथा शृंगार रस का परिपाक हुआ है।

5. सम्पूर्ण पद में संगीतात्मकता विद्यमान है।

6. अभिधा तथा लक्षणा शब्द-शक्तियों के कारण नायिका का नख-शिख वर्णन बड़ा ही रोचक बन पड़ा है।

8

चाँद-सार लए मुख-घटना करु
लोचन चकित चकोरे।
अमिय धोय आँचर धनि पोछलि
दह दिसि भेल उँजोरे।। 2।।
जुग-जुग के बिहि बूढ़ निरस उर
कामिनि कोने गढ़ली।
रूप सरूप मोयँ कहइत असँभव
लोचन लागि रहली।। 4।।

गुरु नितम्ब भरे चलए न पारए
माझ-खानि खीनि निमाई।
भागि जाइत मनसिज धरि राखलि
त्रिबलि-लता अरुझाई।। 6।।
भनइ विद्यापति अद्भुत कौतुक
ई सब बचन सरूपे।
रूपनरायन ई रस जानथि
सिवसिंघ मिथिला भूपे।। 8।।

(Most Imp.)

शब्दार्थ–अरुझाई = बँधा हुआ है। त्रिबलि लता = त्रिबली रूपी लताओं से। निरस उर = नीरस हृदय वाला। कोने गढ़ली = किसने रचना की। धनि = सुंदरी। चाँद-सार लए = चाँद का सार भाग लेकर। अमिय = अमृत। बह दिसी = दसों दिशाओं में। निमाई = निर्माण की। लोचन लागि रहली = लोचन लगाकर ही रह जाते हैं। भागि जाइत = भागते हुए। खानि-खीनि = पतली-पतली। जानथि = जानते हैं।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश **'श्री रामवृक्ष बेनीपुरी'** द्वारा संपादित एवं मैथिली कोकिल विद्यापति विरचित **'विद्यापति पदावली'** के 'नख-शिख' खंड से अवतरित है। इस खंड में कवि ने नायिका के अप्रतिम सौंदर्य का वर्णन किया है। यहाँ कवि विद्यापति दूती के माध्यम से नायिका के अंगों के सौंदर्य का बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन करते हैं।

व्याख्या–दूती नायिका राधा के रूप-सौंदर्य के विषय में नायक श्रीकृष्ण को बताती हुई कहती है कि हे कृष्ण! विधाता ने राधिका के मुख की रचना चन्द्रमा के सौंदर्य के मूल तत्व को लेकर की है। चकोर के नेत्रों की चंचलता को लेकर उसके नेत्रों की रचना की है। कहने का अभिप्राय है कि नायिका का मुख चन्द्रमा के समान सुंदर है और चकोर के नेत्रों की भाँति उसके नेत्र चंचल हैं। जब वह सुंदरी अपने मुख को अमृत से धोकर आँचल से पोंछती है तो दसों दिशाओं में प्रकाश फैल जाता है। दूती पुनः कहती है कि ब्रह्मा तो युग-युग से बड़े-बूढ़े और नीरस हृदय वाले हैं, फिर न जाने इतने अपूर्व सौंदर्य वाली युवती की रचना किसने की है। वह इतनी सुंदर है कि उसके सौंदर्य का स्वरूप मुझ से कहा ही नहीं जाता अर्थात् राधा का रूप-सौंदर्य अवर्णनीय है। उसके सौंदर्य का वर्णन इसलिए नहीं किया जा सकता क्योंकि मेरे नेत्र उससे लगकर रह जाते हैं। वे ठीक प्रकार से उसे देख भी नहीं सकते।

दूती राधा के सौंदर्य का वर्णन करती हुई पुनः कहती है कि उसके भारी नितंबों के भार के कारण वह ठीक प्रकार से चल भी नहीं पाती। उसका मध्य भाग अर्थात् कटि (कमर) अत्यंत क्षीण (पतला) बना हुआ है, वह कहीं टूट न जाए, इसलिए कामदेव ने मानो उसे पेट की तीन रेखाओं (त्रिबली) रूपी लता से उलझाकर बचा रखा है। विद्यापति कवि कहते हैं कि उस नायिका का सौंदर्य तो एक अद्भुत रचना है जो सर्वथा सत्य है। मिथिला के राजा शिवसिंह जो 'रूपनारायण' पदवी को धारण किए हुए हैं, वे इस नायिका के सौंदर्य की सरसता को भली-भाँति जानते हैं।

विशेष–1. यहाँ कवि ने परंपरागत उपमानों का प्रयोग करते हुए नायिका के सौंदर्य का बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन किया है।
2. अनुप्रास, दीपक तथा रूपक अलंकारों का सुंदर प्रयोग हुआ है।
3. 'बिहि बूढ़ निरस उर' कहकर कवि ने ब्रह्मा जी का भी तिरस्कार किया है जो सृष्टि के उत्पादक माने जाते हैं।
4. लक्षणा शब्द-शक्ति के प्रयोग के कारण कवि-कथन में सौंदर्य उत्पन्न हो गया है।
5. साहित्यिक मैथिली भाषा का सफल प्रयोग देखा जा सकता है तथा शब्द-चयन सर्वथा उचित व भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
6. माधुर्य गुण है तथा शृंगार रस का परिपाक है।
7. सम्पूर्ण पद में गेयता का सुंदर निर्वाह हुआ है।

9 **जहाँ जहाँ पग-जुग धरई। तहिं तहिं सरोरुह झरई।। 2।।**
जहाँ जहाँ झलकत अंग। तहिं तहिं बिजुरि तरंग।। 4।।
कि हेरल अपरुब गोरि। पइठल हिय मधि मोरि।। 6।।
जहाँ जहाँ नयन बिकास। तहिं तहिं कमल प्रकास।। 8।।
जहाँ लहु हास सँचार। तहिं तहिं अमिय-बिकार।। 10।।

जहाँ जहाँ कुटिल कटाख। ततहिं मदन-सर लाख।। 12।।

हेरइत से धनि थोर। अब तिन भुवन अगोर।। 14।।

पुनु किए दरसन पाब। अब मोहे इत दुख जाब।। 16।।

बिद्यापति कह जानि। तुअ गुन देहब आनि।। 18।।

शब्दार्थ–**सरोरुह** = कमल। **झलकत** = चमकते हैं। **अपरुब** = अनुपम। **लहु** = मंद। **ततहिं** = वहीं पर। **मोहे इ**
जाब = क्या मेरा दुख जाएगा। **अमिय-बिकार** = अमृत का विस्तार। **हेरल** = देखा। **धरई** = धरती। **पगजुग** = दोनों पै
= बाण। **पुनु** = पुण्य। **अगोर** = प्रतीक्षा करना। **कुटिल कटाख** = तिरछे कटाक्ष। **हास सँचार** = हँसी का संचरण। **थोरि** =
धनि = बाला। **पइठल** = पैठ गई। **बिजुरि तरंग** = बिजली का चंचल प्रकाश।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश **'श्री रामवृक्ष बेनीपुरी'** द्वारा संपादित एवं मैथिली कोकिल विद्यापति विरचित **'विद्यापति पदावली'** के **'नख-शिख'** खंड से अवतरित है। यहाँ कवि ने राधा और कृष्ण के प्रेम-प्रसंग का बड़ा ही रोचक एवं मनोहारी वर्णन किया है।

व्याख्या–प्रस्तुत पद्य में कवि कृष्ण के प्रेम का वर्णन करते हुए कहता है कि जहाँ-जहाँ नायिका ने दोनों चरण रखे, वहीं कमल के फूल झड़ते गए। कहने का भाव यह है कि नायिका के पाँव कमल के फूल की भाँति सुंदर एवं कोमल हैं। जहाँ-जहाँ आदि के मध्य से उसके अंग दिखाई दिए, वहाँ-वहाँ बिजली-सी चमक कौंध गई है। मैंने उस अनुपम सौंदर्य वाली सुंदरी को देखा, वह तो मेरे हृदय में प्रवेश कर गई। जहाँ-जहाँ उसके नेत्रों की ज्योति जाती थी, वहीं-वहीं मानो कमलों की शोभा का प्र फैल जाता था। जहाँ-जहाँ उसकी मंद-मंद हँसी का संचरण होता था, वहीं-वहीं अमृत का विस्तार हो जाता है या जहाँ-जहाँ उ कुटिल कटाक्ष पड़ते थे, वहीं-वहीं पर कामदेव के लाखों बाण चलने लगते थे। मैंने उस सुंदरी को तनिक ही देखा था किन्तु वह मुझे तीनों लोकों में व्याप्त दिखाई दे रही है। यदि मैं अपने पुण्यों से पुनः उसके दर्शन पा सकूँगा तो तभी मेरा यह विर उत्पन्न दुख मिट सकेगा। कविवर विद्यापति कहते हैं कि मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि तुम्हारे गुन उसे फिर लाकर दे देंगे अर्थात् वह तुम्हारे गुणों से आकृष्ट होकर शीघ्र ही स्वयंमेव तुम्हारे पास आ जाएगी।

विशेष–1. यहाँ कवि ने नायिका राधा के अलौकिक रूप-सौंदर्य का बड़ा ही मनोहारी तथा आकर्षक वर्णन किया है।

2. पूरे पद में पुनरुक्ति प्रकाश, अनुप्रास तथा अन्योक्ति अलंकारों का सफल प्रयोग हुआ है।

3. अभिधा तथा लक्षणा शब्द-शक्तियों के कारण भावाभिव्यक्ति बड़ी ही मार्मिक बन पड़ी है।

4. साहित्यिक मैथिली भाषा का सफल प्रयोग है तथा शब्द-चयन सर्वथा उचित व भावाभिव्यक्ति में सहायक है।

5. माधुर्य गुण है तथा शृंगार रस का परिपाक हुआ है।

6. प्रसंगानुसार कोमलकांत पदावली का प्रयोग हुआ है।

7. सम्पूर्ण पद्य में संगीतात्मकता का निर्वाह देखा जा सकता है।

10

अबनत आनन कए हम रहलिहुँ
बारल लोचन-चोर।
पिया मुख-रुचि पिबए धाओल
जनि से चाँद चकोर।। 2।।
ततहु सयँ हठ हटि मो आनल
धएल चरनन राखि।
मधुप मातल उड़ए न पारए
तइअओ पसारए पाँखि।। 4।।
माधव बोलल मधुर बानी
से सुनि मुँदु मोयँ कान।
ताहि अवसर ठाम बाम भेल
धरि धनू पँचबान।। 6।।

तनु पसेब पसाहनि भासलि
पुलक तइसन जागु।
चूनि चूनि भए काँचुअ फाटलि
बाहु बलआ भाँगु ।। 8।।
भन विद्यापति कम्पित कर हो
बोलल बोल न जाय।
राजा सिवसिंध रूपनरायन
साम सुन्दर काय।। 10।।

(Imp.)

शब्दार्थ–**अवनत** = नीचे। **पाँखि** = पंख। **आनन** = मुख। **तइअओ** = तो भी। **कए रहलिहुँ** = किये रही। **उड़ए न पारए** = उड़ ही नहीं सकी। **बारल** = रोका। **लोचन-चोर** = नेत्र रूपी चोर। **मधुप** = भ्रमर। **ततहु सयँ** = यहाँ से भी। **जनि से चाँद चकोर** = जैसे चाँद की ओर चकोर। **हटि** = हटा कर। **धाओल** = दौड़े। **बोलल बोल न जाय** = बात कहीं नहीं जाती। **कम्पित कर हो** = हाथ काँप रहा है। **भाँगु** = फूट गई। **बलआ** = चूड़ी। **माधव** = श्रीकृष्ण। **बोलल** = बोलते हैं। **मुँदु** = ब्रह्मा जी। **बाम भेल** = विरुद्ध हुआ, वैरी बना। **पँच बान** = कामदेव। **धरि धनू** = धारण कर लिया। **पसेब** = पसीना। **पसाहनि** = ललाट की सजावट, अंगाग। **भासलि** = वह गया। **काँचुअ** = चोली।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश **'श्री रामवृक्ष बेनीपुरी'** द्वारा संपादित एवं मैथिली कोकिल विद्यापति विरचित **'विद्यापति पदावली'** के **'नख-शिख'** खंड से अवतरित है। इस खंड में कवि ने श्रीकृष्ण और राधा के प्रेम का बड़ा मनोहारी वर्णन किया है। इस पद्य में राधा अपने प्रेम भाव का वर्णन करती हुई सखी से कहती है कि–

व्याख्या–हे सखी! मैं कृष्ण के सामने अपना सिर नीचे ही किए रही और अपने नेत्रों रूपी चोरों को रोके रही। कहने का तात्पर्य यह है कि राधा के नेत्र चोरी-चोरी कृष्ण के रूप-सौंदर्य को देखना चाहते थे। किन्तु राधा ने उन्हें रोक दिया। किन्तु मेरे रोकने पर भी वह मेरे नेत्र प्रियतम कृष्ण के मुख सौंदर्य को देखने के लिए उसी प्रकार दौड़ पड़े जैसे चकोर चाँद को देखते ही उसे प्राप्त करने के लिए दौड़ पड़ता है। यहाँ से भी मैंने उन्हें हठपूर्वक हटा दिया और वे उनके चरणों पर जा लगे। कहने का तात्पर्य है कि राधा लज्जा के कारण श्रीकृष्ण के चेहरे को न देख सकी तो उसने अपनी दृष्टि झुका ली थी। फिर भी वे श्रीकृष्ण के मुख-सौंदर्य को देखने के लिए इस प्रकार लालायित एवं परवश थे, जिस प्रकार मधु को पीकर मस्त भौंरें उड़ तो नहीं सकते किन्तु उड़ने के लिए पंखों को फैलाकर प्रयास करते रहते हैं। उसी तरह मेरी आँखें उनकी ओर जाने लगीं।

राधा अपनी सखी से बताती है कि जब वह श्रीकृष्ण के चरणों पर अपनी दृष्टि गड़ाए हुए थी तभी श्रीकृष्ण ने मुझ से मधुर वाणी में कुछ कहा परंतु मैंने उनकी कोई भी बात न सुनने के लिए अपने दोनों कानों को बंद कर लिया। उस समय विधि भी मेरे विपरीत हो गया और कामदेव ने अपने बाणों को मुझ पर छोड़ दिया। कहने का भाव है कि राधा कामाग्नि से जलने लगी। ऐसी दशा में राधा का शरीर पसीना-पसीना हो गया। उसी क्षण मेरा शरीर पुलकित हो उठा। उसकी केंचुकी फट गई, उसकी कलाइयों की चूड़ियाँ चटक गईं। कहने का भाव है कि प्रेमातिरेक के कारण शरीर फूल उठा और चोली तार-तार हो गई और चूड़ियाँ टूट गईं। कवि विद्यापति कहते हैं कि कंपन के कारण मेरे हाथ काँप रहे हैं और मन के पुलकित होने के कारण अब मुझसे बोला भी नहीं जाता। राजा शिवसिंह रूप नारायण निश्चय ही कृष्ण के समान सुंदर काया वाले हैं।

विशेष–1. यहाँ कवि ने राधा के प्रेम का चित्रण करते हुए नारी स्वभाव का मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है।

2. अनुप्रास, रूपक, उपमा तथा निदर्शना अलंकारों का सुंदर एवं स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

3. सहज, सरल तथा साहित्यिक मैथिली भाषा का प्रयोग है।

4. शब्द-चयन सर्वथा उचित तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।

5. अभिधा शब्द-शक्ति के प्रयोग के कारण कवि का कथन सहज बन पड़ा है।

6. माधुर्य गुण है तथा शृंगार रस का परिपाक है।

7. सम्पूर्ण पद में गेयात्मकता विद्यमान है।

11 प्रथमहि अलक तिलक लेब साजि।
चंचल लोचन काजर आँजि।।2।।
जाएब बसन आँग लेब गोए।
दूरहि रहब तें अरथित होए।।4।।
मोरि बोलब सखि रहब लजाए।
कुटिल नयन देव मदन जगाए।।6।।
झाँपव कुच दरसाओब आध।
खन खन सुदृढ करब निबि-बाँध।।8।।
मान करए किछु दरसब भाव।
रस राखब ते पुनु पुनु आव।।10।।
हम कि सिखाओबि अओ रस-रंग।
अपनहि गुरु भए कहत अनंग।।12।।
भनइ विद्यापति इ रस गाव।
नागरि कामिनि भाव बुझाव।।14।।

शब्दार्थ–**खन-खन** = क्षण-क्षण। **मदन** = कामदेव। **निबि-बाँध** = नीवी बंधन। **आँग** = लगाना। **लेब** = लेना। **किछु** = **भाव** = कुछ भाव प्रदर्शित करना। **नागरि** = चतुर। **अनंग** = कामदेव। **झाँपव** = ढाँकना। **अरथित** = आकर्षित। **कुच** = **अलक** = केश। **साजि** = सँवारना। **सुदृढ़** = मजबूत। **सिखाओबि** = सिखाना। **कामिनि** = नारी।

प्रसंग–प्रस्तुत काव्यांश **'श्री रामवृक्ष बेनीपुरी'** द्वारा संपादित एवं मैथिली कोकिल विद्यापति विरचित **'विद्यापति पदावली'** खण्ड **'सखी शिक्षा'** से लिया गया है। इसमें राधा की सखी उसे शिक्षा देते हुए प्रेरणा देती है कि वह कृष्ण के विलास कक्ष जाने से पूर्व कामक्रीड़ा का ज्ञान प्राप्त कर ले।

व्याख्या–राधा की सखी उसे शिक्षा देती हुई कहती है कि हे राधा! तुम सर्वप्रथम अपने केश तथा अपनी बिन्दी को अ तरह सजा लो, तत्पश्चात् अपने चंचल नेत्रों में काजल लगा लो। जब तुम यहाँ से प्रस्थान करो, तब तुम अपने शरीर के अंगों अच्छी प्रकार से वस्त्रों से ढक लो। क्योंकि प्रियतम के पास अस्त-व्यस्त वस्त्रों में जाना उचित नहीं होता। वहाँ पहुँचकर तुम अ प्रियतम से दूर ही रहना। ताकि वह तुम्हारी ओर आकर्षित होकर तुम्हारे पास आए। हे सखी! प्रियतम से बातें करते समय ल से अपने मुख को मोड़ लेना और उसे तिरछी निगाहों से देखना, ताकि उसके मन में काम-भावना जाग्रत हो सके। सखी उसे समझाती हुई कहती है कि पहले अपने उरोजों को आँचल से ढक लेना और केवल उनका आधा भाग ही दिखाना। क्षण-क्षण अपनी नीबी बंधन को बाँधते रहना। तुम कृष्ण के सामने ऐसा हाव-भाव दिखाना कि तुमने मौन धारण किया हुआ है। प्रेम को बनाए रखने के लिए पुनः-पुनः अपने जाने की बात कहते रहना ताकि नायक तुमसे बार-बार मिलने का प्रयास करे।

अंत में सखी राधा से कहती है कि हे सखी! हम तुम्हें काम-क्रीड़ा आनंद की क्या शिक्षा दें, कामदेव स्वयं तुम्हारा बनकर तुम्हें शिक्षित कर देगा। अतः हमारे द्वारा शिक्षा देना व्यर्थ है। विद्यापति इस रस का गान करते हुए कहते हैं कि हे च नारी! तुम स्वयं इस भाव को अच्छी तरह से समझ लो अर्थात् किसी के सिखाने से काम-क्रीड़ा की शिक्षा नहीं दी जा सकती

विशेष–1. यहाँ कवि ने वात्स्यायन के कामसूत्र के अनुसार काम-क्रीड़ा के प्रसंग का मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण किया

2. अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश तथा अर्थान्तरन्यास अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।
3. सहज, सरल तथा मैथिली भाषा का सफल प्रयोग है।
4. माधुर्य गुण है तथा शृंगार रस का सुंदर परिपाक हुआ है।
5. सम्पूर्ण पद में गेयात्मकता विद्यमान है।
6. संवाद शैली का प्रयोग है।

आलोचनात्मक प्रश्न

1. विद्यापति : भक्त या शृंगारी कवि

1. विद्यापति को भक्त कवि कहना उचित है या शृंगारी कवि? युक्तियुक्त उत्तर दीजिए। **(Most Imp.)**

अथवा

"विद्यापति का भक्त-हृदय रूप उनकी वासना के कल्पना आवरण में ही छिप जाता है।" उदाहरण देते हुए कथन की व्याख्या करें।

अथवा

विद्यापति का शृंगार भक्त का है, विलासी कवि का नहीं। इस कथन की विवेचना कीजिए।

उत्तर–विद्यापति का कवित्व–विद्यापति संस्कृत, अवहट्ठ तथा मैथिली भाषा सूक्ति के विद्वान थे। उन्होंने इन तीनों भाषाओं में काव्य-रचना लिखी है। परंतु उनकी कीर्ति का आधार स्तम्भ 'पदावली' है जो कि मैथिली भाषा में रचित है। यह एक गीतात्मक

मुक्तक काव्य-रचना है जिसमें लगभग 900 पद हैं। इसी काव्य-रचना के कारण विद्यापति को 'अभिनव जयदीप' की संज्ञा जाती है। इस पदावली में 90% से अधिक पद शृंगारिक हैं लेकिन कुछ आलोचकों का विचार है कि पदावली रहस्यवादी है उसके पदों में भक्ति की अभिव्यंजना हुई है। अतः यह निर्णय करना सहज नहीं है कि पदावली शुद्ध शृंगार रस की रचना है अध्यात्म प्रसाद शृंगारिक रचना है।

विद्यापति के कवित्व के विषय में विद्वानों के निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण मत हैं–

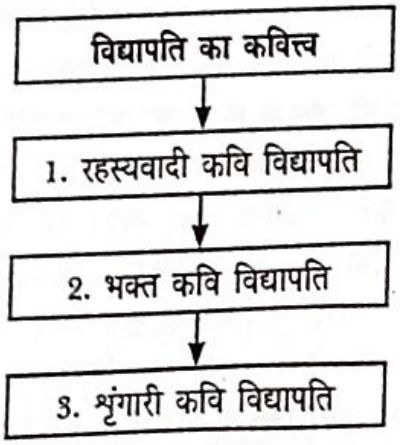

1. रहस्यवादी कवि विद्यापति–पदावली को रहस्यवादी रचना मानने वालों में जार्ज ग्रियर्सन का नाम सर्वप्रमुख है। उनका कथन है कि जिन पदों को आलोचक अश्लील कहते हैं उनका उस रूप में अनुवाद अनिवार्य था। वे लिखते हैं–**"अब विद्यापति के काव्य पर विचार करना है। वे लगभग सबके सब वैष्णव पद या भजन हैं। ऐसी अवस्था में वे साहित्य के एक ऐसे अंग हैं जिसे भारतीय साहित्य के सभी विद्यार्थी परिचित हैं। यूरोप की रुचि के अनुसार उन पर विचार नहीं किया जा सकता और शीघ्रता में उन पर यह भी दोषारोपण नहीं करना चाहिए। ..... विद्यापति के चमकते हुए पदों में भक्त हिन्दू काम-वासना को जरा भी अनुभव नहीं करते हुए उसी प्रकार पढ़ाते हैं जिस प्रकार सोलोमन के गीतों को क्रिश्चियन पादरी पढ़ा करते हैं।"** डॉ. ग्रियर्सन के अनुसरण कहते हुए F.F. Keay ने लिखा है–**"In those (sonnets) he (Vidyapati) uses the story of the love which Radha bore to Krishna as an allegory to describe the relation of the soul to God."** इसी प्रकार डॉ. मंगल गुप्त, डॉ. जनार्दन मिश्र, कुमार स्वामी, डॉ. श्यामसुंदर आदि विद्वानों ने विद्यापति को रहस्यवादी कवि सिद्ध किया है। श्री जनार्दन मिश्र का कहना है कि यदि यह रहस्यवादी पद न होते तो वैष्णव-जन पूजा के समय विद्यापति के पदों का पाठ कभी न करते। वे लिखते भी हैं–**"विद्यापति के समय में रहस्यवाद जोरों पर था। उनके प्रभाव से बचकर निकलना और किसी अधिक निष्कंटक मार्ग का अवलम्बन करना इन्हें शायद अभीष्ट नहीं था अथवा अभीष्ट होने पर भी तुलसीदास की तरह अपने वातावरण के विरुद्ध जाने की शक्ति इनमें नहीं थी। इसलिए भी पुरुष के रूप में जीवात्मा-परमात्मा की उपासना की धारा जो उमड़ रही थी उसमें इन्होंने अपने को बहा दिया। ईश-शक्ति संबंधी पद रचना में ये पूरे रहस्यवादी थे, किंतु निर्गुण रहस्यवाद और इनके रहस्यवाद में कुछ भेद है। जो निर्गुणवादी होते हैं वे जीवात्मा और परमात्मा को स्त्री-पुरुष के रूप में देखते हैं, किन्तु वह स्वरूप किसी व्यक्ति-विशेष या रूप-विशेष का द्योतक नहीं होता। वह स्त्रीत्व और पुरुषत्व के भाव-संबंध का केवल वर्णनात्मक रूप होता है।"** मिश्र जी ने विद्यापति को रहस्यवादी सिद्ध करने के लिए अनेक तर्क दिए हैं। निम्नलिखित पद में वह रहस्यवाद की खोज करते दिखाई देते हैं–

"कोन बन बसथि महेस, केओ नहि कहथि उदेस।
तपोवन बसथि महेस, भैरव करथि कलेस।
× × × ×
एकहि बचन बिच भेल, पहु उठि परदेस गैल।"

इस पद को वे रहस्यवादी कहते हैं। इसमें महेस का अर्थ उन्होंने परब्रह्म लगाया है और उसे वह तपोवन मानते हैं। एक अन्य पद में गौरी का अर्थ जीवात्मा और महेस का अर्थ परब्रह्म लगाते हैं। गौरी और जीवात्मा व्याकुल होकर महेस तथा परब्रह्म की खोज में घूम रहे हैं।

"हम सन है सखि रुसल महेस, गौरि विकल मन करयि उदेस।
तन आभरन बसन भेल भार, नयन बहे जल निर्मल धार।"

श्री कुमार स्वामी ने विद्यापति को रहस्यवादी कवि घोषित किया है। वे लिखते हैं—**"विद्यापति का काव्य गुलाब है, तरफ से केवल गुलाब। यह आनंद निकुंज है। यहाँ हमें उस स्वर्ग का दर्शन होता है—वृंदावन की कृष्ण-लीला शाश्वत है। वृंदावन मानव का हृदय-प्रदेश है। जमुना का तट इस संसार का प्रतीक है जो राधा और कृष्ण अर्थात् जीव तथा ईश्वर की लीला भूमि है। वंशी की आवाज अदृश्य सत्ता की ध्वनि है। जीव को परमात्मा की ओर अग्रसर होने का आह्वान है।"** इधर नगेन्द्र नाथ गुप्त ने अभिसार के दो पदों का उद्धरण देकर विद्यापति को रहस्यवादी कवि सिद्ध करने का प्रयास किया है। परंतु इन कवियों ने विद्यापति की शृंगारिकता की रहस्यवादिता को देखने का प्रयास किया है। इन विद्वानों को नायक-नायिका राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं में आत्मा-परमात्मा की आध्यात्मिक क्रीड़ा दिखाई देती है। इसी विचार को ध्यान में रखकर ये विद्वान विद्यापति को रहस्यवादी कवि मानते हैं। अन्य शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि ये विद्वान् विद्यापति को भक्त-कवि सिद्ध करना चाहते हैं, शृंगारी कवि नहीं।

2. भक्त-कवि विद्यापति—कुछ विद्वानों ने विद्यापति को भक्त-कवि स्वीकार किया है। पहला कारण यह है कि पदावली में ऐसे पद हैं जिनमें विद्यापति की भक्ति-भावना सिद्ध होती है। कवि ने केवल कृष्ण की भक्ति नहीं, बल्कि शिव की उपासना भी की है। शिव की भक्ति से संबंधित संस्कृत तथा अवहट्ठ में कुछ ग्रंथ भी लिखे थे। 'पदावली' में शिव-भक्ति के कुछ पद उपलब्ध होते हैं। इसके साथ-साथ कवि ने दुर्गा, सूर्य, अग्नि, गणेश, शक्ति आदि के प्रति भी अपनी आराधना व्यक्त की है। यही कारण है कि कुछ आलोचक विद्यापति को वैष्णव मानते हैं, कुछ शैव तथा कुछ एकेश्वरवादी मानते हैं। उदाहरण के रूप में वे देवी-वंदना करते हुए लिखते हैं—

"जय-जय भैरवि असुर-भयाउनि पसुपति-भामिनि माया।
सहज सुमति बर पिअओ गोसाउनि अनुगति गति तुअ पाया।
वासर-रैनि सवासन सोभित चरन, चन्द्रमनि चूड़ा।
कतओक दैत्य मारि मुँह मेलल कतओक उगिल कैल क्रीड़ा।
सामर बरन, नयन अनुरंजित जलद-जोग कुल कोका।
कट-कट बिकट ओठ-पुट पाडरि लिधुर फन उठ कोका।
घन-धन घनए घुंघरु कत बाजए हन-हन कर तुअ वनता
विद्यापति कवि तुअ पद सेवक पुत्र विसरु जनि माता।"

इसी प्रकार शिव स्तुति करते हुए लिखते हैं—

"जय-जय शंकर जय त्रिपुरारि।
जय अध पुरुष, जय अध-नारि।।"

बाबू ब्रजनंदन सहाय ने विद्यापति को वैष्णव भक्ति का कवि माना है। परंतु श्यामसुंदर दास उन पर विष्णु स्वामी और निर्बाध के गुण देखते हुए लिखते हैं—**"विद्यापति ने राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला का जो वर्णन किया है उस पर विष्णु स्वामी तथा निर्बाध मतों का प्रभाव प्रत्यक्ष है।"** विपन्न विहारी मंजून दास ने राधा-कृष्ण के चरित्र में माधुर्य भाव की भक्ति देखने का प्रयास किया है। इधर मिथिला और बंगाल में विद्यापति के पदों को कीर्तन तथा धार्मिक उत्सवों पर गाया जाता है। इस संदर्भ में डॉ. रमेश ने लिखा है—**"बंगाल में विद्यापति भक्त-कवि कहलाते थे। इसका कारण यह है कि विद्यापति ने राधा-कृष्ण की भक्ति की थी और उसी तरह रचना करने की जड़ बोई थी।"** इस संदर्भ में चैतन्य महाप्रभु का भी उल्लेख किया जाता है जो विद्यापति के पदों को गाते-गाते मूर्च्छित हो जाते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनेक विद्वानों ने विद्यापति को भक्त-कवि सिद्ध करने का प्रयास किया है।

3. शृंगारिक कवि विद्यापति—कुछ विद्वानों ने विद्यापति को घोर शृंगारिक कवि सिद्ध किया है। इन विद्वानों में महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री, आचार्य रामशुक्ल तथा रामकुमार वर्मा के नाम गिनवाए जा सकते हैं। हर प्रसाद शास्त्री लिखते भी हैं—**"यह बड़े आश्चर्य की बात है कि संस्कृत भाषा में लिखे हुए विद्यापति के स्मृति ग्रंथों में शिव-गंगा और दुर्गा का उल्लेख किया गया है, किन्तु कृष्ण का नाम कहीं भी नहीं आया है। लेकिन विद्यापति ने मैथिली में जो रचनाएँ कीं उनमें शिव और पार्वती का वर्णन कम मिलता है। अधिकांश पदों में राधा-कृष्ण ही पाए जाते हैं। विद्यापति जब पंडित होकर लिखते हैं तो राधा-कृष्ण का नाम नहीं लेते, किन्तु जब शृंगार रस में कविता करते हैं तो राधा-कृष्ण ही अधिकतर पाए जाते हैं। इसका क्या कारण है?"**

शास्त्री जी का कहना है कि समाज में शृंगारिक भाव की तृप्ति के लिए राधा-कृष्ण को नायक-नायिका का प्रतीक बनाया जाता है। वे लिखते हैं—**"यह प्रथा-सी बन गई थी। कवि अपना नाम या किसी दूसरे नायक या नायिका का नाम देकर राधा-कृष्ण का नाम देकर या अपने हृदय के भाव प्रकट करते हैं।"** शास्त्री जी का यह भी कहना है कि कीर्तन की सृष्टि विद्यापति के लगभग 200 वर्ष बाद चली। अतः विद्यापति ने कीर्तन के लिए पदों की रचना नहीं की।

इस प्रकार नगेन्द्र नाथ गुप्त ने निम्नलिखित भावना से पूर्ण बताया था—

"कामिनि करए सनाने
हेरितहिं हृदय हनए पंचबाने।"

तथा—

"आजु मुझु सुभ दिन भेला।
कामिनि पेखल सनानक बेला।"

हर प्रसाद शास्त्री ने दोनों पदों को शृंगारिक माना है। उनका कहना भी है—**"भारतवर्ष में नायिका को राधा और नायक को कृष्ण मानकर वर्णन करने की प्राचीन प्रथा है। यदि राधा-कृष्ण का अर्थ नायक-नायिका मानें तो किसी को भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"** श्री शास्त्री जी ने यह भी स्वीकार किया है कि विद्यापति ने अपने आश्रयदाताओं के अनुसार ही पदावली की रचना की थी। उन्होंने आश्रयदाता को कृष्ण और उनकी रानी को राधा कहकर पद लिखे हैं। अतः विद्यापति की मूल प्रवृत्ति शृंगार की ओर ही है। अतः **शास्त्री जी** लिखते हैं—**"संस्कृत के अलंकार ग्रंथों में जितनी कवि-प्रौढ़ोक्तियाँ तथा प्रचलित उपमाएँ हैं, उन्हें विद्यापति ने अपने पदों में यथेष्ट प्रयुक्त किया है। गाथा सप्तशती, आर्यासप्तशती, अमरुशतक, शृंगारतिलक आदि के भावों का संग्रह विद्यापति के पदों में किया गया है। कई स्थानों पर तो उन्हीं भावों का स्पष्ट वर्णन विद्यापति ने अपने पदों में किया है।"**

इसी प्रकार डॉ. सुभद्र झा ने विद्यापति को रहस्यवादी कवि मानने से इंकार कर दिया है। उन्होंने ग्रियर्सन आदि विद्वानों की भी आलोचना की है। इस संदर्भ में वे लिखते भी हैं—**"ग्रियर्सन तथा अन्य विद्वानों ने जो विद्यापति के प्रेम-गीतों में प्रतीकात्मक रहस्य ढूँढ़ने की कोशिश की है वह सर्वथा अनावश्यक है। भारतीय प्रतीकात्मक पद कबीर, जायसी तथा कुछ अन्यों के हैं जिनमें जीवात्मा परमात्मा से मिलने को आतुर रहती है। इन कवियों की जीवात्मा ही परमात्मा से एकात्मकता चाहती है। किन्तु विद्यापति के पदों में ऐसी कोई बात नहीं है। परमात्मा तो स्वतः परिपूर्ण सत्ता होने के कारण निरपेक्ष है और वह न तो जीवात्मा से मिलने के लिए इच्छुक होता है और न ही कोई आह्वान ही करता है। कबीर का 'सांई' या जायसी की 'पद्मावती', जो ब्रह्म का प्रतीक हैं, 'बहुरिया' या 'रत्नसेन' के लिए आकांक्षा व्यक्त नहीं करते।"**

इसी प्रकार डॉ. गोविंद राम शर्मा ने अनेक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए विद्यापति की पदावली को शृंगारिक रचना सिद्ध किया है। वे लिखते भी हैं—**"विद्यापति की पदावली एक शृंगारी रचना सिद्ध होती है। उसमें राधा और कृष्ण की प्रेम-क्रीड़ाओं एवं उनके संयोग और वियोग की विविध अवस्थाओं के वासनापूर्ण मादक चित्र अंकित किए गए हैं। ये चित्र एक भक्त-हृदय की देन न होकर एक सहृदय शृंगारी कवि की कलाकृतियाँ हैं।"**

इसी प्रकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने विद्यापति के राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंगों में रहस्यवादिता की गंध एवं खोजने वालों की खूब खिल्ली उड़ाई है। वे लिखते हैं—**"आध्यात्मिक रंग के चश्मे आजकल बहुत सस्ते हो गए हैं। उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ लोगों ने गीत गोविंद के पदों में आध्यात्मिक संकेत बताया है। वैसे ही विद्यापति के इन पदों को भी।..... इन पदों का दूसरा अर्थ निकालने की आवश्यकता नहीं।"** डॉ. रामकुमार वर्मा ने तो विद्यापति की पदावली को केवल विलासिता की पदावली ही माना है। इस संदर्भ में वह वयः संधि, सद्यः स्नाता, नख-शिख वर्णन, प्रेम वर्णन, अभिसार, मान-भंग विलास तथा मिलन आदि प्रसंगों को शृंगारिकता के अंतर्गत मिलाते हैं। अन्यत्र वे लिखते भी हैं—**"विद्यापति ने राधा-कृष्ण का जो चित्र खींचा है, उसमें वासना का रंग बहुत ही प्रखर है। आराध्य देव के प्रति भक्ति का जो पवित्र विचार होना चाहिए, वह लेशमात्र भी नहीं है—राधा का प्रेम भौतिक और वासनामय है।"**

काव्य रचनाएँ भी हैं तथा इनमें रहस्यवाद का संकेत प्राप्त नहीं होता।

3. पदावली के पद मिथिला में केवल विवाह के अवसर पर गाए जाते हैं, मंदिरों में नहीं गाए जाते हैं। अतः केवल चैतन्य महाप्रभु का हवाला देकर सिद्ध नहीं किया जा सकता कि पदावली भक्ति-प्रद रचना है।
4. यह कहना तर्कसंगत नहीं है कि विद्यापति ने पदावली की रचना कीर्तन के लिए की थी। पहले बताया जा चुका है कि कीर्तन की परंपरा 200 वर्ष के बाद आरंभ हुई। आगे चलकर भक्तों ने पदावली के पदों की मधुरता और भाव-प्रवणता को देखकर कीर्तन के लिए अपना लिया।
5. निर्गुण संतों का रहस्यवाद विद्यापति के बहुत बाद में आरंभ हुआ। कबीर हो चाहे जायसी ये भक्तिकाल के कवि हैं, जबकि विद्यापति आदिकाल के। विद्यापति पुराणों और स्मृतियों के ज्ञाता थे। अतः यह सोचना व्यर्थ है कि वे निर्गुण संत कवियों से प्रभावित थे।
6. शिव संबंधी पद, देवी संबंधी प्रार्थना तथा गंगा स्मृति पदों को छोड़कर अन्यत्र राधा-कृष्ण के शृंगार का वर्णन किया गया है। यही नहीं, गाथा सप्तशती जैसी रचनाएँ विद्यापति को प्रेरणा देने वाली हैं। उनकी अलंकार प्रियता तथा नख-शिख वर्णन उन्हें शृंगारिक कवि सिद्ध करता है। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि विद्यापति के साहित्य-गुरु जयदेव थे और वे भी शृंगार रस के प्रणेता थे। जयदेव ने तो यह घोषणा की थी कि विलास कला में अनुरक्त रहने वाले लोगों को मेरे पदों से हरि स्मरण प्राप्त होगा। परंतु विद्यापति ने ऐसी घोषणा नहीं की। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने पदावली की रचना अपने आश्रयदाताओं की आज्ञा पर उनकी शृंगार-प्रियता को सामने रखकर की।
7. विद्यापति की पदावली में वयः संधि, नख-शिख वर्णन, सद्यः स्नाता, विदग्ध विलास, मिलन आदि इस प्रकार के पद हैं जिनमें स्थूल शृंगार, इन्द्रियता के सिवाय कुछ नहीं है।

निष्कर्ष—विद्यापति की पदावली को न तो हम रहस्यवादी रचना मान सकते हैं, न ही भक्तिपरक। यह पूर्णतया शृंगार प्रधान रचना है। वस्तुतः विद्यापति अपने युग से प्रभावित रहे हैं। संभव है कि वे अपने दैनिक जीवन में शिव अथवा भवानी के भक्त रहे हों या राधा-कृष्ण के उपासक भी हो सकते हैं। परंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वे राज कवि थे और अपने आश्रयदाता से वह अपनी आजीविका चलाते थे। उन्होंने अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए पदावली की रचना की है। यहाँ राधा-कृष्ण लौकिक नायिका और नायक हैं। कवि ने अपने आश्रयदाता राजा शिवसिंह तथा रानी लखमा देवी के आश्रय में रहकर इन पदों की रचना की है। उनके लिए कहीं-कहीं वे राजा शिव सिंह को कृष्ण और रानी लखमा देवी को राधा कहकर पुकारते हैं। इसलिए कवि ने शृंगार प्रधान काव्य की रचना की है। पदावली में रहस्यवाद अथवा भक्ति की खोज करना मानो रेत में से तेल खोजना है। इस संदर्भ में **डॉ. शिव नंदन ठाकुर** ने ठीक ही लिखा है—**"विद्यापति राजकवि थे और राजसभासद थे। उन्हें जिस प्रकार के गाना बजाने की फरमाइश मिलती थी, वह उसी तरह का गाना बजाते थे और राजा को प्रसन्न रखने के लिए राजपरिवार के नाम भी उसी में जोड़ दिए जाते थे।"** उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्यापति के पदों में शृंगारिकता की स्थूलता है। राधा और कृष्ण दोनों ही काम-पीड़ित नायक-नायिका हैं। उनकी सभी चेष्टाएँ वासना तथा कामुकता दर्शाने वाली हैं। वहाँ भक्ति की झलक दिखाई नहीं देती। इस संदर्भ में **डॉ. रामकुमार वर्मा** अपना निष्कर्ष प्रदान करते हुए लिखते हैं—**"किन्तु श्रीकृष्ण और राधा संबंधी जो पद हैं उनमें भक्ति न होकर वासना है। इस क्षेत्र में जयदेव की शृंगारिक भावना ने विद्यापति को बहुत अधिक प्रभावित किया है। कुमारस्वामी ने विद्यापति के ऐसे पदों को लेकर यह सिद्ध करना चाहा है कि विद्यापति की कविता ईश्वरोन्मुख है और उसमें रहस्यवाद की अनुपम छटा है। विनयकुमार सरकार ने कुमारस्वामी के इस मत के विरुद्ध ही अपनी सहमति प्रकट की है। विद्यापति के पदों को देखते हुए विनय कुमार सरकार का मत ही समीचीन ज्ञात होता है, क्योंकि विद्यापति की कविता में भौतिक प्रेम की छाया स्पष्ट है।"**

◆◆◆

2. विद्यापति के शृंगार वर्णन की विवेचना कीजिए। **(Imp.)**

अथवा

विद्यापति के शृंगार वर्णन की विशेषताएं बताइए।

अथवा

सिद्ध कीजिए कि विद्यापति शृंगार रस के सिद्ध कवि हैं।

अथवा

पदावली के आधार पर विद्यापति की शृंगार भावना को सिद्ध कीजिए।

---

1. शृंगार का अर्थ—शृंगार शब्द शृंग + अण् से बना है। शृंग का अर्थ है—कामोद्रेक, प्रणयरस, कामोन्माद, रतिरस आदि। इनको करने वाला ही शृंगार है। काव्यशास्त्र में शृंगार की परिभाषा लिखते हुए कहा गया है—**"पुरुष की नारी के प्रति, नारी की पुरुष के प्रति जो संयोग की इच्छा रहती है वह शृंगारिक पीड़ा करने वाली अभिव्यक्ति शृंगार है। शृंगार को सभी रसों का राजा कहा गया है।"** विद्यापति की पदावली में मुख्यतः शृंगार रस का ही वर्णन किया गया है जिससे स्पष्ट होता है महाकवि विद्यापति एक रस सिद्ध कवि थे और शृंगार रस ही उनका प्रियतम रस था। उनके शृंगार रस से पाठक को जो आनंद प्राप्त होता है, वह अन्य पदों से प्राप्त नहीं हो सकता। शृंगार रस के दो पक्ष हैं—संयोग और वियोग। कवि ने दोनों का वर्णन करने में अपनी पूरी प्रतिभा और कवित्व-शक्ति का उपयोग किया है। एक आलोचक के शब्दों में—**"कवि के काव्य में शृंगार रस की एक ऐसी वेगवती सरिता प्रवाहित हुई है जिसमें न केवल हिन्दी भाषा-भाषी अपितु बंगवासी भी सदियों से निमज्जित हो रहे हैं।"** कवि ने अपनी पदावली में संयोग शृंगार और वियोग शृंगार दोनों का ही चित्रण किया है। परंतु पदावली में संयोग शृंगार के पदों की संख्या अधिक है और वियोग शृंगार की संख्या कम है। फिर भी शृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन करने में विद्यापति को अपूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। कवि ने नायक-नायिका का ऐसा सूक्ष्म मनोहृदय वर्णन किया है कि पदावली को पढ़कर पाठक आनंदानुभूति के कारण विभोर हो उठता है।

विद्यापति का शृंगार वर्णन—विद्यापति भक्त कवि थे अथवा शृंगारी, इस प्रश्न को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद हैं। कुछ आलोचक विद्यापति को भक्त कवि मानते हैं, अन्य उसे शृंगारिक कवि मानते हैं। परंतु पदावली के पदों का अवलोकन करने से पता लग जाता है कि अधिकांश पद शृंगारिक हैं, केवल कुछ पदों में ही भक्ति की झांकी मिलती है। परंतु कवि की भक्ति प्रधान काव्यधारा को व्यक्त करने वाले आठ या दस पद ही मिलते हैं। इनका संबंध भी शिव तथा गंगा आदि से है। अतः विद्यापति को शृंगारिक कवि कहना उचित होगा। उनके शृंगार रस का आलंबन राधा-कृष्ण रहे हैं। राधा का जीवन प्रेम वासना से भरा हुआ है। कृष्ण छबीले नायक होने के कारण रसिक शिरोमणि कहे जा सकते हैं। अतः जिस रचना में नायक-नायिका दोनों ही शृंगार की वासना से लिप्त हों उस काव्य में भक्ति की खोज करना रेत से तेल निकालने के बराबर है। मूलतः विद्यापति दरबारी कवि थे। वे अपने युग की परिस्थितियों को जानते थे। इसलिए उन्होंने शृंगार प्रधान काव्य की ही रचना की है।

विद्यापति के शृंगार वर्णन को हम निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत विवेचित कर सकते हैं—

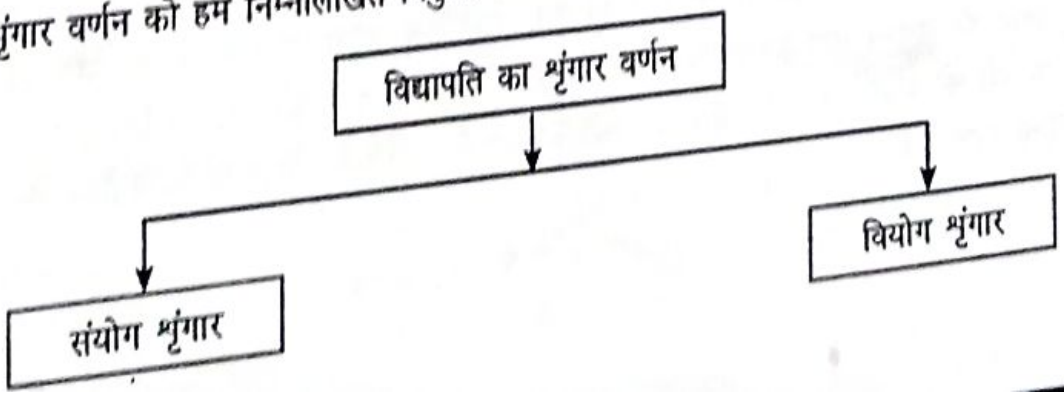

(क) [illegible] अवस्था का वर्णन संस्कृत के अनेक कवियों ने किया है। विद्यापति भी उसी पद पर चले। जहाँ जयदेव की राधा पूर्ण यौवना काम कला में निपुण है, वहाँ विद्यापति की राधा न तो बालिका है, न ही किशोरी और न ही युवती। विद्यापति की राधा की वह अवस्था है जिसमें अभी शैशव का अंत नहीं हुआ और यौवन चोर दरवाजे से घुसना चाहता है। इसी स्थिति का वर्णन करते हुए कवि लिखता है–

"सैसब-जौबन दुहु मिलि गेल, स्रवनक पथ दुहु लोचन लेल।
वचनक चातुरि लहु-लहु हास, धरनिये चाँद कएल परगास।
मुकुर लई अब करई सिंगार, सखि पूछई कइसे सुरत-बिहार
निरजर उरज हेरइ कत बेरि, हसइ से अपन पयोधर हेरि।
पहिल बदरि नासम पुन नवरंग, दिन-दिन अनंग अगोरल अंग।
माधव पेखल अपुरुब बाला, सैसव जौवन दुहु एक मेला।
विद्यापति कह तुहु अगेअगनि, दुहु एक जोगि इह के कह सयानि।"

यहाँ कवि ने आंतरिक भावों के साथ-साथ बाह्य चेष्टाओं का भी वर्णन किया है। कवि ने नायिका की उत्सुकता का वर्णन किया है जो किसी युवती में यौवन के आगमन के समय स्वतः जागृत हो जाती है। वस्तुतः यहाँ नायिका के भावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। वयः संधि के प्रसंग में कवि ने नायिका की शारीरिक दशा का भावोत्तेजक और सहज वर्णन किया है। नायिका के वक्ष स्थल का विकास होने लगता है। उसके चरण ने कटाक्ष का स्थल ले लिया है। कवि लिखता भी है–

"किछु किछु उतपति अंकुर भेल,
चरण चपल गति लोचन लेल।
अब सब खन रह आँचर हात,
लाजे सखिगन का पूछए बात।
कि कहब माधव बयसक संधि,
हेरइत मनसिज मन रहु बंधि,
तइयों काम हृदय अनुपाम।
रोपल घट ऊचल कए ठाम।
सुनइत रस कथा थापए चीत,
जइसे कुरंगिनि सुनए संगीत।
सैसब जौबन उपजल बाद,
केओ न माने जय-अबसाद।"

विद्यापति सौन्दर्य, माधुर्य तथा प्रेम के कवि हैं। नायिका के सौन्दर्य का वे इस तरह से वर्णन करते हैं कि पाठक मंत्र-मुग्ध रह जाता है। विद्यापति का नायक कृष्ण राधा के अनुपम अलौकिक सौन्दर्य को देखकर कह उठता है –

"कि आरे! नवयौवन अभिरामा।
जत केवल तत कहए न यारिअ
छओ अनुपम एक ठामा।"

यहाँ कवि ने सौन्दर्य को परम उत्कर्ष पर पहुँचाने के लिए कि आर्या छंद का प्रयोग किया है। ऐसा लगता है कि नायक नायिका की असीम सुंदरता को देखकर हतप्रभ रह गया है। इसलिए वह आर्या छंदों का प्रयोग करता है। कवि की वर्णन शैली इस प्रकार की है कि इसमें राइ-रती भर की भी कमी दिखाई नहीं देती। कवि विद्यापति संयोग शृंगार का वर्णन करते-करते उसे चरम कोटि तक पहुँचा देते हैं। वयः संधि, नख-शिख, सद्यः-स्नाता, प्रेम प्रसंग, अभिसार, विदग्ध विलास आदि प्रसंगों में कवि ने संयोग शृंगार का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। नख-शिख प्रसंग से एक उदाहरण देखिए–

"पीन पयोधर दूबरि गाता, मेरु उपजल कनक लता।
ए कान्हु फेरि ए कान्हु तोरि दोहाई, अति अपूरुब देखल आई।
मुख मनोहर अधर रंगे, फूललि मधुरी कमल संगे।

लोचन जगल भृग अकारे, मधुक मातल उड़ए न पारे।
भउँहक कथा पूछह जनू, सदन जोइल काजर धनू।
भन विद्यापति दूति बचने, एत सुनि कान्हु कयल गमने।"

विद्यापति की नायिका राधा है। वह विलास की साक्षात् मूर्ति है। उसमें कामुकता, समागम की इच्छा तथा नायक से मिलने की उत्सुकता है। श्रीकृष्ण को पहली बार देखकर वह उस पर आसक्त हो जाती है और उससे प्रेम करने लगती है। लगभग यही स्थिति कृष्ण की भी है। वह भी राधा को देखकर उस पर आसक्त हो जाते हैं। नायक ने नायिका को कहीं देख लिया और उसके अपार सौंदर्य पर तत्काल मुग्ध हो गया। उसी का वर्णन वह नायिका की सखी से कहते हुए करता है–

"ससन-परस खसु अंबर रे देखल धनि देह।
नव जलधर-तर संचर रे जनि बिजुरी रेह।
आज देखल धनि जाइत रे मोहि उपजल रंग।
कनक-लता जनि संचर रे मोहि निर-अवलंब।
ता पुन अपुरुष देखल रे कुच-जुग अरविंद।
बिगसित नहि किछ कारन रे सांझा मुख-चंद।
विद्यापति कवि गोओल रे रस बुझ रसमन्त।
देवसिंह नृप नागर रे हासिनि देइ कन्त।"

इसी प्रकार कवि ने राधा के प्रेम का भी मार्मिक चित्रण किया है। यमुना नदी के किनारे राधा ने कृष्ण को घूमते हुए देखा। वह उसके सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो गई। अब वह अपनी सुध-बुध खो बैठी है और कृष्ण से मिलने के लिए बेचैन हो उठी है। अपनी काम दशा का वर्णन करते हुए वह अपनी सखी से कहती है–

"की लागि कौतुक देखलौं सखि निमिख लोचन आध
मोर मन-मृग भरम बेधल विषम बान बेआध।
गोरस बिरस बाँसी बिसेख सल छिकहि छाड़ल गेह।
मुरलि धुनि सुनि मो मन मोहल बिकहु भेल संदेह।
तीर तरंगिनि कदम्ब कानन निकट जमुना घाट।
उलटि हेरइत उलटि परलओं चरन चीरल काँट।"

धीरे-धीरे कृष्ण के प्रति राधा का प्रेम एकनिष्ठ हो जाता है। वह हर समय कृष्ण से मिलने को व्याकुल रहती है। प्रेम उसे इतना बेचैन कर देता है कि वह सामाजिक मर्यादा को भी भूल जाती है। श्रीमती कृष्णा शर्मा ने राधा के बारे में लिखा भी है–**"विद्यापति ने राधा के प्रेम का चित्रण परकीया नायिका के रूप में किया है। विवाहिता नारी की अपेक्षा राधा का प्रेम अधिक उत्तेजक, निर्बंध और शक्तिशाली है।.... वह रसिक हृदय को आनंद-विभोर करने वाली प्रेम-विह्वला विलासिनी युवती है।"**

राधा अब काम कला में निपुण हो चुकी है। वह हमेशा कृष्ण के प्रेम में निमग्न रहती है। उसका रूप, यौवन, मन तथा हृदय सभी कुछ कृष्णमय हो गया है। वह अपनी वासना को छिपा नहीं पाती। उसका शरीर रोमांचित हो जाता है। कुचों में इतना उभार आ गया है कि कंचुकी फटने लगती है। हाथ की चूड़ियाँ टूटने लगती हैं। वह बार-बार कृष्ण के साथ समागम करना चाहती है। अब उसकी झिझक समाप्त हो चुकी है। संकोच घटने लगा है। उसकी रति किसी भी प्रकार से कम नहीं होती। काम वासना निरंतर उद्दीप्त होती रहती है। वह कृष्ण को खोजने लगती है, ताकि उसे रति के लिए आमंत्रित कर सके। वह कृष्ण के साथ संयोग कैसे करती है, इसके बारे में विद्यापति लिखते भी हैं–

"दुहुक अधर पसन लागल।
दुहुक मदन चौगुन जागल।।
दुअ ओ अधर करए पान।
दुहुक कंठ आलिंगन दान।।
दुअओ केलिसँय सँय मेलि।
सुरत-सुखे विभावरि गेलि।।"

श्रीकृष्ण अत्यधिक कामुक एवं रसिक-शिरोमणि हैं। उन्होंने अपना संपूर्ण यौवन प्रेम के लिए समर्पित कर [illegible] भी ब्रज की अप्रतिम सुंदरी है। कृष्ण उसे बहला-फुसला कर रति के लिए तैयार कर लेते हैं। ब्रज की कोई भी नवयौवना उनकी प्रेम-याचना को ठुकरा नहीं पाती। कृष्ण को देखते ही वह स्वयं तक को भूल जाती है। परंतु राधा तो उनकी विशेष प्रेमिका है। कवि ने राधा तया कृष्ण के संयोग को अनेक प्रकार से वर्णित किया है। यथा–

"कतहु जतन मोर कोर बरसाई।
बांचल बेनि, से कबरि खसाई।
कंचुक देल हृदय पर मोर।
परसि पयोधर मँगेल मोर।।"

कभी-कभी कृष्ण अन्य नायिका से रति-क्रीड़ा करके लौटता है। राधा उसके शरीर पर लगे रति-चिह्नों को देखकर यह जान जाती है कि कृष्ण ने किसी के साथ काम-क्रीड़ा की है। कृष्ण बार-बार बहाने बनाता है। लेकिन राधा उसके झूठे बहानों तथा छल-कपट के कारण रूठ जाती है। वह मौन धारण कर लेती है। इस पर कृष्ण उसे कहते हैं कि वह चाहे तो उसे दण्डित कर सकती है। लेकिन इस दण्ड-विधान में भी कवि ने संयोग शृंगार की सुंदर कल्पना की है–

"भुजपास बांध जघन तन जारि।
पयोधर पाथर हिय दय भारि।।
उर-कारा बांध राखि दिन-रात।
विद्यापति सह उचित इहे साति।।"

इस प्रकार राधा और कृष्ण का संयोग शृंगार पाठकों को आनंदित करता हुआ निरंतर चलता रहता है। राधा रति-रमण में इतनी निमग्न हो जाती है कि उसे पता ही नहीं चल पाता। अतः वह सखी से कहती है–

"जब निलि-बंध खसाओल कान।
तोहर समय, हम किछु नहिं जान।।"

इस संदर्भ में डॉ. गोविंद दास लिखते भी हैं–**"शृंगार रस के संयोग पक्ष की जितनी भी दशाएँ संभव हो सकती हैं और उन दशाओं के नायक-नायिका के हृदय में जितने भी भावों का आविर्भाव हो सकता है, उन सबकी मार्मिक व्यंजना 'पदावली' के पदों में हुई है। नायक-नायिका के हृदय की सूक्ष्मगति सूक्ष्म भावोर्मियों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में विद्यापति का विलक्षण कौशल दृष्टिगत होता है।"**

(ख) वियोग शृंगार–शृंगार का दूसरा पक्ष है–वियोग। इसे हम विरह भी कह सकते हैं। विरह-वर्णन में कवियों की वाणी अधिक रमी है। विद्यापति को संयोग वर्णन में जो सफलता प्राप्त हुई है, विरह वर्णन में वह सफलता प्राप्त नहीं हुई है। इसका कारण यही हो सकता है कि विद्यापति सौन्दर्य के कवि हैं। वस्तुतः विरह को प्रेम की कसौटी कहा गया है, क्योंकि विरह की आंच में तपकर प्रेम शुद्ध कुंदन बन जाता हैं। संयोगावस्था में प्रेम धीरे-धीरे फीका पड़ने लगता है। परंतु विरह में वह प्रगाढ़ होने लगता है। वियोग को तीन प्रकार का माना गया है, पूर्व राग जनित, मान जनित तथा प्रवास जनित।

1. **पूर्व राग जनित वियोग**–जब श्रवण अथवा दर्शन अथवा दोनों के कारण प्रेम बढ़ता दिखाई देता है परंतु अभीष्ट नायक या नायिका की प्राप्ति नहीं होती तो उसे पूर्व राग जनित वियोग कहते हैं। राधा ने एक बार कृष्ण को देखा और वह उस पर मोहित हो गई। भले ही कृष्ण से उसका प्रेम नहीं हुआ, लेकिन इसे हम पूर्व राग वियोग अवश्य कह सकते हैं।

2. मान जनित वियोग–इसमें नायक-नायिका मान के कारण एक दूसरे से रूठ जाते हैं और अलग-अलग रहने लगते हैं। दोनों विरह के उद्‌गारों को व्यक्त करते हैं परंतु मान के कारण मिल नहीं पाते। मान के भी अनेक कारण हो सकते हैं। जैसे–संकेत स्थल पर नायक-नायिका का न पहुँचना। यदि नायक नहीं आता तो नायिका रूठ जाती है और नायिका नहीं आती तो नायक रूठ जाता है। यदि इसी प्रकार नायक-नायिका दोनों किसी अन्य से रमन कर लेते हैं और दूसरे को पता चल जाता है तो भी मान की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। विद्यापति ने मान वियोग से संबंधित अनेक चित्र अंकित किए हैं। एक उदाहरण देखिए–विरह नायक कृष्ण अन्यत्र रति-क्रीड़ा करके लौटा है, राधा को पता चल जाता है और वह कृष्ण की भर्त्सना करती है–

"आध-आध मुदित भेल दुहु लोचन, बचन बोलत आध-आधे।
रति-आलस सामर तनु झामर, हेरि पुरल मोर साधे।
माधव चल चल चल तन्हि ठाम।

जसु पद-जावक हृदयक भूषण, अबहु जपइ रहु जागि।

कत चंदन कत मृगमद कुंकुम, तुअ कपोल रहु लागि।

देखि सौति अनुरूप कएल विहि, अतए मानिए बहु भागि।"

3. प्रवास—तीसरा विरह वर्णन प्रवास जनित है। प्रिय या प्रियतमा के प्रवासित हो जाने से दोनों एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं और दोनों को अलग रहना पड़ता है और उन्हें एक-दूसरे की याद आती है। राधा को पता चलता है कि कृष्ण प्रदेश जाते हैं। वह उसे रोकना चाहती है परंतु वह चला जाता है। अब कवि कृष्ण के वियोग में राधा की तड़प का अनेक प्रकार से वर्णन करता है। राधा को कृष्ण के बिना एक-एक दिन महीने सा प्रतीत होता है और मास वर्ष जैसा प्रतीत होता है। कृष्ण के बिना राधा को जीने की आशा नहीं रहती। विद्यापति ने राधा की विरह के कुल इकत्तीस छंद रचे हैं और कृष्ण के विरह के केवल छंद। राधा का शरीर विरह-जन्य क्लेश के कारण नितांत क्षीण हो गया है। यहाँ तक कि चंद्रमा और चंदन जैसे शीतल पदार्थ उसे जलाने लगते हैं। विद्यापति ने भले ही अपने काव्य में विप्रलम्भ को कम स्थान दिया है, परंतु उन्होंने विरह वर्णन में अपनी दिखाई है और महाकवियों को नीचा दिखा दिया है। कवि ने विरह वर्णन के अंतर्गत प्रवत्स्यपतिका नायिका तथा प्रोषितपतिका नायिका की विरह-व्यथा के चित्र अंकित किए हैं। प्रथम कोटि की नायिका कुल शीला है। वह प्रियतम को विदेश जाने से रोक सकती है। इसलिए मजबूर होकर अपनी सखी से कहतीहै–

"सखि हे, बालम जितब विदेस

हम कुल-कामिनी कहइत अनुचित।

तोहहुँ देहुनि उपदेश।

ई न बिदेसक बेलि।"

लेकिन सखी के कहने पर नायक नहीं रुकता और वह विदेश जाने के लिए तैयार हो जाता है। अतः लाचार होकर नायिका उसे बाहर जाने से मना करती है। वह कहती है–

"माधव, तेहिं जनु जाह विदेस।

हमरो रंग-रभस लए जएबह,

लएबह कौन संदेस।"

अंततः नायक विदेश चला ही जाता है। प्रोषितपतिका नायिका के रूप में राधा अपने प्रियतम के आने की प्रतीक्षा करती है। दिन गिनते-गिनते उसके नख घिस गए हैं और रास्ता देखते-देखते आँखों की ज्योंति मंद पड़ जाती है। लेकिन वह कठोर प्रिय फिर भी नहीं आता। इसलिए मजबूर राधा अपनी सखी से कहती है–

"सखि मोर पिया।

अबहुँ न आएल कुलिस हिया।

नखर खोआओल दिवस लिखि-लिखि।

नयन अंधा ओलुं पिया पथ देखि।"

प्रियतम की प्रतीक्षा में नायिका की दशा बड़ी शोचनीय हो गई है। उसकी दशा देखकर जन-सामान्य को भी उसके प्रति स्वाभाविक रूप से संवेदना और सहानुभूति उत्पन्न होने लगती है। राधा स्वीकार करती है कि उसके हृदय की पीड़ा को कोई नहीं जान सकता और कोई भी उसका संदेश उसके प्रियतम तक पहुँचाने वाला नहीं है बल्कि वह मर्मान्तक व्यथा को सहन करती हुई कहती है–

"माधव हमारो रहल दुर देस,

केओ न कहए सखि कुसल सनेस।

जुग-जुग जिबथु बसथु लाख कोस,

हमर अभाग हुनक नहिं दोस।

× × × × ×

हृदयक बेदन बान समान,

... सम आन नाहि जान।"

राधा का प्रेम निश्छल है। उसका प्रियतम कृष्ण पर प्रदेश में जाकर बैठ गया है। कोई उसका कुशल संदेश लाने वाला नहीं है। फिर भी राधा को अपने प्रियतम से कोई शिकायत नहीं है। वह वियोग व्यथा को अपने भाग्य का दोष मानती हुई सहन कर रही है। वह कृष्ण के लिए यही कामना करती है वे जहाँ कहीं रहें, चिरंजीवी रहें। लेकिन साथ ही अपनी सखी से कहती है–"आनक दुख आन नहीं जान'। कवि ने शास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार विरह की दसों अवस्थाओं का भी उल्लेख किया है। स्मृति, गुण, कथन, अभिलाषा, चिंता, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, जड़ता, मूर्च्छा तथा मरण के असंख्य उदाहरण पदावली में देखे जा सकते हैं। दो-एक उदाहरण देखिए–

स्मृति– "कत दिन घूघव यह हहकार
कत दिन घूघव गुरु दुखभार
कत दिन चाँद कुसुम हव भेलि।
कत दिन कमल भ्रमर करु केलि।"

मूर्च्छा– "सी रामाहे। सो किय बिछुरन जाए
करि धरि माथुर अनुमति मांगलि तताहि पड़लि मूरझाय।
नहिं बहे नयनक नीर।
मुरुधि पड़े तरु तीर।"

उद्वेग– "सजनी के कह आओब मधाई
विरह पयोधि पार किअ पाओब
मोर मन नहिं पतिआई
एखन-तखन करि दिवस गमाओल
दिवस-दिवस करि मासा।
मास-मास कर बरस गमाओल
छाड़लि जीवन आसा।
बरस-बर स कर समय गमाओल।
तेजल कान्हक आसे।"

उन्माद– "अनुखन माधव-माधव सुमरत सुंदरि भेलि मधाई।
ओ निज भाव सुभावहिं बिसरल अपने गुन लुबु धाई।"

विद्यापति ने राधा के वियोग वर्णन के साथ-साथ कृष्ण के वियोग का भी मार्मिक चित्रण किया है। भले ही कृष्ण के वियोग वर्णन के दो ही पद पदावली में उपलब्ध होते हैं, परंतु इन पदों में भी कवि ने कृष्ण की विरह-व्यथा का बड़ा ही मार्मिक और प्रभावशाली चित्रण किया है। राधा की दूति कृष्ण के पास से लौटकर राधा से कृष्ण की विरह दशा का वर्णन करती हुई कहती है–

"सजनी कोन परि जीबए कान।
राहि रहलदुर हमें मथुरापुर एतहु सहए परान।
अइसन नगर अइसन नव नागरि, अइसन सम्पद मोर।
राधा बिनु सब बाधा मानिए, नयन न तेजिए नोर।
सोई जमुना जब सोइ रमनीगन, सुनइत चमकित चीत।
कह कविसेखर अनुभवि जनलौ, बड़क बड़ई विरीत।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि शृंगार वर्णन में विद्यापति एक कुशल कवि कहे जा सकते हैं। उनके समान सफल चितेरा हिन्दी साहित्य में दिखाई नहीं देता। विद्यापति ने संयोग शृंगार वर्णन में अपनी अधिक वृत्ति रमाई है और उनके ये वर्णन बड़े मनोहर और रमणीय बन पड़े हैं। वियोग वर्णन का भले ही कवि ने बहुत कम वर्णन किया है, परंतु वियोग का श्रेष्ठ एवं मुग्धकारी वर्णन करने में वे पूर्णतया सफल रहे हैं, यथा–

"अनुखन माधव-माधव सुमरत सुन्दरि भेलि छाई"

◆◆◆

3. विद्यापति का सौंदर्य बोध

3. विद्यापति के सौंदर्य बोध पर प्रकाश डालिए। **(Most Imp**

अथवा

'विद्यापति मूलतः सौंदर्य के कवि हैं। सौंदर्य उनका दर्शन है और सौंदर्य उनकी जीवन-दृष्टि।' इस कथन की विवेचना कीजि

अथवा

विद्यापति के सौंदर्य चित्रण पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–विद्यापति का सौंदर्य बोध–विद्यापति आभ्यंतर तथा बाह्य दोनों ओर से सौंदर्योपासक कवि थे। वह एक प्रतिभा संप कवि थे, इसलिए वस्तु-वर्णन में भी वे चमत्कार का आवश्यक संयोजन करते हैं। परंतु विद्यापति ने सुंदर को सुंदर नाम से न बल्कि अपरूप के नाम से पुकारा है। कवि ने अपने अनेक पदों में सौंदर्य के स्थान पर 'अपरूप' शब्द का प्रयोग किया है। नायिका ने प्रियतम को जाते हुए देखा तो वह अपनी सखि से कहती है–

"ए सखि देखलि एक अपरूप
सुनइत मानवि सपन सरूप।"

यहाँ राधा के कहने का भाव यह है कि उसने साक्षात् सौंदर्य को अपने पास से गुजरता हुआ देखा है। इसी प्रकार रा के सौंदर्य पर कवि स्वयं मुग्ध है। वह स्वयं कह उठता है–

"देख-देख राधा रूप अपार
अपरूप के बिहि आनि
खितितल लाबनि सार।"

जब दूती कृष्ण के पास जाती है और राधा के बारे में उसे बताती है। तब वह भी सौंदर्य शब्द का प्रयोग न करके अपर शब्द का प्रयोग करती है। अद्वितीय सुंदरी राधा की ओर कृष्ण को प्रेरित करती है और कृष्ण भी अलौकिक सौंदर्य-राशि रा को पाने के लिए तत्काल प्रस्थान कर देते हैं।

"ए कान्हु ए कान्हु तोर दोहाई
अति अपरूप देखल साई।"

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर कवि रूपकातिशयोक्ति द्वारा राधा की सुंदरता का वर्णन करता है। कवि कहता है–

"आज देखल जाति के पतिआएत।
अपुरूप बिहि निरमान रे।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने सौंदर्य-वर्णन करते समय सौंदर्य शब्द के स्थान पर 'अपरूप', 'अपुरुब' आदि शब्द का प्रयोग किया है। ऐसा माना जाता है कि रस का वर्णन करते समय उस रस का शब्देन उल्लेख नहीं किया जाता अन्य साहित्यिक दोष उत्पन्न हो जाता है। संभवतः यही कारण है कि विद्यापति ने इस दोष से निवारण करने के लिए अपरूब शब्द का प्रयोग किया। कवि ने न केवल सौंदर्य को देखा बल्कि उसे अनुभव भी किया। कवि सौंदर्य के स्थूल रूप को देखना चाहता है क्योंकि वह उसे शाश्वत सत्य और मंगलमय मानता है। इस दृष्टि से विद्यापति पाश्चात्य विद्वान कीट्स का अनुसरण करते दिखाई देते हैं। कीट्स लिखते भी हैं–

Beauty is truth, truth is beauty—that is all he know on earth, and all he need to know.

इससे स्पष्ट हो जाता है कि अंग्रेजी में सौंदर्य को Beauty कहते हैं। ब्यूटी शब्द ब्यू + टी से बना है। Beau का अर्थ है रसिक। ty एक भाववाचक प्रत्यय है। अतः Beauty का अर्थ हुआ रसिकता जो मानव हृदय का विषय है। परंतु सुंदरता की कोई सही परिभाषा नहीं दी जा सकती। कारण यह है कि सुंदरता का कोई एक मापदंड नहीं है। विशेषकर काव्य सौंदर्य लौकिक सौंदर्य से भिन्न है। रीति-कालीन कवि बिहारी लाल ने सौंदर्य के बारे में लिखा भी है–

"समै-समै सुंदर सबै, रूप कुरूप न कोय।
मन की रुचि जैसी जितै, तित तेती रुचि होय।।"

विद्यापति के सौंदर्य में एक ऐसी शक्ति है जो पाठक के मन में पुलक उत्पन्न कर देती है। प्राणों में शक्ति तथा शरीर में रोमांच भर देती है। कवि घिसे-पिटे सौंदर्य के उपासक नहीं हैं। वे चिर कवि के उपासक हैं। इसलिए कवि ने चिर कवि उपासक तथा अभिराम यौवन सौंदर्य शब्दों का प्रयोग किया है। सौंदर्य कवि के सामने नित नवीन रूप धारण करके आता है। अतः इस दृष्टि से विद्यापति कालिदास से पूर्णतः सहमत दिखाई देते हैं।

विद्यापति चिर नूतन यौवन को देखकर नव बसंत के आगमन पर नव साल की उत्कृष्ट सुगंध से उन्मत्त कोयल के समान कूक उठते हैं।

"नव वृंदावन नव-नव तरुगन, नव-नव विकसित फूल।
नवल बसंत नवल मलयानिल, मातल नव अलिकूल।
कालिंदी-पुलिन कुंज वन सोभन, नव-नव प्रेम विभोर।
नवल रसाल 'मुकुल-मधु मातल, नव कोकिल कुल गाय।
नव युवतीगन चित उमताअई, नव रस कानन धाय।
नव जुवराज नवल बर नागरि, मीलए नव-नव भाँति।
निति-निति ऐसन नव-नव खेलन, विद्यापति मति माति।"

विद्यापति द्वारा वर्णित सौंदर्य के बारे में डॉ. कुमुद विद्या अलंकार तथा जयवंशी झा लिखते हैं—**"कवि विद्यापति का हृदय सौंदर्य का अक्षय-भंडार है। वे प्रकृति के कोने-कोने में रंग-बिरंगे सौंदर्य को थिरकते देखते रहते हैं। उसे देखकर न केवल वे आनंद-विभोर ही हो जाते हैं, बल्कि उन्हें आत्मिक शांति भी मिलती है। वे प्राकृतिक सौंदर्य से आत्म-सुख एवं शांति प्राप्त करने के लिए अतिरिक्त दिव्य-प्रेरणा भी ग्रहण करते हैं। उसी अलौकिक-प्रेरणा से कवि कोकिल अमर पदों की सृष्टि कर गए और अनन्त काल तक के लिए अमर कवियों की कोटि में परिगणित हो गए।"**

विद्यापति की पदावली में सौंदर्य के अनेक रूप देखे जा सकते हैं। कवि ने यदि नायक-नायिका के सौंदर्य का वर्णन किया है तो प्रकृति तथा शृंगार सौंदर्य का प्रभावशाली वर्णन किया है। यही नहीं, उनकी सौंदर्य भावना कहीं अलौकिक रूप धारण कर लेती है और कहीं प्रेम का रूप धारण कर लेती है। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया जा सकता है—

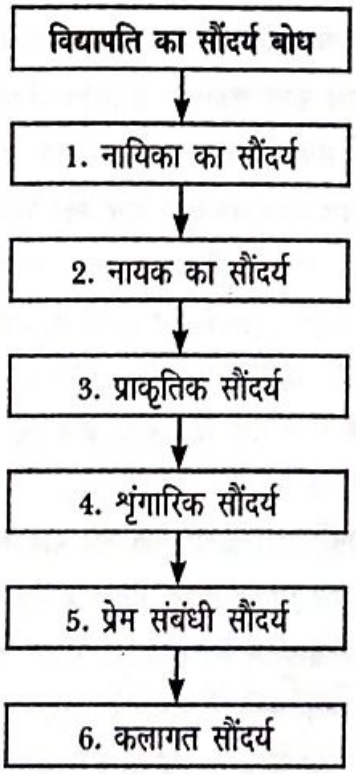

1. नायिका का सौंदर्य—पदावली की नायिका राधा है। यद्यपि कवि ने अपने आश्रयदाता राजा शिवसिंह तथा उनकी रानी लखिमा देवी के लिए पदावली की रचना की। परंतु काव्य-रचना के नायक-नायिका राधा-कृष्ण ही हैं। राधा का रूप सौंदर्य वर्णन करते हुए कवि ने स्वीकार किया है कि युग-युग से बूढ़ा विधाता भी इस प्रकार की सुंदरी का निर्माण कैसे कर सकता है। कवि

स्वयं स्वीकार करता है कि उसके रूप का वर्णन करना कवि के बस का नहीं है क्योंकि कवि के नेत्र उसकी सुंदरता को ही रह जाते हैं। कवि कहता भी है–

"जुग-जुग के विहि बूढ
निरस उर कामिनी कोन गढली?
रूप सरूप मोय कहइत
असंभव लोचन लागि रहली।"

राधा के सौंदर्य का अनुपम चित्रण करते हुए कवि ने प्रकृति के विभिन्न उपमानों का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं कवि मौलिक उद्भावना का परिचय देते हुए राधा के सौंदर्य का चित्रण करता है। एक स्थल पर कवि लिखता भी है–

"चांद-सार लए मुख घटना करु, लोचन चकित चकोरे।
अमिय धोए आँचर घनि पोछल, दह दिसि भेल उँजोरे।
जुग-जुग के विहि बूढ़ निरस उर, कामिनी कोन गढ़ली।
रूप सरूप हमे कहए न पारिअ, लोचन लागि रहली।
गुरु नितंब भरे चलए न पारए, माझहि खीती निमाई।
मांगि जाइति मनसिज धरि राखलि, त्रिवलीलता अरुझाई।"

राधा के सौंदर्य का चित्रण कवि ने वयः संधि, नख-शिखं, सद्यःस्नाता आदि खंडों के अंतर्गत किया है। कवि प्रश्न करता कि किस विधाता ने उस चन्द्रबाला की रचना की है। वह तो अपूर्व रूपवती नायिका है और कामदेव के शुभ स्वरूप का उपमान तथा तीनों लोकों को पराजित करने वाली माला है। उसके सुंदर मुख पर काजल लगी आँखें हैं। मानो सोने के कमल में कालसर्प शोभापद खंजन के समान खेल रही है। कवि लिखता भी है–

"सुधा मुखि के विहि निरमिल बला।
अपुरुब रूप मनोभव मंगल त्रिभुवन विजयी माला।
सुंदर वदन चारु अरु लोचन काजर रंजित भेला।
कनक कमल माझ काल भुजगिनी सत्रीजुत खंजन खेला।
नाभि-बिबर संच रोम लतावलि भुजगि निसास पियासा।
नासा खंगपति चंचु करम-मय-कुच-गिरि संधि निवासा।"

विद्यापति ने राधा के शारीरिक रूपों का चित्रण ही नहीं किया, बल्कि उसके हावों-भावों को भी अंकित किया है। कवि राधा को अनुपम तथा अनिंद्य सुंदरी कहता है। सभी उपमाएँ उसके रूप-सौंदर्य के समक्ष फीकी पड़ जाती हैं। उसके केशों की सुंदरता से डर करके चवरी गाय पर्वतों की कंदरा में चली गई है। मुख की सुंदरता के भय से चन्द्रमा आकाश में चला गया है। और के सौंदर्य के डर से मृग तथा मधुर स्वर के भय से कोयल और मस्त चाल के भय से हाथी ने वनवास ले लिया है। इस प्रकार नायिका की सुंदरता के समक्ष सभी पदार्थ फीके पड़ गए हैं–

"कबरी भय चामरि गिरिस्कन्दर मुख-भय चाँद अकासे।
हरिन नयन-भय सर-भय कोकिल गति-भय गज बनवासे।"

2. नायक का सौंदर्य–पदावली के नायक श्रीकृष्ण हैं। राधा का सौंदर्य कृष्ण के लिए उद्दीपनकारी है तो कृष्ण का सौंदर्य भी राधा को अपनी ओर आकर्षित करता है। अतः कवि ने राधा के साथ-साथ नायक श्रीकृष्ण के सौंदर्य का आकर्षक वर्णन किया है। परंतु नायक के सौंदर्य का वर्णन करते हुए कवि ने नख-शिख पद्धति को नहीं अपनाया। लेकिन राधा पहली बार कृष्ण को देखती है तो वह उसे देखकर आश्चर्यचकित रह जाती है। राधा ने यमुना नदी के किनारे कृष्ण को घूमते देखा। उनका सौंदर्य देखकर वह मुग्ध हो गई। अतः कृष्ण के सौंदर्य का वर्णन अपनी सखी से करते हुए कहती है कि मैंने एक अपूर्व रूप देखा

तुम उसे सुनोगी तो स्वप्न की बात मानोगी। दो कमलों पर चन्द्रमाओं की माला थी। उस पर तरुण-तमाल वृक्ष उत्पन्न था। उस बिजली की लता ने ढक रखा था। यमुना के तट पर वह तमाल वृक्ष धीरे-धीरे चल रहा था–

"ए सखि पेखलि एक अपरूप। सुनइत मानबि सपन सरूप।
कमल जुगल पर चाँद कमाला। तापर उपजल तरुन तमाला।
तापर बेठलि बीजुरि लता। कालिंदी तट धीरे चलि जाता।
साखा-सिखर सुधारक पांति। ताहि नवपल्लव अरुनंद भाँति।
बिमल बिम्बफल जुगल विकास। तापर कीरथीर करु बास।
तापर चंचल खंजन जोर। तापर सांपिनि झांपल मोर।"

विद्यापति ने नायिका राधा सादृश्य नायक कृष्ण के रूप सौंदर्य का वर्णन नहीं किया, बल्कि राधा के मुख से करवाया है। कृष्ण की मादकता भरी सुंदरता नायिका के मन को आसक्त कर लेती है। वह चाहती है कि कृष्ण हमेशा उसकी आँखों के सामने रहें। उसकी आँखें निरंतर उसे देखकर ही तृप्त नहीं होतीं। कृष्ण को देखने की राधा की बड़ी अभिलाषा थी। परंतु उसे देखकर राधा ने अपराध कर दिया। राधा तो एक मुग्धा नारी थी। अतः कृष्ण ने क्या कहा और राधा ने क्या सुना, उसे कुछ समझ नहीं आया। परतु अब वह कृष्ण के लिए अत्यधिक व्याकुल है। उसके सौंदर्य का पान करने के लिए राधा की अभिलाषा ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। इस प्रकार कवि ने पदावली में यत्र-तत्र नायक कृष्ण का भी प्रभावशाली चित्रण किया है।

3. प्राकृतिक सौंदर्य–मानव अनादि काल से प्रकृति की ओर आकर्षित रहा है। प्रकृति सौंदर्य मानव-मन को लुभाता रहा है। प्रकृति ने मानव-जीवन को चक्रवात के समान चारों ओर से घेरा हुआ है। मानव प्रकृति से जन्म लेता है और मरने के बाद प्रकृति में ही लीन हो जाता है। इसलिए भारतीय कवियों ने प्राकृतिक सौंदर्य के बिना अपनी काव्य रचनाओं को अधूरा माना है। कविवर विद्यापति ने अपने पदों में प्रकृति के आलंबन रूप, उद्दीपन रूप, पृष्ठभूमि रूप, आलंकारिक रूप तथा प्रतीकात्मक रूप में सुंदर चित्रण किया है। परंतु कवि को प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण करने में विशेष सफलता मिली है। कवि संयोग शृंगार तथा वियोग शृंगार दोनों में प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण करता है। विरह वर्णन के अंतर्गत कवि लिखता है कि भ्रमर चारों दिशाओं में भ्रमण कर रहे हैं, प्रत्येक पुष्प पर रमण कर रहे हैं, वे नीरस मंजरी का पान करते हैं। मंद-मंद पवन बह रही है और कोयल कू-कू की ध्वनि कर रही है। इसे सुनकर विरहिणी कैसे जीवित रह सकती है–

"चौदिस भमर भम, कुसुम-कुसुम-रम,
नीरस मांजरि पीवइ।
मंद पवन चल, पिक कुह-कुह कह
सुनि विरहिनि कइसे जीवइ।"

इसी प्रकार कवि ने आलंबन रूप में प्रकृति का सुंदर चित्रण किया है। विशेषकर वर्षा तथा बसंत ऋतुओं का वर्णन करते समय कवि ने प्रकृति का आलंबन रूप प्रस्तुत किया है। एक उदाहरण देखिए–

"नव वृंदावन नव-नव तरुगन।
नव-नव विकसित फूल।
नवल बसंत, नवल मलयानिल
मातल नव अलिकूल।"

बसंत के अंतर्गत कवि ने प्रकृति के आलंबन रूप के साथ-साथ उद्दीपन रूप का भी सुंदर चित्रण किया है। बसंत के आगमन पर नवयुवक कृष्ण विहार कर रहे हैं। यमुना तट की झाड़ियों में वन सुशोभित हो रहा है। वहाँ कृष्ण नूतन प्रेम भावों से विभोर हो रहे हैं। नूतन आम्रमंजरी के मधु में मस्त होकर कोयल गा रही है, जिससे नवयुवकों का मन उन्मत्त हो रहा है–

"नव वृंदावन नव नव तरुगन, नव नव विकसित फूल।
नवल बसंत, नवल मलयानिल, मातल नव अतिकूल।
बिहरइ नवल किसोर।
कालिंदी-पुलिन कुंज बन सोभत, नव नव प्रेम-विभोर।
नवल रसाल-मुकुल-मधु मातल, नव कोकिल कुल गाय।
नवयुवती गन चित उमताअई, नव रस कानन धाय।"

कवि ने प्रकृति के अनेक उपकरणों का प्रयोग उपमानों में भी किया है। उनके कुछ उपमान तो परंपरागत हैं तो कुछ सर्वथा नवीन हैं। उदाहरण के रूप में शरीर के लिए मेघमाला तथा बिजली की रेखा और कनकलता का प्रयोग किया है। मुख की उपमा चन्द्रमा तथा कमल से की है। बालों की तुलना जलधारा तथा चामर से की है। आँखों के लिए भ्रमर, मृग, खंजन, चकोर आदि उपमानों का प्रयोग किया है। अधरों की तुलना बिम्बाफल तथा कुचों की तुलना नारंगी तथा श्रीफल के साथ की है। यही नहीं, कवि ने बारहमासा तथा षट्ऋतु वर्णन के अंतर्गत नायिका के संयोग तथा वियोग अवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव का भी चित्रण किया है। यही नहीं, कवि यमुना तट, लता, कुंज, अमराई तथा तमाल आदि प्रकृति के विभिन्न अंचलों का वर्णन करता है। कहीं कवि ने प्रकृति के भयावह रूप का चित्रण किया है तो कहीं मनोरम रूप का भी। एक उदाहरण देखिए–

"चलु देखए जाअ रितु बसंत, जहाँ कुंद-कुसुम केतकि हसंत।
जहाँ चंदा निरमल भमरकार, जहाँ रयनि उजागर दिन अंधार।
जहाँ नुगुयलि मानिनि करए मान, परिपयिहि देखए पंचबान।
भनई सरस कबि-कंठ-हार, मधुसूदन राधा बन बिहार।"

विद्यापति के सौंदर्य चित्रण के बारे में डॉ. शिव प्रसाद सिंह ने उचित ही लिखा है–**"विद्यापति वस्तुतः सौंदर्य के कवि हैं। सौंदर्य उनका दर्शन है, सौंदर्य उनकी जीवन-दृष्टि है। इस सौन्दर्य को उन्होंने नाना रूपों में देखा था, इसे कुशल मणिकार की तरह उन्होंने चुना, सजाया, सँवारा और आलोकित किया था। सौंदर्य मन को कितना भावविह्वल और एकोन्मुख कर देता है, इसे विद्यापति जानते थे।"**

4. शृंगारिक सौंदर्य–शृंगार रस सभी रसों का राजा है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल के कवियों ने शृंगार रस को आधार बनाकर रचनाएँ लिखी हैं। प्रत्येक कवि किसी-न-किसी रूप में शृंगारिकता का समावेश अवश्य करता है। विद्यापति मूलतः शृंगार रस के ही कवि हैं। उन्होंने पदावली में जितना शृंगार रस का वर्णन किया है, उतना किसी का नहीं। विशेषकर कवि को संयोग शृंगार वर्णन में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। वयः संधि, नख-शिख, सद्यः-स्नाता, प्रेम-प्रसंग, मिलन, अभिसार आदि खंडों में कवि ने शृंगारिक सौंदर्य का बड़ा ही प्रभावशाली चित्रण किया है। विद्यापति सौंदर्य, माधुर्य और प्रेम के कवि हैं। वे सौंदर्य का वर्णन कुछ ऐसे शब्दों द्वारा करते हैं कि पाठक एवं श्रोता मंत्र-मुग्ध हो जाते हैं। विद्यापति का नायक नायिका के अलौकिक सौंदर्य को देखकर कह उठता है–

"कि आरे! नवजौवन अभिरामा।
जत देखल तत कहए न पारिअ
छओ अनुपम एक ठामा।"

कवि ने शृंगार रस का चित्रण करते समय विभाव-अनुभाव तथा संचारी भावों की सुंदर योजना की है जिससे रति स्थाई भाव ही शृंगार रस में अभिव्यक्त हुआ है। यथा–

"अवनत आनन कए हय रहिलहुँ
बारल लोचन चोर।
पिया-मुख-रुचि पिबए धाओल,
जनि से चाँद चकोर।
माधव बोलत मधुर बानी,
से सुनि मुँदु मोय कान।
ताहि अवसर ठाम बाम भेल,
धरि धनू पंचवान।
तनु पसेव पसाहनि भासलि,
पुलक सहसन जागु
चुनि-चूनि भए काँचुअ फाटलि,
बाहु बलुआ भागुँ।"

इस सन्दर्भ में डॉ. [illegible] ने उचित ही लिखा है—"विद्यापति पदावली में एक रससिद्ध शृंगारी कवि के रूप में [illegible] सामने आते हैं। प्रेम और सौंदर्य विद्यापति के काव्य में प्रमुख रूप से वर्ण्य-विषय रहे हैं। प्रेम और सौंदर्य का चित्रण काव्यशास्त्रीय दृष्टि से शृंगार रस के अंतर्गत आता है।"

5. प्रेम संबंधी सौंदर्य—प्रेम और सौंदर्य का गहरा संबंध है। प्रेम का आधार पाकर ही सौंदर्य सार्थकता प्राप्त करता है। विद्यापति की नायिका अपने सौंदर्य को तभी सार्थक मानती है जब उसका प्रेमी उसकी ओर आकर्षित हो अन्यथा सौंदर्य की उप निरर्थक कही जाती है। कवि ने राधा के विरह का वर्णन करते समय अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। राधा कृष्ण से कहती भी है—

> **"सरसिज बिनु सर सर बिनु सरसिज, की सरसिज बिनु सूरे।**
> **जौवन बिनु तन तन बिनु जौवन, की जौवन पिय दूरे।"**

जैसे सरोवर की शोभा कमल से है और कमल की सूर्य से। उसी प्रकार नायिका के शरीर की शोभा यौवन अथवा सौंदर्य से है और सौंदर्य की शोभा प्रियतम से है। परंतु यदि प्रियतम नायिका के पास नहीं है तो उसका सौंदर्य निरर्थक है।

राधा का मन करता है कि उड़कर वहाँ पहुँच जाए जहाँ उसे हरि प्राप्त हो जाएं। इस स्थिति में वह अपने प्रियतम को मणि समझकर अपने हृदय से लगा लेना चाहती है। प्रेम प्रसंग से स्पष्ट हो जाता है कि राधा कृष्ण से अत्यधिक प्रेम करती है। वह कृष्ण को देखे बिना चैन प्राप्त नहीं कर सकती। अपने जागते सपने में वह नायक को ही याद करती है। एक स्थल पर वह अपनी प्रेम भावना का वर्णन करते हुए कहती है—

> **"कानु हेरब छल मन बड़ साध, कानु हेरइत भेल अत परमाद**
> **तब धरि अबुधि हम नारि, कि कहि कि सुनि किछु बुझिए न पारि**
> **साओन घन समझर दु नयान, अविरत धक-धक करए परान**
> **की लागि सजनी दरसन भेल, रभसे अपन जिव परहथ देल**
> **ना जानू किये करु मोहन-चोर, हेरइत प्रान हरि लेई गेल मोर।"**

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यापति ने संयोग तथा वियोग दोनों दशाओं में प्रेम और सौंदर्य का आकर्षक वर्णन किया है। यदि कवि नायक के प्रेम सौंदर्य का वर्णन करता है तो नायिका के प्रेम सौंदर्य का भी चित्रण करता है। उदाहरण के रूप में कवि ने विरह-वर्णन के अंतर्गत कृष्ण के विरह पर भी समुचित प्रकाश डाला है—

> **"सजनी कोन परि जीवए कान।**
> **राहि रहल दुर हमें मधुरापुर, एतुह सहए परान।**
> **अइसन नगर अइसन नव नागरि, अइसन सम्पद मोर।**
> **राधा बिनु सब बाधा मानिए, नयन न तेजिए नोर।**
> **सोइ जमुना जल सोई रमनीगन, सुनइत चमकित चीत।**
> **कह कवि सेखर अनुभवि जानल, बड़क बड़ई पिरीत।"**

6. कलागत सौंदर्य—विद्यापति के काव्य में भाव पक्ष के साथ-साथ कला पक्ष की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। पदावली में सौंदर्य और प्रेम का अभूतपूर्व वर्णन देखा जा सकता है। परंतु कवि ने काव्य के कला पक्ष को कहीं भी नीरस अथवा शुष्क नहीं होने दिया। उन्होंने मैथिली भाषा में पदावली की रचना की और यह भाषा अपने लालित्य के लिए प्रसिद्ध है। वे एक सच्चे गायक थे और संगीत तथा राग-रागनियों से पूरी तरह परिचित थे। उन्होंने गीतिकाव्य के रूप में पदावली की रचना की।

एक **आलोचक** के शब्दों में— हिन्दी के सर्वप्रथम गीतिकाव्य लेखक विद्यापति हैं। वे मध्ययुग के दरबारी कवियों की परम्परा में होते हुए भी जनजीवन के प्रति पूर्ण जागरूक थे। उन्होंने संस्कृत में भी कविताएँ लिखीं। किंतु झुकाव तो 'देसिल बयना' की ओर ही था। विद्यापति ने प्रायः ललित पदावली तथा कोमल शब्दों का ही प्रयोग किया है। शृंगार रस की अभिव्यक्ति के लिए यह आवश्यक भी था। उनकी भाषा में सुकोमलता, मधुरता, सरसता तथा लालित्य है। उन्होंने अलंकारों का प्रयोग काव्य की शोभा बढ़ाने के लिए किया है। यही कारण है कि उनकी भावाभिव्यक्ति सहज और प्रभावशाली बन पड़ी है। इस सन्दर्भ में **डॉ. शिव प्रसाद** ने उचित ही लिखा है— **"विद्यापति में लय और तर्ज की मौलिकता तो है ही, एक अछूती भाव संवेदना को व्यक्त करने में नैसर्गिकता भी दिखाई पड़ती है। इसी कारण विद्यापति के गीत एक व्यापक जनसमाज के कण्ठहार बन सके।"** यद्यपि विद्यापति

लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. विद्यापति का साहित्यिक परिचय सार रूप में लिखिए।

अथवा

मैथिली कवि विद्यापति के जीवन पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

उत्तर–कविवर विद्यापति हिन्दी साहित्य के उस आरम्भिक युग के कवि हैं जब साहित्य रचना के क्षेत्र में संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश का बोलबाला था। विद्यापति महान कवि थे। वे आत्म प्रशंसा में कुछ नहीं लिखना चाहते थे। ऐसा करना वे उचित समझते थे। यही कारण है कि उनका जीवन परिचय विद्वानों के लिए विवाद का विषय बना हुआ है। विद्वानों ने उनका 1350-1360 ई. के लगभग माना है। इनका जन्म बिहार के दरभंगा जिले के विसपी नामक गांव में हुआ था। उनके पिता नाम गणपति ठाकुर था और माता को नाम गंगा देवी था। इनके पिता संस्कृत के महान विद्वान थे। अतः विद्यापति को साहित्यि संस्कार विरासत में मिले थे। वे सद्गृहस्थ थे। उनकी पत्नी का नाम चन्दन देवी था। कुछ विद्वानों ने उनका नाम चम्पति मा माना है। उनके तीन पुत्र (वाचस्पति ठाकुर, नरपति ठाकुर एवं हरपति ठाकुर) थे। उनकी एक पुत्री भी थी जिसका नाम दुल्ल बताया गया है। विद्यापति की मृत्यु 1450 ई. में मानी गई है।

कविवर विद्यापति अपने जीवन काल में अनेक राजाओं के आश्रय में रहे। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय शिव सिंह के दरबार में व्यतीत किया। राजा शिवसिंह उनके आश्रयदाता एवं परम सखा भी थे।

विद्यापति ने आजीवन साहित्य रचना की थी। उन्होंने संस्कृत (भूपरिक्रमा, पुरूष परीक्षा, शैव सर्वस्वसार, लिखनावली, वाक्यवली, विनाग सागर आदि), अवहट्ठ (कीर्तिलता तथा कीर्तिलता) तथा मैथिली (पदावली) तीनों भाषाओं में सफलतापूर्व काव्य-रचना की है। इनकी कीर्ति का आधार स्तम्भ विद्यापति पदावली है।

प्रश्न 2. विद्यापति पदावली पर सार रूप में प्रकाश डालिए।

अथवा

विद्यापति की प्रमुख काव्य-रचना 'पदावली' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर–विद्यापति की कीर्ति का आधार पदावली से है। यह मैथिली में रचित काव्य-रचना है। इसमें विद्यापति द्वारा समय-समय पर रचित फुटकर पदों को संकलित किया गया है। इसमें कुल 945 पद हैं। इन पदों को वर्ण विषय के आधार पर तीन वर्गों

विभाजित किया जा सकता है ... अन्य विषयों या विविध विषयों संबंधी पद। श्रृंगार विषय पदों में राधा और कृष्ण को युगल रूप में चित्रित किया गया है। उनके सौंदर्य एवं नख-शिख का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया गया है। वे अवतारी राधा-कृष्ण की अपेक्षा साधारण नर-नारी के रूप में चित्रित है। राधा के विरह संबंधी ये पंक्तियाँ देखते ही बनती हैं–

"एखन तखन करि दिवस गमाओल, दिन-दिवस करि मासा।
मास मास करि बरस गमाओल, छाड़लि जीवन आसा।
बरस-बरस करि समय गमाओल, तेजल कान्ह आसे।
हिमकर-किरन नलिनि जदि जारब, कि करन माधव मासे।"

भक्तिपरक पदों में कवि ने शिव, पार्वती, गंगा आदि के प्रति भक्ति भावना अभिव्यक्त की है। जहाँ कहीं राधा और कृष्ण के प्रति भक्ति भावना व्यक्त की है तो वहाँ उनकी माधुर्य भाव की भक्ति ही प्रकट हुई है। दास्य भाव की भक्ति दर्शाने वाले पदों का भी पदावली में अभाव नहीं है। कवि ने अपने आराध्य शिव के चरणों में वंदना करते हुए कहा है, आप शरणहीनों को शरण देने वाले हो। आप मुझ पर दया कीजिए–

"असरन सरन चरन सिर नाओल,
दया करु दित सूल पानी।।"

विद्यापति की 'पदावली' में लोक जीवन का भी सजीव चित्रण किया गया है। दरबारी कवि होते हुए भी उन्होंने अपने युग के समाज व लोक की अवहेलना नहीं की।

विद्यापति की पदावली सर्वत्र गति तत्व का समावेश हुआ है। पदावली माधुर्य युक्त मैथिली भाषा में रचित काव्य है। साहित्य में प्रचलित अलंकारों के प्रयोग से कलात्मकता को समावेश हुआ है। लोक प्रसिद्ध मुहावरों का सटीक प्रयोग है। पदावली भाव वर्णन एवं कला दोनों दृष्टियों से सफल रचना है।

प्रश्न 3. विद्यापति भक्त कवि या शृंगारी सार रूप में उत्तर दीजिए। (Most Imp.)

उत्तर–विद्यापति की आधार स्तम्भ काव्य-रचना पदावली में 90% पद शृंगार से संबंधित है। शेष पदों में से कुछ में उनकी भक्ति भावना अभिव्यक्त हुई है। अतः यह कहना बहुत कठिन है कि विद्यापति शृंगारी कवि हैं या भक्त कवि हैं। यह निर्णय करना भी सहज नहीं है कि उनकी प्रमुख काव्य-रचना पदावली शुद्ध शृंगारिक रचना है या अध्यात्मक प्रधान शृंगारिक रचना है। कुछ विद्वानों ने विद्यापति को शृंगारिक कवि सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। इन विद्वानों में महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, रामकुमार वर्मा के नाम प्रमुख हैं। ये विद्वान आलोचक सिद्ध करते हैं कि विद्यापति शृंगारिक कवि थे। उनकी पदावली का मूल उद्देश्य शृंगार रस के संयोग व वियोग दोनों अवस्थाओं का चित्रण करना था। भक्ति के पद बहुत कम दिखाई पड़ते है। उनके भक्ति के पदों में भी रति क्रीड़ा का वर्णन हुआ है। उनकी राधा एक विलासिनी नायिका है और श्रीकृष्ण एवं विलासी नायक हैं। दोनों की कामुक चेष्टाओं रति संबंधी व संयोगात्मक वर्णन स्पष्ट रूप में किया है। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने अपना मत स्पष्ट करते हुए लिखा है–**"आध्यात्मिक रंग के चश्मे आजकल बहुत सस्ते हो गए हैं। उन्हें पढ़कर जैसे कुछ लोगों ने 'गीत गोविन्द' के पदों को आध्यात्मिक सन्देश बताया है, वैसे ही विद्यापति के इन पदों को भी .... इन लीलाओं का दूसरा अर्थ निकालने की आवश्यकता नहीं।"**

डॉ. राम कुमार वर्मा, डॉ. गोबिन्दराम शर्मा आदि विद्वानों ने 'पदावली' को शृंगारिक काव्य-रचना और विद्यापति को शृंगारिक कवि कहा है। 'पदावली' के अनेक पद इस बात का प्रमाण हैं।

दूसरी को विद्यापति की पदावली में अनेक पद ऐसे भी है जिनमें उनकी उत्कृष्ट भक्ति भावना के दर्शन होते हैं। उन्होंने केवल श्रीकृष्ण की भक्ति प्रस्तुत नहीं की, अपितु शिव की उपासना भी की है। उन्होंने शक्ति की देवी दुर्गा की भक्ति भी की है। कहीं सूर्य, अग्नि, गणेश, शिव एवं शक्ति इन पांचों के प्रति अपनी आराधना व्यक्त की है। यही कारण है कि कुछ उन्हें वैष्णव कहते हैं तो कुछ शैव सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। कुछ विद्वानों ने उन्हें एकेश्वरवादी कहा है तो कुछ ने शाक्त कहा है।

इसका प्रमुख कारण है कि उनकी पदावली में इस प्रकार की भक्ति के पद हैं। एक स्थल पर वे भवानी देवी की उपासना क हुए लिखते हैं–

जय जय भैरवी असुर भयाउनि
पशुपति-भामिनी माया।
सह सुमति बर दिअओ गोसाउनि
अनुगति गति तुअ पाया
....
विद्यापति कवि तुअ पद सेवक
पुत्र बिसरन जनि माता।

डॉ. श्याम सुन्दर, विपिन बिहारी मजूमदार, डॉ. उमेश मिश्र आदि विद्वानों का मत है कि विद्यापति की राधा-कृष्ण की एवं प्रेम लीलाओं के चित्रों में माधुर्य भाव की भक्ति का प्रस्फुटन हुआ है। अतः स्पष्ट है कि विद्यापति को भक्त मानने विद्वानों का भी कमी नहीं है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि विद्यापति अपने इष्टदेव व अन्य देवी देवताओं के प्रति सच्चे भक्त हैं। उन्होंने मन से उनकी उपासना की है। दूसरी ओर दरबारी कवि होने के कारण उन्होंने अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने हेतु दरबारों में वाह-वाह लूटने के लिए शृंगार के पद भी लिखे थे। अतः कहा जा सकता है कि विद्यापति व्यक्तिगत जीवन में भ थे और दरबारी कवि के रूप में शृंगारित थे।

प्रश्न 4. सिद्ध कीजिए कि विद्यापति शृंगार रस के सिद्ध कवि हैं। **(Most Imp**

उत्तर–विद्यापति के विषय में अनेक विद्वानों ने स्पष्ट कहा है कि वे शृंगार रस के महान कवि थे। डॉ. रामकुमार का कथन है, **"विद्यापति ने राधा-कृष्ण का जो चित्र खींचा है उसमें वासना का रंग बहुत ही प्रखर है। आराध्यदेव के प्रति का जो पवित्र विचार होना चाहिए, वह उसमें लेशमात्र भी नहीं है। साख्यभाव से जो, उपासना की गई है, उसमें कृष्ण तो में उन्मत्त नायक की भांति है और राधा यौवन की मदिरा में मतवाली एक मुग्धा नायिका की भांति। राधा का प्रेम-भौतिक वासनामय प्रेम है। आनन्द ही उद्देश्य है और सौंदर्य ही उसका कार्य-कलाप। यौवन ही से जीवन का विकास है।"** विद्यापति पदावली में लगभग 900 पद हैं। इनमें से 90% से अधिक पद शृंगारिक हैं। इससे स्पष्ट है कि महाकवि विद्यापति एक शृं रस सिद्ध कवि थे तथा शृंगार रस ही उनका प्रिय रस है। उनके शृंगारिक पदों से पाठक को जो आनन्द प्राप्त होता है वह अन्य दुर्लभ है। विद्यापति ने शृंगार रस के दोनों पक्षों–संयोग एवं वियोग दोनों का वर्णन किया है।

विद्यापति का संयोग शृंगार का वर्णन अत्यन्त भावुक एवं मार्मिक है। उसमें कामशास्त्र का अनुसरण किया गया है साहित्यिक शास्त्र में वर्णित काम-केलियों के आधार पर भी ने भी संयोग शृंगार का चित्रण किया गया है। विद्यापति की पदाव के पदों में काम विदग्ध नायक-नायिका की रति क्रीड़ा, प्रणय लीला, हासविलास, प्रेम व्यापार आदि का स्वच्छंदता के साथ व किया है। इनमें कहीं मिलने की तैयारी हो रही है तो कहीं विभिन्न प्रेम क्रीड़ाएँ हो रही हैं। कहीं श्रीकृष्ण राधा का शृंगार कर हैं तो कहीं राधा श्रीकृष्ण को चोली पहनाती देखी जाती है। विद्यापति के संयोग शृंगार की प्रमुख विशेषता है कि नायक-नायि के मनोभावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

विद्यापति की पदावली में संयोग शृंगार की भांति ही वियोग शृंगार का भी वर्णन किया गया है किन्तु जो सफलता उ संयोग वर्णन में मिली है, वैसी उन्हें वियोग वर्णन में प्राप्त नहीं हुई, यद्यपि उन्होंने वियोग की सभी दशाओं का उल्लेख किया है साहित्य-शास्त्र में विरह के चार भेद बताए गए हैं–पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण। विद्यापति ने इन चारों भेदों में से मान औ प्रवास का ही अधिक वर्णन किया है। इनमें भी प्रवास सम्बन्धी उनका वर्णन अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है–

"सखि हे, बालम जितब विदेस
हम कुल कामिनी कहइत अनुचित।
तोहहूँ देहुनि उपदेश।
ई न विदेसक बेली।"

नायिका मार्मिक व्यथा को सहन करती हुई सखी से बताती है–

''माधव हमारो रहल दुर देस

केओ ने कहए सखि कुसल सनेस।''

इनके अतिरिक्त कवि ने विरहिणी को प्रत्येक ऋतु में अत्यन्त पीड़ित एवं व्यथित दिखाया है–

''माघ मास घन पड़ए तुसार। झिलमिल केचुओं के चुऑं उनत घनहार।।

पुनमति सूतल प्रियतम कोर। विधि बस दैव वाम चलेमोर।।''

अतः स्पष्ट है कि महाकवि विद्यापति का विरह वर्णन भी अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है। शृंगार वर्णन में विद्यापति एक कुशल कवि कहे जा सकते हैं। वे संयोग वर्णन में यदि पाठक को बांधकर रखने में सफल रहे तो वियोग में भी पाठक के हृदय को गहराई से छूने में भी सफल रहे हैं। उनको सभी आलोचक विद्वानों ने एक स्वर में शृंगारिक कवि माना है। वे वास्तव में ही शृंगार रस सिद्ध कवि हैं।

प्रश्न 5. विद्यापति के काव्य में अभिव्यंजित उनकी भक्ति भावना पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। (Imp.)

उत्तर–कुछ विद्वानों ने विद्यापति को भक्त कवि स्वीकार किया है। पहला कारण यह है कि पदावली में ऐसे पद हैं जिनमें विद्यापति की भक्ति-भावना सिद्ध होती है। कवि ने केवल कृष्ण की भक्ति नहीं, बल्कि शिव की उपासना भी की है। शिव की भक्ति से संबंधित संस्कृत तथा अवहट्ठ के कुछ ग्रंथ भी लिखे थे। 'पदावली' में शिव-भक्ति के कुछ पद उपलब्ध होते हैं। इसके साथ-साथ कवि ने दुर्गा, सूर्य, अग्नि, गणेश, शक्ति आदि के प्रति भी अपनी आराधना ग्रंथ की है। यही कारण है कि कुछ आलोचक विद्यापति को वैष्णव मानते हैं, कुछ शैव तथा कुछ एकेश्वरवादी मानते हैं। उदाहरण के रूप में वे देवी-वंदना करते हुए लिखते हैं–

''जय-जय भैरबि असुर भयाउनि पसुपति भामिनि माया।

सहज सुमति बर पिअओ गोसाउनि अनुगति गति तुअ पाया।

बासर रैनि सबासन सोभित चरन, चन्द्रमनि चूड़ा।

कतओक दैत्य मारि मुहँ मेलल कतओक उगिल कैल क्रीड़ा।

सामर बरन, नयन अनुरंजित जलद जोग कुल कोका।

कट-कट बिकट ओठ-पुट पाडरि लिधुर फन उठा कोका।

घन-घन घनए घुंघरु कत बाजए हन-हन कर तुअ बनता

विद्यापति कवि तुअ पद सेबक पुक्ष बिसरु जनि माता।''

इसी प्रकार वे एक दूसरी स्तुति में विष्णु और शिव दोनों की स्तुति एक साथ करते हैं। दोनों के स्वरूप की झांकी एक साथ प्रस्तुत करते हुए दोनों में एकात्मकता भाव की स्थापना की है तथा कहते हैं कि हे हर! तुम भी अच्छे हो और हे हरि! तुम भी अच्छे हो तथा दोनों की कल्पनाएं भी अच्छी हैं।

''भल हर भल हरि तुअ कला। खनपित बसन खनहि बघछला।।''

विद्यापति ने अनेक महेश बानियों एवं भक्त पदों की रचना की है, जिनका गायन तीन त्योहारों के अवसर पर आज भी मिथिला के गांव-गांव में गाया जाता है। विद्यापति द्वारा सरस्वती, दुर्गा, गंगा, शिव पार्वती, विष्णु आदि के संबंध रचित पद उनकी भक्ति भावनाओं के परिचायक हैं। अतः स्पष्ट है कि विद्यापति के स्तुति संबंधी पदों में तत्कालीन लोकाचार के साथ-साथ तत्कालीन मैथिली समाज में व्यक्त भक्ति भावना एवं दार्शनिक विचारधारा का भी बोध होता है।

प्रश्न 6. विद्यापति के काव्य में प्रकृति चित्रण पर प्रकाश डालिए। (Imp.)

उत्तर–प्रकृति मानव की चिर सहचरी रही है। मानव के सुख दुःख में प्रकृति का सदा साथ रहा है। मानव भी प्रकृति के सौंदर्य पर सदा विमोहित रहा है। यद्यपि प्राचीन काल में कवियों ने प्रकृति को उद्दीपन रूप में अधिक चित्रित किया है, किन्तु विद्यापति ने प्रकृति का आलम्बन (स्वतन्त्र) तथा उद्दीपन दोनों ही रूपों में चित्रण समान रूप से किया है।

आलम्बन रूप में प्रकृति की मनोरम झाँकी प्रस्तुत करते हुए विद्यापति ने बसन्त का चमत्कारपूर्ण वर्णन किया है। बसन्त वर्णन के अन्तर्गत कवि ने ऋतुराज के जन्म से लेकर राज्य प्राप्ति तक का उल्लेख बड़ी सजीवता से किया है। कवि ने बसन्त के जन्मोत्सव का उल्लेख भी बड़ी मार्मिकता से किया है। उस अवसर पर युवतियां प्रफुल्लित मन से नाचती हैं–

"नाचए युवती जना हरखित मना जनमल बाल मधाई हे।
मधुर महारस मंगल गाएव मानिनि मान उड़ाई हे।।"

कवि ने प्रकृति के आलम्बन रूप चित्रण के अन्तर्गत विभिन्न ऋतुओं, नदियों, पर्वतों, झरनों, पशु-पक्षियों, वन-उपवनों, नगर-ग्राम, उत्सव-महोत्सव आदि के अत्यन्त सजीव चित्र अंकित किये हैं। तालाब में खिले कमल के फूलों का वर्णन करते हुए लिखा है–

"ताल तड़ाग फुलल अरविंद
भूषल झमरा पिब मकरंद।"

उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण भी उन्होंने खूब किया है। नायक नायिका के संदर्भ में उनके अनुभावों को उद्दीप्त करने हेतु, उनके विरह को व्यापकता प्रदान करने हेतु, बारहमासा चित्रण आदि में उन्होंने प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण किया है। विरहिणी मदन पीड़िता नायिका के विरह का वर्णन करने के संदर्भ में व प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण करते हुए लिखते हैं–

"गगने गरज घर फुकूरे मयूर।
एकलि मन्दिरे हाम पिया मधुपूर।
शुन सखिर हामारि वेदन
बड़ा दुख देल मोर दारुण मदन।।"

विद्यापति ने प्रकृति का मानवीकरण रूप में भी चित्रण किया हैं। उन्होंने अपने वर्णन में चारूता उत्पन्न करने के लिए अवचेतन पर चेतन का आरोप किया है। इस संदर्भ में बसंत का वर्णन देखते ही बनता है–

"नृप आसन नव पीठल पात
कांचन कुसुम छत्र धरू माय।
मौलि रसाल कुसुम भेल ताय
सुमुखहि कोकिल पंचम गाय।।"

उन्होंने प्रकृति का चित्रण अलंकार रूप में भी किया है–

"माधव, की कहब सुन्दरि रूपे।
कतेक जतन विहि आन समारल, देखलि नयन सरूपे।।
पल्लबराज चरन-जुग सोभित, गति वजराजक भाने।।"

इसी प्रकार उन्होंने प्रकृति का वातावरण निर्माण के रूप में भी चित्रण किया है–

"आएल उनमद समय वसंत।
दारुण मदन निदारुन कंत।।
ऋतुराज आज विरा हे सखि नागरी जन बन्दिते।
नवरंग नव बल देखु उपवन सहज सोभित कुसुमिते।।"

प्रश्न 7. विद्यापति की पदावली में प्रणय केलि निरूपण पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। **(Imp.)**

उत्तर–कविवर विद्यापति ने राधा और श्री कृष्ण के माध्यम से तत्कालीन समाज में व्याप्त प्रणय केलियों की बड़ी भावोन्मादमयी झाँकी प्रस्तुत की है। इन झाँकियों में कवि ने मानव हृदय में व्याप्त काम अथवा मूल वासना का अत्यन्त सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। इसलिए कवि ने प्रणय चित्रों में कहीं राधा और कृष्ण का राज-पथ पर एक दूसरे को देखकर बेहोश होते दिखाया है। कहीं-कहीं नायक नायिका के अंग-प्रत्यंगों व हावभावों की अंगिमा चित्रित की गई है। नायिका को भी बड़ी रस-विदग्ध दिखाया गया है, वह भी नायक के रूप और सौंदर्य में उलझी हुई दिन-रात उससे मिलने के लिए आतुर अंकित की गई है। कवि ने प्रणय केलियों का

वर्णन करते हुए काम कौशल नायिका को नायक के साथ अभिसार घाट पर जाने के लिए भी उत्सुक दिखाया है। इसलिए वह पार हाथ काम भी ले चारे' कहकर नायक से हाथ पकड़कर उस पार पहुंचा देने का आग्रह करती है। इसी प्रकार कवि ने मार्ग पर कृष्ण नायिका के बीच पकड़ने वाले छीना-झपटी का भी बड़ी मार्मिकता से वर्णन किया है–

"कुंज भवन सर्वं निकसित रे, रोकल गिरधारी।

....

छाँड़ कन्हैया मोर आँचर रे, फाटत नव सारी।
अपयश हो एत जगत भरि हे, जनि करिअ उघारी।।
संग सखि अगुआइलि रे, हम एक सरि नारी।।
दामिनि आए तुलाएल हे, एक राति अँधियारी।।"

इस प्रकार कवि ने प्रणय क्रीड़ाओं का चित्रण करते हुए नायक एवं नायिका की अनेक काम-केलियों को अंकित किया है जिसमें कहीं किसी विदग्धा नायिका गुरुजनों के साथ जाती हुई अपना हार तोड़कर फेंक देती है और इस बहाने से पीछे रहकर नायक से मिलती है। कहीं नायक को संकेत स्थल पर पहुँचने का संकेत करती है। कहीं एकान्त स्थल या नायक से भेंट हो जाने पर अपयश का बहाना बनाती हुई भी काम के लिए उत्सुक दिखाई देती है।

अतः स्पष्ट है कि विद्यापति ने काम-क्रीड़ाओं का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण किया है और जो मानव हृदय के रहस्य का उद्घाटन करने में बड़े ही सफल दिखाई देते हैं। कवि के ऐसे गीतों में प्रेम क्रीड़ाएँ हैं, युवा हृदयों का उन्मुक्त क्रिया व्यापार है तथा भावों की उल्लासमयी स्वच्छन्द गति है और कामना का तीव्र वेग भी है।

प्रश्न 8. विद्यापति पदावली के नायक का सार रूप में चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर–विद्यापति की 'पदावली' का नायक श्रीकृष्ण हैं। कवि ने पदावली में कृष्ण वन्दना में उन्हें नंदक नंद कहा है जिसका अर्थ है-नंद बाबा को आनन्दित करने वाला। पदावली में श्रीकृष्ण के किशोरावस्था का ही अधिक वर्णन किया गया है। उन्हें राधा से मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक दिखाया है। विद्यापति ने न सूरदास की भांति श्रीकृष्ण के बाल्यकाल का वर्णन किया है और न ही उनके अवतारी रूप का। उन्होंने केवल श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं द्वारा माधुर्य भाव को ही अभिव्यक्ति किया है।

कवि ने राधा के रूप सौंदर्य के वर्णन के साथ-साथ श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य का भी सुन्दर वर्णन किया है। राधा श्रीकृष्ण को यमुना तट पर घूमते हुए देखती हैं तथा उसके रूप-सौंदर्य पर मुग्ध हो जाती हैं। कृष्ण के इस सौंदर्य को वह अपनी सखी के सामने इस प्रकार व्यक्त करती हैं–

"ए सखी पेखिल एक अपरूप, सुनइत मानदि सपन सरूप।
कमल जुगल पर चांदक माला तापर उपजल तरुन तमाला।"

विद्यापति की पदावली में श्रीकृष्ण को लोकरक्षक के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया। अपितु उसे एक कामुक युवक के रूप में देखा गया है। उनके चरित्र का वर्णन पढ़कर हृदय में विरक्ति की अपेक्षा आसक्ति की भावना उत्पन्न होती है। **'पदावली'** में वह काम-क्रीड़ाओं का चतुर नायक दिखलाई पड़ता है। 'पदावली' में कवि ने श्रीकृष्ण को विरही नायक रूप में भी चित्रित किया है, वह राधा की एक दूती के सामने अपने विरह की पीड़ा को व्यक्त करता है कि राधा के बिना मुझे रात-दिन अच्छे नहीं लगते। तुम जाकर राधा को समझाना कि मैं दो-चार दिन में वापस लौट आऊंगा।

वस्तुतः विद्यापति ने पदावली में श्रीकृष्ण का वर्णन दरबारी परिस्थितियों के अनुकूल किया है। इसका प्रमुख कारण था कि उन्होंने अपने आश्रयदाता शिवसिंह की श्रृंगारी इच्छाओं को अपनी कविता से संतुष्ट करना था। अतः 'पदावली' में कृष्ण में एक कामुक नायक के चरित्र की पूर्ण झाँकी मिल जाती है।

प्रश्न 9. विद्यापति के काव्य शिल्प पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। **(Most Imp.)**

उत्तर–विद्यापति का काव्य हिन्दी गीति काव्य का श्रृंगार है। उन्होंने पदावली के पदों में जन जीवन का स्वच्छंद हास विलास, प्रेमी हृदयों का मधुर मिलाप, जनमानस के भावों का अत्यन्त आकर्षक वर्णन, भक्त जन के मन की भक्ति की स्वर लहरियाँ आदि एक साथ देखी जा सकती हैं। निश्चय ही विद्यापति के काव्य भाव की जो मधुर एवं सरस धारा प्रवाहित हुई है। वह परवर्ती

कवियों के लिए सदा प्रेरणा बनी रही। उनकी साहित्यिक पद शैली भी ऐसी भावमयी धारा प्रवाहित करने में सक्षम जो सहृदय को अपनी ओर आकृष्ट करने में पूर्णतः सक्षम हैं। विद्यापति के काव्य की यह सरस धारा सदियों से निरन्तर बहती रही। इतना ही नहीं कबीर, सूर, तुलसी व मीरा आदि सभी भक्त कवियों के हृदयों को भी बरबस अपनी ओर आकृष्ट करके इस पद शैली में अपने अत्यन्त मधुर स्वरों को काव्य रूप देने के लिए बाध्य करती रही है। शृंगारी कवि भी इससे प्रभावित होकर आकण्ठ डूबकर अपने ललित स्वरों से सहृदय पाठकों के हृदयों में झंकार उत्पन्न करने में सफल रहे।

विद्यापति के काव्य में तीन प्रकार की धाराएँ एक साथ समानान्तर रूप से प्रवाहित होती हुई देखी जा सकती हैं। प्रथम प्रणय लीला संबंधी शृंगार के पद, द्वितीय प्रार्थना संबंधी भक्ति के पद तथा तृतीय तत्कालीन परिस्थितियों का चित्र अंकित करने वाले पद। उनके काव्य में प्रणय लीला संबंधी पदों की अधिकता है। उनके काव्य में संयोगावस्था एवं वियोगावस्था के अनेक सजीव एवं आकर्षक चित्र अंकित है। उन्होंने वयःसंधि वर्णन, नख-शिख वर्णन, सद्यः स्नाता वर्णन, प्रणय के लिए वर्णन, स्तुति वर्णन, युद्ध वर्णन आदि का चित्रण किया है।

विद्यापति के काव्य में प्रकृति का अत्यन्त मनोरम चित्रण किया गया है। विद्यापति ने प्रकृति को न केवल उद्दीपन रूप में ही चित्रित किया है अपितु स्वतन्त्र एवं आलम्बन रूप में भी चित्रित किया है। 'बसन्त' वर्णन के अन्तर्गत उसके जन्म से लेकर उसकी राज्य प्राप्ति तक का अत्यन्त सजीव चित्रण किया है। यथा–

"मापमगारा सिरि पंचमी गंजाइलि नवम् मारा पंचम हरुआई।
सुभ खन बेरा सुकुल पक्ख हे दिनकर उदित समाई।
सोरह संपुन बत्तिस लखन सह जनल लेल रितुराई।।"

विद्यापति ने अपने काव्य में अलंकारों का सफल प्रयोग किया है। उनकी पदावली में सादृश्यमूलक अलंकारों का ही प्राधान्य है। ये सभी अलंकार भावों की विशद् अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुए हैं। केवल भाषा की सजावट के लिए नहीं। विद्यापति का अलंकार विधान दृश्य चित्रण एवं भाव निरूपण में बड़ा ही सहायक सिद्ध हुआ है। विद्यापति ने अत्यन्त सुन्दर एवं सजीव उपमाओं द्वारा दृश्य विधान किए हैं। एक नवयुवती के विकसित उरोजों की स्थिति को कवि ने उपमा द्वारा कितनी सजीवता के साथ स्पष्ट कर दिया है–

"..........पहली बदरि कुच पुन नवरंग"

इसके अतिरिक्त विद्यापति ने रूपक, उत्प्रेक्षा, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकारों के भी सफल प्रयोग किये हैं।

विद्यापति ने अपनी पदावली में मैथिली भाषा का प्रयोग किया है। उनकी पदावली में प्रयुक्त मैथिली भाषा हिन्दी की विभाषा या उपभाषा होने की पूर्णक्षमता रखती है। विद्यापति की भाषा में सबसे बड़ी विशेषता उसकी कोमलकान्त पदावली है। इनकी भाषा का शब्द चयन, पद विन्यास एवं वर्णमैत्री सर्वथा अद्‌भुत एवं अनुपम है। इसमें तत्कालीन लोकभाषा माधुर्य विद्यमान है। अतः स्पष्ट है कि विद्यापति के काव्य में प्रयुक्त भाषा लोक-भाषा होते हुए भी साहित्यिकता से परिपूर्ण है। उसमें गजब की सरसता, सुकुमारता एवं आलंकारिकता है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है विद्यापति का काव्य भाव सम्पदा और अभिव्यंजना क्षमता से परिपूर्ण काव्य है।

प्रश्न 10. विद्यापति ने जिस परिवेश में काव्य-रचना की है, उसका सार रूप में उल्लेख कीजिए।

अथवा

विद्यापति के काव्य परिवेश का सार में वर्णन कीजिए।

उत्तर–विद्यापति के जीवन का अध्ययन करने से पता चलता है कि वे अपने लेखन काल के अधिकांश समय से मिथिला के विभिन्न राजाओं के आश्रय में रहे थे। इससे स्पष्ट है कि उनके काव्य का परिवेश दरबारी था। उन्होंने अपनी सारी रचनाएँ अपने आश्रयदाताओं का प्रसन्न रखने के लिए की थी। उनकी रचना 'भू-परिक्रमा' जो एक भौगोलिक ज्ञान संबंधी ग्रंथ है। इस ग्रंथ की रचना उन्होंने अपने आश्रयदाता राजा देवी सिंह की आज्ञा से की थी। उनकी रचना 'लिखनावली' जिसमें पत्र लेखन संबंधी नियमों का वर्णन है। इसकी रचना राजा पुरादित्य गिरिनारायण की आज्ञा से हुई थी। 'शैव सर्वस्व सार' की रचना महादेवी विश्वास, देवी के आदेश पर की गई थी। 'गंगो वाक्यवली' की रचना भी विश्वास देवी के कहने पर ही की गई थी। 'विद्या सागर' शीर्पक ग्रंथ की रचना विद्यापति ने नरसिंह की आज्ञा से की थी। **दुर्गा भक्ति तरंगिनी** की रचना भैरवसिंह की आज्ञा से की थी।

विद्यापति ने अपने आश्रयदाताओं को सदा प्रसन्न रखने का प्रयास किया। उन्होंने अवहट्ठ भाषा में रचित 'कीर्तिपताका' में महाराज कीर्ति सिंह की वीरता का तथा 'कीर्तिलता' में महाराज शिवसिंह की वरता का ओजस्वी भाषा में उल्लेख किया है। उनकी 'पदावली' ही एक ऐसी रचना है जिसमें उन्होंने अपने विविधतापूर्ण भावों का उल्लेख किया है। इस काव्य ग्रंथ की रचना उन्होंने लोकभाषा मैथिली भाषा में की है। यह रचना भी दरबारी वातावरण से पूर्णतः मुक्त नहीं है। इस पर भी दरबारी वातावरण परिलक्षित होता है। इस रचना का परिवेश लोक जीवन का परिवेश है तथा लक्ष्य लोकरंजन है। यही कारण है कि उनकी प्रसिद्धि का आधार स्तंभ भी यही रचना बनी है। अतः स्पष्ट है कि विद्यापति ने दरबारी वातावरण में रहते हुए भी उससे मुक्त होकर रचना करने की पूर्णक्षमता अथवा योग्यता थी। इस दृष्टि से वे महान कवि कहे जा सकते हैं।

प्रश्न 11. विद्यापति को अवहट्ठ भाषा के कवि कहना कहाँ तक उचित है?

अथवा

विद्यापति अवहट्ठ भाषा के कवि हैं? इस कथन की समीक्षा कीजिए। **(Imp.)**

उत्तर–विद्यापति महान कवि और बहु-भाषी विद्वान थे। उनका संस्कृत, मैथिली और अवहट्ठ भाषाओं पर समान अधिकार था। विद्यापति द्वारा लगभग पन्द्रह रचनाएँ संस्कृत में रचित हैं, **'कीर्तिलता'** और **'कीर्तिपताका'**। दोनों रचनाएँ अवहट्ठ में तथा पदावली लोकभाषा मैथिली में रचित हैं। विद्यापति को अवहट्ठ भाषा का कवि कहना विवाद का विषय है। विभिन्न विद्वानों ने उन्हें कभी मैथिली, अपभ्रंश, कभी सक्रांतिकालीन भाषा तो कभी पिंगल भाषा का कवि स्वीकार किया है। विभिन्न अनुसंधानों के अनुसार अवहट्ठ का सबसे पहले प्रयोग ज्योतिरीश्वर ठाकुर के 'वर्णरत्नाकार' में मिलता है। इसका समय लगभग 1325 ई. माना गया है। इस भाषा का दूसरा प्रयोग विद्यापति की **'कीर्तिलता'** में मिलता है। विद्यापति की दूसरी रचना **'कीर्ति पताका'** थी जो इसी भाषा में रचित है। विद्यापति ने अपनी भाषा के विषय में स्वयं कहा है–

"सक्कय बुहअन भावइ।
पाउंस रस को मम्म पावई।।
देसिल बअना सब जन मिट्ठा।
तं तैसान जम्पओ अवहट्टी।।"

'कीर्तिलता' विद्यापति की प्रथम अवहट्ठ भाषा में रचित काव्य-रचना है। इस रचना में महाराज कीर्तिसिंह की वीरता और तेजस्विता का ओजस्वी भाषा में उल्लेख किया है।

इस रचना में महाराज कीर्तिसिंह के पिता गणेश्वर की अलखान नामक किसी यवन द्वारा हत्या, कीर्तिसिंह का जौनपुर के सुलतान की सहायता से पितृवध का बदला लेना तथा मिथिला उद्धार इस कृति का मुख्य वर्ण्य है। यह कृति तत्कालीन परिवेश का जीवंत रूप प्रस्तुत करती है। **'कीर्तिलता'** की भाषा का एक उदाहरण द्रव्टव्य है–

"सब्बऊँ केरा रिज नयन तरुणी हेरहिं बङ्क।
चोरी पेम पिआरिओ अपने दोष ससङ्क।।"

विद्यापति की अवहट्ठ में रचित दूसरी रचना **'कीर्तिपताका'** है। इसमें महाराज शिव सिंह का किसी सुल्तान से युद्ध दर्शाया गया है। **'कीर्तिपताका'** की सुरक्षित प्रति उपलब्ध नहीं है। इन दोनों रचनाओं के अतिरिक्त अवहट्ठ भाषा में रचित उनकी फुटकर कविताएँ व पद भी मिलते हैं। अवहट्ठ में रचित निम्नलिखित पद देखिए–

"एक दिसि सकल जवन दल चलिओ एक दिसि जमराज चरू
दुहुओ दल क मनोरथ पुरुओ गरुए दाघ सिवसिंह करु
सुरतरु कुसुम धालि दिस पूरओ दुन्दुहिं सुदर साद धरु
वीर छत्र देखने को कराण सुरगन सोभे गगन भरु।"

अतः स्पष्ट है कि विद्यापति द्वारा संस्कृत में रचित साहित्य के पश्चात् अवहट्ठ भाषा रचित साहित्य की मात्रा आती है। मैथिली भाषा में केवल विद्यापति **'पदावली'** ही उपलब्ध है। इसलिए उन्हें अवहट्ठ भाषा का कवि मानने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। किन्तु उनकी प्रसिद्धि का मूलाधार **'पदावली'** ही है जो मैथिली लोकभाषा में रचित है।

◆◆◆

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'पदावली' के रचयिता कौन हैं?

उत्तर—विद्यापति।

2. विद्यापति हिन्दी साहित्य के इतिहास के किस काल के कवि थे?

उत्तर—आदिकाल।

3. 'विद्यापति की पदावली' के अतिरिक्त उनकी किन्हीं दो रचनाओं के नाम लिखिए।

उत्तर—कीर्तिलता एवं कीर्ति पताका।

4. विद्यापति का जन्म कब हुआ था?

उत्तर—1350 ई. में।

5. विद्यापति की मृत्यु कब हुई थी?

उत्तर—1450 ई. में।

6. विद्यापति किस राज्य एवं गांव के रहने वाले थे?

उत्तर—बिहार राज्य के गांव बिसपी के।

7. विद्यापति किस जिले के रहने वाले थे?

उत्तर—दरभंगा जिले के।

8. विद्यापति के पिता का क्या नाम था?

उत्तर—गणपति ठाकुर।

9. गणपति ठाकुर किस राजा की सभा के सभासद थे?

उत्तर—गणेश्वर सिंह।

10. विद्यापति की माता का क्या नाम था?

उत्तर—गंगा देवी।

11. विद्यापति ने किस विद्वान से शिक्षा ग्रहण की थी?

उत्तर—हरि मिश्र से।

12. विद्यापति का किस जाति से संबंध था?

उत्तर—मैथिली ब्राह्मण से।

13. विद्यापति की पत्नी का क्या नाम था?

उत्तर—चन्दन देवी।

14. विद्यापति के कितने पुत्र थे?

उत्तर—तीन।

15. विद्यापति के पुत्रों के क्या नाम थे?

उत्तर—हरपति, नरपति, वाचस्पति।

16. विद्यापति की पुत्री का क्या नाम था?

उत्तर—दुलही।

17. विद्यापति को उनके किस साहित्यिक नाम से जाना जाता है?

उत्तर—मैथिली कोकिल।

18. विद्यापति को गांव बिसपी उन्हें किस राजा ने प्रदान किया था?

उत्तर—राजा शिव सिंह।

19. मधुकर मिश्र कौन था?

उत्तर—मिथिला का प्रकांड विद्वान।

20. विद्यापति से कौन-सा राजा मित्रवत व्यवहार करता था?

उत्तर—शिव सिंह।

21. विद्यापति को दी गई उपाधियों में सर्वप्रमुख उपाधि कौन-सी थी?

उत्तर—मैथिली कोकिल।

22. विद्यापति द्वारा रचित संस्कृत के किन्हीं दो ग्रंथों के नाम लिखिए।

उत्तर—पुरुष परीक्षा, शैव सर्वस्वसार।

23. 'विद्यापति पदावली' किस भाषा में रचित है?

उत्तर—मैथिली भाषा में।

24. 'विद्यापति पदावली' में कुल कितने पद माने जाते हैं?

उत्तर—945।

25. किस आलोचक ने विद्यापति को शैव कहा है?

उत्तर—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने।

26. 'विद्यापति पदावली' के नायक का नाम बताइए।

उत्तर—श्री कृष्ण।

27. 'विद्यापति पदावली' की नायिका का नाम बताइए।

उत्तर—राधा।

28. विद्यापति की कीर्ति के आधार-स्तंभ ग्रंथों के नाम बताइए।

उत्तर—पदावली, कीर्तिलता व कीर्तिपताका।

29. 'विद्यापति पदावली' में किस रस की प्रधानता है?

उत्तर—शृंगार रस की।

30. 'कीर्तिलता' किस भाषा में रचित रचना है?

उत्तर—अवहट्ठ भाषा में।

31. 'कीर्तिलता' किस राजा के लिए लिखी गई रचना है?

उत्तर—महाराज कीर्ति सिंह।

32. 'कीर्तिलता' के नायक कौन हैं?

उत्तर– महाराज शिव सिंह।

33. राजा शिव सिंह की पत्नी का क्या नाम था?

उत्तर– रानी लखमी देवी।

34. राधा और कृष्णा लीला वर्णन में विद्यापति के आदर्श कवि कौन है?

उत्तर– जयदेव।

35. विद्यापति पर जयदेव की किस रचना का प्रभाव है?

उत्तर– गीत गोविन्द का।

36. हिन्दी में पद रचना का आरम्भ किस कवि से माना जाता है?

उत्तर– विद्यापति से।

37. विद्यापति के किस ग्रंथ में पत्र लेखन शैली का प्रयोग किया गया है?

उत्तर– लिखनावली।

38. विद्यापति को कवि शेखर जी उपाधि किस राजा ने प्रदान की है?

उत्तर– नसरत शाह ने।

39. हिन्दी में गीति काव्य प्रवर्तक किसे माना जाता है?

उत्तर– विद्यापति को।

40. 'विद्यापति पदावली' के नायक कृष्ण को किस रूप में चित्रित किया गया है?

उत्तर– चतुर एवं विलासी नायक के रूप में।

41. 'पदावली' में कृष्ण का राधा के प्रति प्रेम कैसा है?

उत्तर– पार्थिव व भौतिक प्रेम।

42. श्रीकृष्ण किस पेड़ के नीचे खड़े होकर बांसुरी बजाते थे?

उत्तर– कदंब के पेड़ के नीचे।

43. 'पदावली' किस शैली में रचित है?

उत्तर– गीति शैली में।

44. 'पदावली' में बसंत ऋतु का वर्णन किस रूप में किया गया है?

उत्तर– मानवीकरण के रूप में।

45. 'पदावली' में बसन्त का वर्णन उसके जन्म से कब तक किया गया है?

उत्तर– पदावली में बसन्त के जन्म से लेकर उसके शासक बनने तक का वर्णन किया गया है।

46. 'पदावली' में चित्रित राधा की आयु कितनी है?

उत्तर– शैशव तथा यौवन के वयः संधि काल की।

47. 'पदावली' में विद्यापति ने राधा के सौंदर्य का वर्णन किस के लिए किया है?

उत्तर– महारानी लखिमा देवी के लिए।

48. 'पदावली' में श्रीकृष्ण के आलोक में किसकी स्तुति की है?

उत्तर– महाराज शिव सिंह की।

49. विभाग शीर्षक ग्रंथ किसकी आज्ञा से लिखा गया था?

उत्तर– राजा नरसिंह दर्पनारायण।

50. 'गयापन्तलक' नामक कृति का प्रमुख विषय क्या है?

उत्तर– गया संबंधी श्राद्ध विधियाँ।

51. विद्यापति की कौन सी रचना है, जिसमें किसी आश्रतदाता की प्रशंसा नहीं की गई?

उत्तर– पदावली।

52. विद्यापति के जीवन काल का वातावरण कैसा था?

उत्तर– दरबारी वातावरण।

53. 'दानवाक्यवली' शीर्षक रचना का प्रमुख विषय क्या है?

उत्तर– दान करने की प्रमुख विधियाँ।

54. 'कीर्तिपताका' रचना में किस रस की प्रमुखता है?

उत्तर– शृंगार रस की।

55. विद्यापति की रचना 'दुर्गाभक्ति तरंगिणी' किस भाषा में रचित है?

उत्तर– संस्कृत में।

56. विद्यापति को अभिनव जयदेव क्यों कहा जाता है?

उत्तर– वे जयदेव को अपना आदर्श मानते थे।

57. रामवृक्ष बेनीपुरी ने विद्यापति को किस सम्प्रदाय से संबंधित माना है?

उत्तर– शैव सम्प्रदाय से।

58. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मत में विद्यापति किस सम्प्रदाय से संबंधित थे?

उत्तर– वैष्णव सम्प्रदाय से।

59. 'विद्यापति पदावली' का वर्णय विषय क्या है?

उत्तर– राधा एवं श्रीकृष्ण का प्रेम।

3 कबीरदास

व्याख्या भाग

(क) साखियाँ— कबीर : संपादक-आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

1 हैं तो सबही की कहो, मोकों कोउ व जान।
तबौ भला अब भी भला, जुग-जुग होउं नआन।
कलि खाटा, जग आँधरा, सब्द न मानै कोय।
जाहि कहौ हित अपुना, सौ उठि बैरी होव।।
मसि-कागज छूयो नहीं, कलम गही नहि हात।
चारिउ जुग को महातम मुखहि जनाई बात।
बोली हमरी पूर्व की, हमें लखै नहिं कोय।
हमको तो साई लखै, धुर पूरब को होय।

(Imp.)

शब्दार्थ – मुखहि = मुख से, जुग = युग, मसि = स्याही, सब्द = ब्रह्म का नाद।

प्रसंग–प्रस्तुत साखियाँ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित ग्रंथ 'कबीर' से अवतरित हैं। इनके रचयिता क्रांतिकारी कवि **कबीरदास** हैं। इन साखियों में कवि ने अपने जीवन से सम्बन्धित कुछ बातों पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या–कबीरदास जी कहते हैं कि मैं तो सब लोगों से कहता हूँ लेकिन मुझे कोई नहीं जानता अर्थात् कोई मेरी बात नहीं सुनता। ये दोनों ही बातें सही हैं, पहले भी सही थीं अब भी सही हैं कि युगों-युगों तक प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान प्राप्त नहीं होता। कबीरदास जी पुनः कहते हैं कि यह कलयुग विसंगतियों से युक्त है और सारा संसार अज्ञान रूपी अंधकार से ग्रस्त है इसलिए कोई भी व्यक्ति शब्द अर्थात् ब्रह्म के अनहदनाद को स्वीकार नहीं करता। इस संसार में जिस किसी मनुष्य को उसके भले की बात कही जाय, वही कहने वाले का शत्रु बन जाता है अर्थात् लोग हित की बात को सुनना नहीं चाहते।

तीसरी साखी में कबीरदास जी कहते हैं कि मैंने अपने जीवन में स्याही और कागज का स्पर्श तक नहीं किया। यहाँ तक कि मैंने हाथ में कलम भी नहीं पकड़ी। भाव यह है कि मैंने कोई विधिवत् शिक्षा प्राप्त नहीं की। फिर भी मैंने अपने मुख से चारों युगों के माहात्म्य को बताया है। भाव यह है कि मैं कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति नहीं हूँ, फिर भी मैंने लोगों को ज्ञान की बातें समझाई हैं। अंत में कवि अपनी भाषा की ओर संकेत करता हुआ कहता है कि मेरी बोली तो पूर्व दिशा की है। मैंने कभी भी अपने हाथों से कुछ नहीं लिखा है। मेरे लिए तो जो कोई इनको लिखता है, वही पूर्व दिशा का हो जाता है।

विशेष–1. यहाँ कबीरदास ने समकालीन सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों पर समुचित प्रकाश डाला है।

2. तीसरी और चौथी साखी में अपने को अनपढ़ तथा पूरी भाषा को बोलने के तथ्य का उद्घाटन किया है।

3. अनुप्रास तथा पुनरुक्ति प्रकाश अलंकारों का सहज प्रयोग है।

4. अभिधा शब्द-शक्ति के कारण भावाभिव्यक्ति सहज बन पड़ी है।

5. सहज, सरल तथा साहित्यिक सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग है तथा शब्द-चयन सर्वथा उचित व भावाभिव्यक्ति में सक्षम है।

6. प्रसाद गुण है तथा शांत रस का परिपाक है।

2 **आगिनी जु लागी नीर में, कंदू जलिया झारि।**
उतर-दखिन के पंडिता, रहे विचारि विचारि।
गुरु दाझा चेला जला, बिरहा लागी आगि।
तिणका बपुरा ऊबरया, गलि पुरे कै लागि।
अहेड़ी दौ लाइया, मिरग पुकारे रोइ।
जा बन में क्रीडा करी दासत है बन सोई।
पाणी माहै परजली भई अप्रबल आगि।
बहती सलिला रह गई, मच्छ रहे जल त्यागि।
समंदर लागी आगि, नदियाँ जलि कोयला भई।
देखि कबीरा जागि, मच्छी रूखा चढ़ि गई।

शब्दार्थ – रूखा = वृक्ष रूपी ऊर्ध्व ब्रह्माण्ड में, **दौ** = दावाग्नि, **पुरे कै** = पूर्ण के साथ, **दाझा** = आग लगाई, **कंदू** = कीचड़, **आगिनी** = आग, **तिणका** = निराभिमान भक्त, **अप्रबल** = बलवान, **मच्छ** = जीव, **मच्छी** = मछली, **गुरु** = भगवान।

प्रसंग–प्रस्तुत साखियाँ **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** द्वारा सम्पादित ग्रंथ **'कबीर'** से अवतरित हैं। इनके रचयिता क्रांतिकारी कवि **कबीरदास** हैं। इन साखियों में कवि ने उलटबासियों का प्रयोग किया है और मानव को ईश्वर की ओर ध्यान लगाने की प्रेरणा दी है।

व्याख्या–कबीरदास जी कहते हैं कि इस संसार रूपी सागर में ईश्वर के विरह से उत्पन्न अग्नि में मन का कल्पना रूपी कीचड़ जल गया है। भाव यह है कि साधक के मन के मनोगत विकार समाप्त हो गए हैं। उनका कुछ भी शेष नहीं बचा। परन्तु आज तक के उत्तर के ज्ञानमार्गी तथा दक्षिण के वैष्णवमार्गी आचार्य इस संसार, मन, जीव तथा आत्मा का चिन्तन करते रहे हैं, परन्तु वे इस मर्म को समझ नहीं पाए।

कबीरदास जी पुनः कहते हैं कि ईश्वर रूपी गुरु ने जीव रूपी चेले को अपनी विरह रूपी अग्नि से जला दिया है। परन्तु जो अहंकारहीन ईश्वर के सच्चे भक्त थे, वे ईश्वर के गले लगकर बच गए हैं। भाव यह है कि अहंकार हीन भक्त कभी भी ईश्वर से दूर नहीं होता।

कबीरदास अगली उलटबासी में कहते हैं कि अहेरी रूपी गुरु ने अब अपने शरीर रूपी वन में ईश्वर की विरहाग्नि को (जंगल की आग) भड़का दिया है जिससे उसका मन रूपी हिरण बार-बार रोता है और पुकारता है। वह कहता है कि मैंने अपने रूपी वन में अब तक क्रीड़ा की थी, वही अब जल रहा है। भाव यह है कि साधक अब अपने सांसारिक सुखों को त्याग कर ईश्वर की भक्ति में लीन हो गया है।

कबीरदास जी पुनः कहते हैं कि इस शरीर रूपी पानी में ईश्वर की विरह रूपी आग प्रज्वलित हो गई है और अब उसने बड़ा प्रबल अर्थात् भयंकर रूप धारण कर लिया है अर्थात् भक्त विरहाग्नि में जलने लगा है। इस प्रबल अग्नि में ही सद्वृत्तियों की जो नदी प्रवाहित हो रही थी, वह अभी तक शेष बची है। परन्तु उसमें रहने वाली विकार रूपी मछलियाँ जल को छोड़कर चली गई हैं।

अन्तिम उलटबासी में कबीरदास जी कहते हैं कि इस संसार रूपी सागर में ज्ञान रूपी आग लग गई है। फलस्वरूप विषय वासना रूपी नदियाँ जल कर कोयले के समान शुष्क हो गई हैं। कबीरदास जी कहते हैं कि ईश्वर के सच्चे भक्त रूपी मछलियाँ इस अग्नि को देखकर साधना के बल पर ब्रह्माण्ड रूपी वृक्ष पर चढ़ गई हैं।

कबीरदास जी स्वयं से कहते हैं कि तुम इस स्थिति को देखकर जाग जाओ और साधना को प्राप्त करो।

विशेष–1. यहाँ कवि ने उलटवासियों के माध्यम से ईश्वर की साधना, ध्यान आदि की ओर साधक का ...

2. यहाँ पुनरुक्ति प्रकाश तथा अन्योक्ति अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

3. अभिधा शब्द-शक्ति के कारण भावाभिव्यक्ति सहज बन पड़ी है।

4. सरल, सहज एवं भावपूर्ण सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।

5. प्रसाद गुण का प्रयोग है तथा शांत रस का परिपाक है।

6. दोहा छंद का प्रयोग है।

3

चंद-सूर दोई खंभवा, बंकनालि की डोरि।
झूल पंच पियारियाँ तहँ झूलै पिय मोर।
द्वादस गम के अंतरा, तहँ अमृत को ग्रास।
जिनि यहु अमृत चाषिया, सो ठाकुर हम दास।
सहज सुनि कौ नैहरौ, गगन-मंडल सिरि मौर।
दोऊ कुल हम आगरी, जौ हम झूलै हिंडौल।
अरध-ऊरध की गंगा जमुना, मूल कवल को घाट।
षट चक्र की गागरी, त्रिवेणी-संगम बाट।
नाद-बिंद की नाव री, राम नाम कनिहार
कहै कबीर गुण गाइले, गुरु गंमि उरारौ पार।

शब्दार्थ – पंच पियारियाँ = पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, **सूर** = सूर्य, **द्वादस गम** = बारह अंतराल, **बंकनालि** = कुंडलिनी, **गुरु गंमि** = गुरु के बताए मार्ग से, **नाद-बिंद** = नाद और बिन्दु, **कनिहार** = कर्णधार, पतवार पकड़ने वाले, **मूल कवल** = अग्नि चक्र, **अमृत चाषिया** = अमृत चखा, निज रूप को समझ सका, **नैहरौ** = पीहर, **गंगा जमुना** = इड़ा, पिंगला।

प्रसंग–प्रस्तुत साखियाँ **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** द्वारा सम्पादित ग्रंथ **'कबीर'** से अवतरित हैं। इनके रचयिता क्रांतिकारी कवि **कबीरदास** हैं। यहाँ कवि ने हठ योग तथा नाथपंथ की साधना पर प्रकाश डालते हुए इड़ा, पिंगला आदि की चर्चा की है। कबीरदास जी कहते हैं कि–

व्याख्या–मेरे शरीर में चंद्रमा अर्थात् इड़ा और सूर्य अर्थात् पिंगला नामक दो खंभे हैं जो कुंडलिनी रूपी डोरी से बंधे हैं। इस डोरी पर पाँच ज्ञानेन्द्रियों का झूला पड़ा हुआ है जिस पर मेरा परम तत्त्व रूपी प्रियतम हमेशा झूलता रहता है।

कवि पुनः कहता है कि पाँच कामेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि; इन बारह अंतराल के बाहर प्रभु के प्रति प्रेम रूपी अमृत का ग्रास है। जिस साधक ने इस अमृत को चख लिया है वही हमारे स्वामी, ठाकुर अर्थात् गुरु हैं और हम उसके दास हैं। भाव यह है कि जिस साधक ने अमृत प्राप्त कर लिया, उसी को कवि अपना गुरु मानता है।

कबीरदास जी कहते हैं कि सहज शून्य मेरा पीहर है और मेरे सिर पर गगन मंडल का मुकुट है। भाव यह है कि गमन मंडल ही मेरा ससुराल है। मैं तो दोनों कुलों की आगरी हूँ इसलिए मैं दोनों झूलों पर झूलती हूँ। कहने का भाव यह है कि सहज ध्यान और समाधि के द्वारा ही साधक ईश्वर की भक्ति में लीन हो सकताहै।

कबीरदास जी पुनः कहते हैं कि इड़ा तथा पिंगला ही गंगा और यमुना हैं। अग्नि चक्र रूपी घाट है और छहों चक्र रूपी घड़ा है। ब्रह्मरंध्र ही त्रिवेणी है। यहाँ कवि ने मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धाख्या, आज्ञा आदि छः चक्रों की चर्चा की है। भाव यह है कि कवि साधक को यह प्रेरणा देता है कि वह इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना के त्रिवेणी संगम में स्नान करे और आनन्द को प्राप्त करे।

अंत में कबीरदास जी कहते हैं कि इच्छा रूपी नाद और क्रिया रूपी बिन्दु की नाव है जिस पर राम नाम के स्मरण रूपी कर्णधार की नाव की पतवार को पकड़ने वाला सवार है। कवि कहता है कि अब गुरु द्वारा बताए गए मार्ग से ही इस नाव के द्वारा उस पार अर्थात् परम तत्त्व के पास पहुँचा जा सकता है परंतु इसके लिए प्रभु का ज्ञान परम आवश्यक है।

विशेष–1. यहाँ कवि ने साधना तथा ज्ञान की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए आडम्बर-प्राप्ति पर बल दिया है।

2. पूरे पद में अनुप्रास तथा रूपक अलंकारों का सुंदर एवं स्वाभाविक प्रयोग है।

3. लाक्षणिक तथा प्रतीकात्मक शब्दावली के प्रयोग के कारण भावाभिव्यक्ति स्पष्ट हो जाती है।

4. सभी साखियों में उस योग साधना की शब्दावली का ही प्रयोग हुआ है।

5. प्रसाद गुण दोहा छंद का प्रयोग हुआ है।

6. सरल, सहज एवं भावपूर्ण सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।

4 **रेख-रूप जेहि है नहीं, अधर धरो नहिं देह।**
गगन-मँडल के मध्ये, रहता पुरुष विदेह।
साँई मेरा एक तू और न दूजा कोई।
जो साहब दूजा कहै, दूजा कुल को होइ।
सगुण की सेवा करौ, निर्गुण का करु ज्ञान।
निर्गुण के परे, तहै हमारा ध्यान।

शब्दार्थ–साँई = ईश्वर, **दूजा** = दूसरा, **सगुण** = सगुण, **रेख-रूप** = रूप-रेखा, **विदेह** = देह रहित।

प्रसंग–प्रस्तुत साखियाँ **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** द्वारा सम्पादित ग्रंथ **'कबीर'** से अवतरित हैं। इनके रचयिता क्रांतिकारी कवि **कबीरदास** हैं। इन साखियों में कवि ने बाह्यकार रूप-रेखा आदि की चर्चा की है तथा निर्गुण भक्ति पर बल दिया है।

व्याख्या – कबीरदास जी कहते हैं कि जिसके शरीर की कोई रूप-रेखा नहीं है और जो किसी शरीर को धारण नहीं करता, जो शून्य चक्र गगन मंडल में बिना शरीर के निवास करता है, वही पुरुष परमात्मा है। भाव यह है कि परमात्मा का कोई रूप, रंग, आकार नहीं है और न ही कोई शरीर है। वह तो हमारे अंदर ही निवास करता है। कबीरदास जी पुनः कहते हैं– हे प्रभु! मेरे तो आप ही स्वामी हैं, कोई अन्य नहीं है। भाव यह है कि मेरा ईश्वर मेरे अंदर ही विद्यमान है और मैं उस ईश्वर से अलग नहीं हूँ। परंतु जो व्यक्ति परमात्मा को स्वयं से अलग मानता है, जो उसके निर्गुण रूप को स्वीकार नहीं करता वह अन्य कुल का व्यक्ति है अर्थात् वह नीच व्यक्ति है। अंत में कवि सगुण तथा निर्गुण भक्ति के भेद पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि कुछ लोग यह कहते हैं कि सगुण ईश्वर की सेवा करनी चाहिए। अन्य लोग कहते हैं कि निर्गण ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। लेकिन कवि का विचार है कि मेरा ईश्वर तो निर्गुण तथा सगुण से परे शून्य चक्र में विद्यमान है। मैं उसी में अपना ध्यान लगाता हूँ और परब्रह्म की भक्ति करता हूँ।

विशेष– 1. यहाँ कबीरदास जी ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि ईश्वर साधक के अन्दर ही निवास करता है। मनुष्य ईश्वर का अंश है, वह उससे अलग नहीं है।

2. अभिधा शब्द-शक्ति के प्रयोग के कारण भावाभिव्यक्ति सहज बन पड़ी है।

3. सहज, सरल तथा भावपूर्ण सधुक्कड़ी भाषा का सफल प्रयोग हुआ है तथा शब्द-चयन सर्वथा उचित तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।

4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।

5. शांत रस का परिपाक है।

6. दोहा छंद का प्रयोग हुआ है।

5 **कर पकरैं अंगुरी गिनैं, मन धावै चहुँ ओर**
जाहि फिरायाँ वो मिलै, सो भया काठ की ठौर।
केसाँ कहा बिगड़िया, जो मुँडै सौ बार।
मन कौं काहे न मूँडिए, जामैं विषै-विकार।
बैस्नो भया तो क्या भया, बूझा नहीं विवेक।
छापा-तिलक बनाइ करि, दगध्या लोक अनेक। **(Imp.)**

शब्दार्थ–दगध्या = जला दिया, **केसाँ** = केश-राशि, सिर के बाल, **कर** = हाथ, **विषै-विकार** = विषय-विकार, **धावै** = दौड़ता है, **बूझा** = समझा, **जाहि** = जिसे, **कहा** = क्या।

प्रसंग–प्रस्तुत साखियाँ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित ग्रंथ 'कबीर' से अवतरित हैं। इनके रचयिता क्रांतिकारी कवि कबीरदास हैं। यहाँ कवि ने बाह्य कर्मकांडों तथा धार्मिक पाखण्डों का विरोध किया है।

व्याख्या–कबीरदास जी भक्ति का पाखण्ड करने वाले साधक की ताड़ना करते हुए कहते हैं कि हे मानव! तूने अपने हाथ में माला पकड़ी है और उनके मनकों को गिनता रहता है, परंतु तुम्हारा मन चारों दिशाओं में दौड़ता रहता है। भाव यह है कि मानव का ध्यान तो माला के मनकों को गिनने में लगा रहता है लेकिन उसका मन चारों ओर भटकता रहता है। जो व्यक्ति इस प्रकार की माला फेरता है, उसे काल का ही स्थान मिलता है। भाव यह है कि उसे ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती।

कबीरदास जी पाखण्डी साधकों को डाँटते हुए कहते हैं कि सिर के बालों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो तुम उन्हें बार बार मूंडते रहते हो। तुम अपने मन को क्यों नहीं मूंडते जिसमें विषय और विकार हैं। भाव यह है कि सिर के बाल कटवाने से परमात्मा नहीं मिलता। मन को नियंत्रण करके ईश्वर-भक्ति से ही परमात्मा मिलता है।

अंत में कबीरदास जी वैष्णव संप्रदाय के अनुयायियों को कहते हैं कि वैष्णव होने से क्या होता है यदि मनुष्य ने कभी त्रिपक का प्रयोग न किया। लोग राम-नाम छापे की चादर ओढ़ लेते हैं और माथे पर तिलक लगा लेते हैं। इस प्रकार के लोग सबको धोखा देते हैं। छापे और तिलक का भक्ति में कोई स्थान नहीं है।

विशेष–1. यहाँ कवि ने धार्मिक पाखण्डों पर करारा व्यंग्य किया है और वैष्णव संप्रदाय की भी कटु आलोचना की है।

2. अनुप्रास तथा वक्रोक्ति अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग है।

3. सहज, सरल तथा एवं भावपूर्ण सधुक्कड़ी बोली का प्रयोग है तथा शब्द-चयन सर्वथा उचित तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।

4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।

5. लक्षणा शब्द शक्ति का प्रयोग है।

6. दोहा छंद का सफल प्रयोग है।

6 **पूजा-सेवा-नेमव्रत गुड़ियन का सा खेल।**
जब लग पिउ परसै नहीं, तब लग संसय मेल।

शब्दार्थ–पिउ = ईश्वर, प्रियतम, परसै = स्पर्श करना, संसय = संदेह।

प्रसंग–प्रस्तुत साखी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित ग्रंथ 'कबीर' से अवतरित है। इसके रचयिता भक्त कवि कबीरदास हैं। यहाँ कवि ने समाज की धार्मिक विसंगतियों तथा पाखण्डों का विरोध करते हुए ईश्वर की प्राप्ति के मार्ग पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या–पूजा, सेवा, नियम, व्रत आदि सब गुड़ियों के खेल के समान हैं। इससे परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती क्योंकि पूजा, सेवा आदि सारे बाहरी विधान हैं। परमात्मा न तो पूजा से मिलता है, न सेवा से, न विधि-विधान से और न ही व्रत रखने से। जिस प्रकार जब तक प्रिय प्रिया को गले लगाकर स्पर्श नहीं करता, तब तक उसे सच्चा सुख नहीं मिलता। उसी प्रकार जब तक आत्मा-परमात्मा का मिलन नहीं हो जाता, तब तक प्रभु मिलन का संदेह बना रहता है। प्रभु की प्राप्ति तब होती है जब आत्मा परमात्मा को आत्मसात् कर लेती है।

विशेष–1. यहाँ कवि ने पूजा, व्रत आदि धार्मिक पाखण्डों को व्यर्थ बताया है।

2. अभिधा शब्द-शक्ति के प्रयोग के कारण भावाभिव्यक्ति सहज बन पड़ी है।

3. 'गुड़ियन का-सा खेल' में उपमा अलंकार का सफल प्रयोग है।

4. भाषा सहज एवं सरल सधुक्कड़ी बोली है तथा शब्द-चयन सर्वथा उचित तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।

5. प्रसाद गुण का प्रयोग है।

6. दोहा छंद का प्रयोग है।

7

जाति न पूछो साधू की पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार की पड़ा रहन दो म्यान।
हस्ती चढ़िए ज्ञान की, सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप संसार है, भूँकन दे झक मारि।

शब्दार्थ–हस्ती = हाथी, मन, सहज = साधना मार्ग, दुलीचा = गलीचा, स्वान = काम, क्रोध आदि।

प्रसंग–प्रस्तुत साखियाँ **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** द्वारा सम्पादित ग्रंथ **'कबीर'** से ली गई हैं। इनके रचयिता संत कवि कबीरदास है। यहाँ कबीरदास पाखण्ड तथा अनाचार में भटके लोगों को भक्ति का मार्ग समझाते हुए कहते हैं कि–

व्याख्या–सच्चे साधु की श्रेष्ठता की परख तो उसके ज्ञान से की जाती है। यदि कोई व्यक्ति उच्च जाति में जन्म लेकर परमात्मा के सच्चे स्वरूप नहीं जानता तो उसे सच्चा साधु नहीं कह सकते। फिर जाति-पाँति के बंधन तो समाज ने बनाए हैं। उच्च जाति में जन्म लेकर व्यक्ति बड़ा नहीं बन जाता। जिस प्रकार सच्चा शूरवीर तलवार का ही मूल्यांकन करता है, उसकी म्यान का नहीं क्योंकि म्यान बाहरी आवरण है। सच्चे साधु की परख आत्मा की श्रेष्ठता से होती है।

कबीरदास जी पुनः कहते हैं कि सच्चे साधक को ज्ञान रूपी हाथी की सवारी चाहिए और उस पर सहज मार्ग भक्ति का गलीचा डालना चाहिए। भाव यह है कि सहज मार्ग से ही ईश्वर की भक्ति की जा सकती है। जिस प्रकार हाथी की सवारी आगे बढ़ती है और कुत्ते पीछे भौंकते हैं, उसी प्रकार जो साधक ज्ञान और भक्ति द्वारा परम तत्त्व की ओर बढ़ता है, संसार के मोह-माया रूपी कुत्ते उसका कुछ नहीं कर सकते। लोग आलोचना करते रहते हैं परंतु उनकी परवाह नहीं करनी चाहिए।

विशेष–1. यहाँ कवि ने ज्ञान तत्त्व तथा सहज साधना के महत्त्व पर प्रकाश डाला है।

2. कवि ने जाति-पाँति का खंडन किया है।

3. ज्ञान का हाथी तथा सहज का गलीचा में रूपक अलंकार है।

4. सहज तथा सरल सधुक्कड़ी बोली का प्रयोग है एवं शब्द-चयन सर्वथा उचित तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।

5. प्रसाद गुण का प्रयोग है।

6. दोहा छंद है।

7. 'झक मारि' मुहावरा प्रयुक्त हुआ है।

8

नैना अंतरि आव तूं, ज्यों हो नैन झपकऊँ
ना हौं देखौं और को, ना तुझ देखन देऊँ।
कबीर रेख सिंदूर की, काजल दिया न जाइ।
नैनू रमइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाई।
मन परतीति न प्रेम रस, ना इस तन में ढंग।
क्या जाणों उस पीव सूँ कैसे रहसी रंग।

[Most Imp.]

शब्दार्थ–परतीति = प्रतीति, विश्वास, रंग = प्रेम व्यवहार, अंतरि = हृदय से, झपकऊँ = पलकों को झपका लेना।

प्रसंग–प्रस्तुत साखियाँ **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** द्वारा सम्पादित ग्रंथ **'कबीर'** से अवतरित हैं। इनके रचयिता संत कवि कबीरदास है। यहाँ कबीरदास ने आत्मा-परमात्मा के प्रेम भाव और विरह भाव का वर्णन किया है तथा साधनात्मक, रहस्यवाद तथा भावनात्मक का आश्रय लिया है।

व्याख्या–कबीरदास जी कहते हैं कि हे प्रभु! तुम मेरी आँखों में समा जाओ। जैसे ही तुम मेरी आँखों में प्रवेश करके मेरे हृदय में आओगे तो मैं अपनी पलकों को झपका करके बंद कर लूँगा। इस तरह तुम्हारा रूप मेरे अंदर समा जाएगा। न तो मैं कहीं देखूँगा और न तुम्हें देखने दूँगा। इस प्रकार मुझे ईश्वर की प्राप्ति हो जाएगी।

कबीरदास जी पुनः कहते हैं कि मांग में सिंदूर भरा जाता है, उसमें काजल नहीं लगाया जाता। भाव यह है कि जहाँ प्रभु का निवास है, वहाँ विषय-वासना के लिए कोई स्थान नहीं है। जब मेरी आँखों में प्रभु राम ही रम गए हैं, उनका निवास हो गया है तो वहाँ किसी अन्य देवी-देवता का प्रवेश कैसे हो सकता है। भाव यह है कि जिन आँखों में प्रभु समाया है, उन आँखों में कोई दूसरा नहीं समा सकता।

प्रसंग–प्रस्तुत साखियाँ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित ग्रंथ 'कबीर' से अवतरित हैं। इनके रचयिता संत कबीरदास हैं। यहाँ आत्मा रूपी विरहिणी की विरह-व्यथा का वर्णन करते हुए कबीरदास जी कहते हैं कि–

व्याख्या–हे प्रभु! तुम्हारी प्रतीक्षा करते-करते मेरे आँखों में काली छाया पड़ गई है और तुम्हारा रास्ता देख-देख कर मैं गई हूँ। हे प्रभु! तुम्हारा नाम पुकारते-पुकारते मेरे जीभ में छाले पड़ गए हैं। यह विरह-व्यथा बड़ी कष्टदायक है। मुझे अभी आपके दर्शन नहीं हुए।

कबीरदास जी पुनः कहते हैं कि विरहिणी रूपी जीवात्मा ने पूर्ण वैराग्य धारण कर लिया है। आत्मा ने विरह रूपी कमण्डल अपने हाथ में ले लिया है और उसकी आँखें वैरागी की तरह प्रियतम के दर्शन के लिए भटकती रहती हैं। वे तो मधुकरी मधु की भिक्षा माँगती हैं और दिन-रात परमात्मा के ध्यान में मगन रहती हैं।

अंत में कवि कहता है कि परमात्मा के वियोग में मेरे शरीर की सभी रगें (तंतु) तार के समान हैं और शरीर रबाब (एक प्रकार के वाद्य यंत्र) विरह उसे प्रतिदिन बजाता रहता है। शरीर रूपी बाजे से निकलने वाले अनहद नाद को कोई अन्य नहीं सुन सकता। इसे परमात्मा सुन सकता है अथवा साधक का मन सुन सकता है।

विशेष–1. यहाँ कवि ने विभिन्न रूपकों के माध्यम से अपनी विरह अनुभूति को व्यक्त किया है।

2. अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश तथा सांगरूपक अलंकारों का सहज एवं स्वाभाविक प्रयोग है।

3. सहज, सरल तथा भावपूर्ण सधुक्कड़ी बोली का प्रयोग हुआ है। शब्द-चयन सर्वथा उचित तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।

4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।

5. शांत रस का सुंदर परिपाक है।

6. प्रतीकात्मक तथा दोहा छंद का प्रयोग है।

11 **पैछा पछी के कारनै सब लग रहा भुलान।**
निरपछ है के हरि भजे, सोई संत सुजान।
अमृत केरी मोटरी सिर से धरी उतार।
जाहिं कहौं मैं एक है, मोहि कहैं दो-चार।

शब्दार्थ–**पैछा-पछी** = पक्ष-विपक्ष, **निरपछ** = निष्पक्ष, **मोटरी** = पोटली।

प्रसंग–प्रस्तुत साखियाँ **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** द्वारा सम्पादित ग्रंथ **'कबीर'** से अवतरित हैं। इनके रचयिता **कबीरदास** भक्ति रस के प्रतिनिधि संत कवि हैं। यहाँ कवि ने भक्ति के विभिन्न विधि-विधानों की चर्चा करते हुए ईश्वर के स्वरूप पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या–कबीरदास जी कहते हैं कि ईश्वर के स्वरूप के बारे में भक्ति के अनेक विधि-विधान हैं। सारा संसार भक्ति के पक्ष-विपक्ष को लेकर विवादग्रस्त है अथवा भटका हुआ है। पक्ष-विपक्ष का समर्थन करने वाले लोग ईश्वर को नहीं जानते परंतु जो साधक निष्पक्ष होकर और वाद-विवाद को त्याग कर भगवान की भक्ति करता है, वही बुद्धिमान संत है। भाव यह है कि ईश्वर को तर्क-वितर्क द्वारा नहीं, बल्कि एकनिष्ठ भाव की भक्ति द्वारा पाया जा सकता है।

कबीरदास जी पुनः कहते हैं कि मुक्ति की इच्छा अमृत की पोटली के समान है। जो व्यक्ति अमृत की पोटली को सिर पर धारण करता है, वह भगवान को प्राप्त नहीं कर सकता। परंतु जो अमृत की इस गठरी को उतार देता है, वह मुक्ति की कामना से मुक्त होकर ईश्वर को प्राप्त कर लेता है। परंतु मैं जिस एक ब्रह्म की भक्ति करता हूँ लोग उसे दो-चार नामों से पुकारते हैं और वे द्वैत-अद्वैत की बातें करते हैं। कुछ साधक चार प्रकार की मुक्ति माँगते हैं और चार पुरुषार्थ तथा चतुर्वर्ग प्राप्ति की चर्चा करते हैं परंतु यह सब व्यर्थ है।

विशेष–1. यहाँ कवि ने वाद-विवाद तथा पक्ष-विपक्ष से निरपेक्ष साधक को ही श्रेष्ठ माना है।

2. लाक्षणिक पदावली के प्रयोग के कारण भावाभिव्यक्ति सहज और सरल बन पड़ी है।

3. सहज, सरल तथा भावपूर्ण सधुक्कड़ी बोली का प्रयोग है।

4. अनुप्रास तथा रूपक अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग है।

5. शब्द-चयन सर्वथा उचित तथा भावाभिव्यक्ति के अनुकूल है।

6. प्रसाद गुण का प्रयोग है।

7. दोहा छंद का प्रयोग है।

12

कबीर भाटी कलाल की, बहुतक बैठे आई।
सिर सौंपे सोई पिवै, नहीं तो पिया न जाई।
हरि रस पीया जाणिये, जे कबहुँ न जाय खुमार।
मैंमता घूमत रहै, नाही तन की सार।
सबै रसायण मैं किया, हरिसा और न कोइ।
तिल इक घट मैं संचरै तो सब कंचन होइ।

शब्दार्थ–घट = प्रतिकार्य शरीर, सार = सुध, मैंमता = मस्त, मदमाता, खुमार = नशा, कलाल = शराब बनाने और बेचने वाला, भाटी = भट्ठी।

प्रसंग–प्रस्तुत साखियाँ **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** द्वारा सम्पादित ग्रंथ **'कबीर'** से अवतरित हैं। इनके रचयिता **कबीरदास** भक्तिकाल के प्रतिनिधि संत कवि हैं तथा उन्होंने निर्गुण भक्ति पर बल दिया। यहाँ कवि प्रेम-भक्ति पर बल देता हुआ कहता है कि–

व्याख्या–सद्गुरु रूपी शराब की भट्ठी के समक्ष अनेक लोग आकर बैठ गये हैं अर्थात् अनेक शिष्यों ने गुरु की शरण प्राप्त कर ली है परन्तु जो शिष्य अपना सिर सौंप देता है अर्थात् अहंकार को त्याग देता है, वही इस प्रेम रस का पान कर सकता है। अन्यथा यह प्रेम रस नहीं दिया जा सकता। भाव यह है कि सद्गुरु की कृपा से ही साधक को भगवत् प्रेम की प्राप्ति होती है।

कबीरदास पुनः कहते हैं कि जो साधक भगवत् रस का पान कर लेता है, उस पर एक ऐसा नशा छा जाता है जो कभी नहीं उतरता। वह तो एक मस्त हाथी के समान घूमता है। उसको तो अपने शरीर की भी खबर नहीं होती अर्थात् भक्ति रस के कारण वह वासनाओं से मुक्त हो जाता है।

कबीरदास जी अन्त में कहते हैं कि मैंने कायाकल्प के लिए सभी साधनों का प्रयोग किया है। परन्तु भगवत् प्रेम जैसी औषधि इस संसार में कहीं उपलब्ध नहीं होती। भगवत् प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ औषधि है। इस प्रेमरस रूपी औषधि का छोटा-सा अंश शरीर में संचरित हो जाए तो सारा शरीर सोना बन जाता है। भाव यह है कि भगवत् रस का पान करने से तन और मन दोनों ही पावन हो जाते हैं। तन और मन दोनों ही वासनाओं से मुक्त हो जाते हैं।

विशेष–1. यहाँ कवि ने भगवत् रस के माहात्म्य पर प्रकाश डाला है और उसे सर्वश्रेष्ठ औषधि बतलाया है।
2. अनुप्रास तथा रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का सुन्दर एवं स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।
3. सहज, सरल तथा भावपूर्ण सधुक्कड़ी बोली का प्रयोग है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
5. दोहा छन्द का सफल प्रयोग हुआ है।
6. प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग है।

13

पीछे लागा जाइ था, लोक बेद के साथि।
आगे थैं सतगुरु मिल्या, दीपक दीया हाथि।
दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहुणा, बहुरि न आवौं हट्ट।
कबीर गुरु गरवा मिल्या, रलि गया आटे लूण।
जाति-पाँति कुल सब मिटै, नाँव धरोगे कौंण।
सतगुरु हमसूं रीझ करि एक कह्या परसंग।
बरस्या बादल प्रेम का, भींजि गया सब अंग। **[Most Imp.]**

शब्दार्थ–अघट्ट = कभी न घटने वाली, अक्षय, आत्मा; **बिसाहुणा** = खरीद, बिक्री, सांसारिक व्यापार; **लूण** = नमक; **नाँव** = नाम; **रलि गया** = एक हो गया; **परसंग** = प्रस्ताव, रहस्य; **भींजि** = प्रभावित।

प्रसंग–प्रस्तुत साखियाँ **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** द्वारा सम्पादित ग्रंथ **'कबीर'** से अवतरित हैं। इनके रचयिता **कबीरदास** भक्तिकाल के प्रतिनिधि संत कवि हैं तथा उन्होंने निर्गुण भक्ति पर बल दिया। यहाँ कवि ने गुरु की अनंत महिमा का प्रतिपादन किया है। कवि के अनुसार सद्गुरु ही (साधक) मनुष्य को परमात्मा से मिलाता है और वही सच्चा मार्गदर्शक है।

आलोचनात्मक प्रश्न

1. कबीर की सामाजिक विचारधारा

कबीर साहित्य के आधार पर कबीर की सामाजिक विचारधारा पर प्रकाश डालिए।

अथवा (Most Imp.)

कबीर की सामाजिक चेतना पर एक विस्तृत लेख लिखिए।

अथवा

"कबीर एक सच्चे समाज-सुधारक थे।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर–**कबीर की सामाजिक विचारधारा**–कबीर-कालीन सामाजिक व्यवस्था काफी क्षुब्ध हो चुकी थी। जिन सिद्धांतों तथा ...यों की रचना धर्म और समाज की रक्षा के लिए गई थी, वही अब उनके विनाश के कारण बन गए थे। धर्म की आत्मा उसे छोड़ चली गई थी, परंतु तत्कालीन समाज उस पुरातन व्यवस्था तथा उसकी मान्यताओं को इस प्रकार कलेजे से चिपकाए हुए है जिस तरह बंदरिया अपने मरे हुए बच्चे को छाती से चिपकाए हुए यहाँ-वहाँ कूदती रहती है। समाज अपने ही बनाई हुई ...व्यय के जाल में फँस गया था। जो भगवान निर्बल का बल होता था, वह तन अब धनियों और पाखंडियों के हाथों नाच रहा था। इसके विपरीत जन-साधारण गरीबी, भुखमरी तथा धार्मिक कर्मकांडों का शिकार बना हुआ था। उसे समझ नहीं आता था कि वह क्या करे और किसे अपनी विरह-व्यथा कहे। कबीर ने लोगों के दुखों को स्वयं अनुभव किया। वे उनके दुखों का निदान करने की चिंता में जागते थे, रोते थे परंतु संसार मस्त होकर खाता था, सोता था।

"दुखिया दास कबीर है जागे और रोवे।
सुखिया सब संसार है खाय और सोए।।"

कबीरदास ने अपनी पहली दृष्टि से यह देख लिया कि तत्कालीन व्यवस्था ही खेत को खाने वाली बाड़ है। उसे उखाड़ कर फेंकना नितांत आवश्यक है। इसलिए कबीरदास एक क्रांतिकारी के रूप में समाज के सामने आए और उन्होंने पाखंडियों और धोखेबाजों की पोल खोलकर रख दी। इस संदर्भ में **डॉ. हरिहर त्रिवेदी** तथा **डॉ. मण्डल त्रिवेदी** ने उचित ही लिखा है– **"कबीर एक युगदृष्टा तथा क्रांतिकारी कवि थे। तत्कालीन राजनीतिक वातावरण में नवीन सामाजिक तथा धार्मिक सिद्धांतों के प्रवर्तक कबीर ने परंपरागत मान्यताओं का खण्डन कर दुःस्साहस के साथ समाज में परिवर्तन की धारा को प्रवाहित किया था। कबीर ने मध्यकालीन समाज को क्रांतिकारी चेतना प्रदान कर प्रवाह को परिवर्तित करने का अथक प्रयत्न किया। सामाजिक विषमता को अन्याय समझकर कबीर ने ज्ञान के हाथी पर चढ़कर सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक चेतना जागृत करने का प्रयत्न किया।"**

जहाँ तक कबीर की सामाजिक चेतना का प्रश्न है, इसके बारे में विचार करने से पहले कवि की व्यक्तिगत परिस्थितियों पर भी विचार करना होगा। उनका जन्म एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ। जुलाहा दम्पति नीरू और नीमा ने उन्हें पोल-पोसकर बड़ा किया। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि वे भ्रष्ट हिंदू और भ्रष्ट मुसलमानों की दो जातियों से उत्पन्न हुए थे। भले ही यह घटना असत्य ही हो, परंतु यह निश्चित है कि कबीरदास को तत्कालीन समाज से घृणा, तिरस्कार, अपमान और अवहेलना ही मिली। जिसके फलस्वरूप वे एक विद्रोही कवि बन गए और उन्होंने समाज की रूढ़ियों तथा आडंबरों का विरोध करना आरंभ कर दिया। कबीर की शिराओं में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों जातियों का रक्त प्रवाहित हो रहा था। परंतु वे दोनों जातियों की प्रबलता को अच्छी तरह जानते थे। दोनों जातियों ने उनको ठुकराया था तो कबीर कैसे चुप रह सकते थे। फलस्वरूप कबीर ने हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को जोरदार फटकार लगाई–

"हिन्दु की हिन्दुआई देखी, तुरकन की तुरकाई।
अरे इन दोऊन राह न पाई।"
जो तू तुरुक तुरुकनि जाया।
तो भीतर खतना क्यों नहीं कराया।
जो तू ब्राह्मन ब्राह्मनी जाया।
तो आन बाट से क्यों नहीं आया।"

हम कबीर की सामाजिक विचारधारा अथवा सामाजिक चेतना अथवा उनके समाज-सुधारक रूप का विवेचन निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत कर सकते हैं–

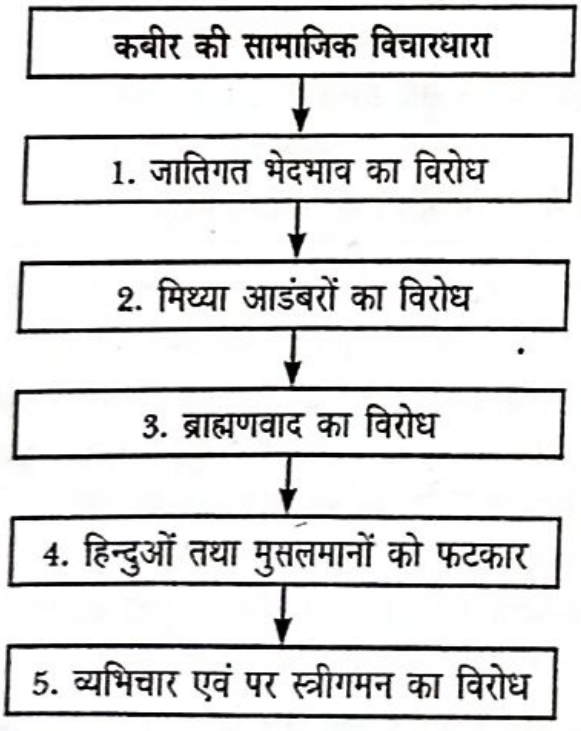

1. जातिगत भेदभाव का विरोध–कबीरदास ने तत्कालीन समाज में प्रचलित जाति-मत भेद-भाव का डटकर विरोध किया। इसीलिए उन्होंने हिन्दुओं तथा मुसलमानों के भेदभाव को अस्वीकार कर दिया। उनका विचार था कि संसार में मानव जाति ही एकमात्र जाति है। सभी मनुष्य बराबर हैं, कोई ऊँचा नहीं, कोई नीचा नहीं। इसलिए उनका झुकाव द्वैत की ओर झुका दिखाई देता है। पंडित हो, चाहे मुल्ला, उसने दोनों को आड़े हाथों लिया। एक स्थल पर वे दोनों को फटकार लगाते हुए कहते हैं–

"अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दु अपनी करे बड़ाई गागर छुवन न देई।
वैस्या के पाइन तर सोवै यह देखो हिंदुआई।
मुसलमान की पीर औलिया मुर्गी मुर्गा खाइ।
खाला केरी बेटी बयाहै घरहि में करै सगाई।।"

कबीरकालीन परिस्थितियाँ काफी प्रतिकूल थीं। वह विधर्मी शासकों का युग था, जिनकी तलवार की लपलपाती जिह्वा हमेशा हिन्दुओं के खून की प्यासी रहती थी। इस्लाम का प्रचार करने वाले क्रूर आक्रमणकारियों को भारतीय संस्कृति आत्मसात् न कर पाई। परिणाम यह हुआ कि तत्कालीन समाज में आचार-विचार, संस्कृति, भाषा, धर्म आदि के आधार पर एक खाई बन गई। विधर्मियों के प्रहारों से बचने के लिए हिन्दू धर्म के ठेकेदारों ने, वाह्यचारों ने कर्मकाण्डी प्रवृत्ति को जन्म दिया जिससे हिन्दू धर्म की रक्षा तो हुई परंतु हिन्दू समाज का निम्न वर्ग उच्च वर्ग से पृथक् होने लगा। ब्राह्मण वर्ग ने प्रत्येक क्षेत्र में अपनी सामंती अवस्था बना ली थी। हिन्दू समाज के धर्म, कर्म और जीवन के प्रत्येक पहलू पर उनका अधिकार था। यही कारण है कि सबसे पहले कबीर ने वाह्यचारों तथा ब्राह्मणवादी प्रवृत्ति को जड़ से उखाड़ने का भगीरथ प्रयत्न किया। इस संदर्भ में **श्री प्रकाश सिंह** ठुल लिखते भी हैं– **"यद्यपि सुधार करना या नेतागिरी की प्रवृत्ति फक्कड़ मस्तमौला संत कबीर में नहीं थी, किन्तु वे समाज के कूड़ा-कर्कट या कुरूप को निकाल फेंकना चाहते थे। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण वे स्वतः सुधारक बन जाते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि सुधारक न बनना चाहते हुए भी राम-दीवाने कबीर को सुधारक का पद प्राप्त हो ही जाता है। वास्तव में वे तो मानव के दुःख से उत्पीड़ित हो उसकी सहायता के लिए चले। जनता के दुख-दर्द और उसकी वेदना से फूटकर ही उनके काव्य की सरस्वती बही थी।"**

2. मिथ्या आडम्बरों का विरोध–कबीरदास आरंभ से ही मिथ्या आडंबरों के विरोधी थे। उन्होंने केवल वही कहा जिसे उनकी आत्मा सत्य की कसौटी पर परख कर उचित समझती थी। वे सत्य को सहज ढंग से कहते थे। परंतु जब उन्होंने समाज में बाह्य आडंबरों, रूढ़ियों तथा जन-परंपराओं को देखा तो उनकी आत्मा विद्रोह कर उठी। उन्होंने इतने तीखे प्रहार किए कि ढोंगियों तथा ढपोल शंखों की धज्जियाँ उड़ गईं। यही कारण है कि कबीर जी की वाणी में बड़ा ही तीखा और अचूक व्यंग्य है। उनका व्यंग्य विशुद्ध बौद्धिकता पर आधारित है। वह तर्क पर आधारित नहीं है। उन्होंने तत्कालीन समाज पर जो व्यंग्य किए हैं, वे समाज की गंदगी तथा क्रूरता को दूर करने के लिए किए हैं। उनकी वाणी को गर्वोक्ति नहीं कहा जा सकता और न ही यह आत्मश्लाघा है बल्कि यह निज के अनुभव पर आधारित है। **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** ने कबीर के व्यंग्यों को सिद्धों और योगियों के व्यंग्य से अलग किया है। वे लिखते भी हैं– **"कबीर के पूर्ववर्ती सिद्ध और योगी लोगों की आक्रमणात्मक उक्तियों में एक प्रकार का हीन भावना की ग्रंथि या 'इन कीरियारिटी कम्प्लेक्स' पायी जाती है। वे मानो लोमड़ी के खट्टे अंगूरों की प्रतिध्वनि है, मानो चिलम न पी सकने वालों के आक्रोश हैं। उनमें तर्क है पर लापरवाही नहीं है, आक्रोश है पर मस्ती नही है, तीव्रता है पर मृदुता नहीं है। कबीरदास के आक्रमणों में भी एक रस है, एक जीवन है, क्योंकि वे आक्रान्त के वैभव से परिचित नहीं थे और अपने को समस्त आक्रमण-योग्य दुर्गणों से मुक्त समझते थे। इस तरह जहाँ उन्हें लापरवाही का कवच मिला था, वहाँ अखण्ड आत्मविश्वास की कृपाण भी।"**

समाज के विभिन्न क्षेत्रों में फैलने वाले मिथ्याचारों की कटु आलोचना करते समय उन्होंने न तो हिन्दुओं को बख्शा और न ही मुसलमानों को। कबीर जी ने अनुभव किया कि तत्कालीन समाज पूर्णतः कुपथगामी हो रहा है। कोई किसी की सुनता नहीं, सभी मिथ्याचारों के पीछे भाग रहे हैं। किसी के आचरण में शुद्धि नहीं है। इसलिए वे कहते भी हैं–

"एक न भूला दोइ न भूला, भूला सब संसारा।
एक न भूला दास कबीरा, जाके राम अधारा।"

कबीर के युग में ब्राह्मणों को ... निम्न है, परंतु ...
आधार पर वे अपने-आपको श्रेष्ठतम मानते थे। परंतु कबीर का कहना था कि पंचतत्त्व युक्त मानव-शरीर एक ही है और सबको उत्पन्न करने वाला ब्रह्मा रूपी कुम्भकार भी एक ही है। फिर यह भेदभाव कैसा। उन्होंने ब्राह्मणों को ... लगाते हुए कहा–

"जो तू बाम्हन बाम्हनी जाया।
आन बाट है क्यों नहीं आया।।"

3. ब्राह्मणवाद का विरोध–तत्कालीन निम्न वर्ग कट्टर ब्राह्मणों के अत्याचारों से पीस रहा था। कोई भी ... करता था, जिसके फलस्वरूप निम्न वर्ग दीन-हीन दशा को व्यतीत करने के लिए मजबूर था। कबीर जी ने इस वर्ग को ... प्रपंच से मुक्त किया। एक स्थान पर वे पंडितों से पूछते भी हैं कि वह किस दृष्टि से शूद्रों से श्रेष्ठ हैं–

"काहे को कीजे पांडे छोति विचारा।
छोतहि ते उपजा संसारा।
हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध।
तुम्ह कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद।
छोति छोति करत तुम्ह ही जाए।
तौ गर्भवास काहे को आए।"

वस्तुतः कबीरदास ने ब्राह्मणों की सामंती प्रवृत्ति की जड़ों पर प्रहार किया और उन्हें यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि सभी मानव उस परमात्मा की संतान हैं। इनमें कोई भी छोटा या बड़ा नहीं, श्रेष्ठ या नीच नहीं बल्कि सभी बराबर हैं। यही कारण है कि कबीर ने ढोंग और आडंबर का सदैव ही विरोध किया। उन्होंने उन साधुओं को भी नहीं छोड़ा जो माला तिलक लगाते, दाढ़ी-मूँछ मुँड़वाते हैं और सिर के बाल कटवाकर लोगों को धोखा देते हैं। इस प्रकार के कर्मकांडों से भक्ति को कुछ भी लेना-देना नहीं है अर्थात् बाह्य दर्शन व्यर्थ हैं। साधुओं को फटकारते हुए वे कहते हैं–

"माला तिलक लगाई के भक्ति न आई हाथ।
दाढ़ी मूछ मुडाई कै, चले दुनी के साथ।।
दाढ़ी मूछ मुडाई के, हूआ घोटम घोट।
मन को क्यों नहीं मूडिये, जा के भरिया खोट।।
केसन कहा बिगारिया, जो मूडी सौ बार।
मन को क्यों नहीं मूडिये, जा में विषै विकार।।"

कबीरदास ने जहाँ एक ओर ब्राह्मणों और शूद्रों को समीप लाने का प्रयास किया, वहीं हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच वैमनस्य और भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया। उस समय दोनों धर्मावलंबी एक-दूसरे की गल्तियाँ निकालते रहते थे और सांप्रदायिकता को हवा देते रहते थे। कबीर ने अपनी वाणी में इन दोनों की कुप्रवृत्तियों की ओर इशारा किया और किसी धर्म और जाति का सहारा नहीं लिया। एक स्थल पर वे निस्संकोच होकर हिन्दुओं और मुसलमानों को उदाहरण देते हुए कहते हैं–

"ना जाने तेरा साहिब कैसा है।
मसजिद भीतर मुल्ला पुकारै, क्या साहिब तेरा बहिरा है।
चिउंटी के परा नेवर बाडो सो भी साहब सुनता है।
पंडित होय के आसन मारे, लम्बी माला जपता है।
अंदर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहब लखता है।"

4. हिन्दुओं तथा मुसलमानों को फटकार–दोनों संप्रदायों के दोषों को प्रकट करते हुए कबीर ने पूर्णतः निष्पक्षता से काम लिया। उन्होंने हिन्दुओं की मूर्ति पूजा की खिल्ली उड़ाई और मुसलमानों के रोज़ा, नमाज़ आदि की भी कटु आलोचना की। हिन्दुओं को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं–

"हम भी पाहन पूजते, होत बन के रोजा।
सतगुरु की किरपा भई, डारया सिर थै बोझा।
पायर पूजै हरि मिलै तो मैं पूजूं पहाड़।
× × × × × ×
कंकड़ पायर जोड़ के, मसजिद लई बनाय।
ता चढ़ मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।।"

इसी प्रकार से वे मृतक भोज, पिंड दान और श्राद्ध आदि को भी ढोंग मानते थे। उन्होंने शाक्तों की अपेक्षा वैष्णवों की आलोचना की। इसी प्रकार से कबीरदास ने वर्ण-व्यवस्था, छुआ-छूत, ऊँच-नीच और कुरीतियों की भी आलोचना की है। वे जप, माला, छाप, तिलक, चंदन आदि कर्मकांडों को भी व्यर्थ मानते थे। उन्होंने मुसलमानों के बाह्य आडंबरों, काजी-शेख, मुल्ला, दरवेश और हिंसापूर्ण कार्यों आदि की भी निंदा की। वे हज यात्रा, बन्दगी और पाँच वक्त की नमाज़ को भी व्यर्थ मानते थे। जो लोग रोजा का व्रत रखकर गाय का वध करते हैं, वे कभी खुदा की नेक बंदगी नहीं कर सकते। उनका कहना था–

"बकरी पाती खाति है ताकि काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात हैं तिनको कौन हवाल।।
दिन मह रोजा रखत है राति हनत है गाय।
यह तो खून न बंदगी कैसे खुसी खुदाय।।"

जाति-गत भेदभाव को दूर करने के साथ उन्होंने संसार में व्याप्त भ्रष्ट आचरण पर भी प्रहार किया। तत्कालीन समाज के लिए यह बहुत बड़ा उपकार था। हिन्दू हो या मुसलमान, सभी के आचरण में गिरावट आ चुकी थी। यदि उन्होंने कुछ स्थलों पर उसकी निंदा की है तो उसका लक्ष्य है समाज के सामान्य व्यक्तियों को चरित्र भ्रष्टता से बचाना और उनको सहज तथा सरल जीवन स्थिति से परिचित कराना। एक आलोचक ने उचित ही लिखा है– **"कबीर की वाणी ने समाज-क्षेत्र में एक और बहुत बड़ा कार्य किया था। वह है सात्विकता और आचरण-प्रवणता का प्रचार। कबीर के युग में वासना अपना भयंकर रूप धारण करती जा रही थी। कबीर को उसका डटकर सामना करना पड़ा था.....उन्होंने समाज में सात्विक वृत्तियों के प्रचार के लिए बड़ा तप किया था।"**

5. व्यभिचार और पर-स्त्री गमन का विरोध–कबीर अपने समय में प्रचलित व्यभिचार तथा पर-स्त्री गमन से पूर्णतः परिचित थे। इसलिए उन्होंने जहाँ एक ओर सामान्य रूप से नारी की निंदा की है, वहाँ दूसरी ओर पर नारी गमन का भी विरोध किया है–

"पर नारी राता फिरै, चोरी बिढ़ता खांहि।
दिवस चारि सरसा रहे, अंति समूला जाहि।।"

कबीर ने इस बात पर बल दिया कि मनुष्य को अपनी समस्त इंद्रियों पर नियंत्रण स्थापित करना चाहिए, परंतु इंद्रियों का संचालन करने वाला, पापों का मूल कारण तथा विषयजन्य आकर्षणों में रमने वाला हमारा मन है। यदि साधक मन को वश में कर ले तो सब ठीक हो सकता है–

"कबीर मारूं मन कूँ, टूक टूक हैं जाइ।
विष की झारी बोझ करि, लुणत महा मठिताई।"

कबीरदास ने धर्म और दर्शन के क्षेत्र में बहुत बड़ा उपकार किया। कबीरदास इस तथ्य को भली प्रकार जानते थे कि विभिन्न धर्म साधनों के लोग बाह्य आडंबरों को अधिक महत्त्व दे रहे थे और जनता को गुमराह कर रहे थे। जैन हो या बौद्ध, शाक्त हो या वैष्णव, सभी कर्मकाण्डों में उलझे हुए थे। मजबूर होकर कबीर जी को कहना पड़ा–

"अरू भूले पर दरसन भाई। पाखण्ड भेष रहे लपटाई।।
जैन बौद्ध और साकत सैना। चारवाक चतुरंग विहुना।।
जैन जीव की सुधि न जाने। पाती तोरी देहुरै आने।।"

कबीरदास ने सभी साधनाओं और धर्मों का सारतत्त्व लेकर जनता के समक्ष सहज और सरल रूप को रखा ग्राह्य होने के कारण सर्वजन्य सुलभ था। भले ही इसके लिए कबीर को पूर्व स्थापित धार्मिक विचारधाराओं तथा का खण्डन करना पड़ा। ऐसा करते समय कबीर जी पूर्णतः निष्पक्ष रहे। उन्होंने हिन्दू अथवा मुसलमान दोनों धर्मों के को खरी-खोटी सुनाई–

"जो रे खुदाय मसीत बसत है, अवर मुलुक किह केरा।
हिन्दू मूरति नाम निवासी, दुहमति ततु न हेरा।"

इसी प्रकार वैष्णव से कबीर को बड़ा लगाव था। उन्होंने शाक्तों की अपेक्षा वैष्णव को अधिक महत्त्व दिया, लेकि दोषों का भी उन्होंने पर्दाफाश किया और उन्हें बुरी तरह से फटकारा–

"बैस्नो भया तो क्या भया, बूझा नहीं विवेक।
छापा तिलक बनाइ कर, दग्ध्या लोक अनेक।।"

इसी प्रकार से उन्होंने तीर्थ, व्रत, पूजा आदि का भी खुल कर विरोध किया। उन्होंने इसे गुड़ियों का खेल कहा–

"पूजा, सेवा, नेम, व्रत, गुड़ियन का-सा खेल।
जब लग पिउ परसै नहीं, तब लग संसय मेल।।"

कबीर ने तत्कालीन योगियों तथा हठयोग की साधना करने वालों को सुधारने का प्रयास किया। इस संदर्भ में उन्होंने नवीन मार्ग चलाया और साधना पर बल दिया।

"सहज, सहज सब ही कहै, सहज न चीन्हैं कोय।
जो कबीर विषया तजै, सहज कहीजै सोय।।"

निष्कर्ष–इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीरदास ने वर्ण-व्यवस्था, जातिगत भेदभाव, वर्ग-व्यवस्था आदि का डटकर वि किया। विशेषकर हिन्दू धर्म में ईश्वर-प्राप्ति के लिए व्रत, उपवास, मूर्ति पूजा आदि का विशेष महत्त्व था। ये मान्यताएँ के आदर्श को मानकर साधना रूप में बनाई गई थीं, परंतु लोग मूल उद्देश्य को भूलकर इन साधनाओं में जुट गए और कर्म को अधिक महत्त्व देने लगे। वैष्णव बाह्य आडंबरों में लीन थे और शाक्त मदिरा पीकर वामाचार तथा दुराचार में संलग्न कबीरदास ने ऐसे लोगों को तीव्र व्यंग्य करके ठोकर मारी और उन्हें जगाने का प्रयास किया।

उन्होंने इस्लाम को भी नहीं छोड़ा। उन्होंने कुरान, रोजा, नमाज, हज आदि का विरोध किया। कबीर ने देखा कि संख्या में लोग कोई भी कुकर्म करके रोज़ा नमाज की शरण ग्रहण कर लेते हैं। फिर वे इस्लाम की छत्र-छाया में अपने को सुरक्षित मान लेते हैं। इन्हीं सब बातों को लेकर कबीर की वाणी में हमें तलखी देखने को मिलती है। उन्होंने समाज पुरानी प्रथा को न केवल तोड़ा, बल्कि उसे समाप्त कर दिया। इस संदर्भ में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने कबीरदास को क्रांतिक कवि कहते हुए लिखा है– **"संत कबीर की गणना उन इने-गिने महान पुरुषों में निस्सन्देह की जा सकती है, जिन्होंने अ समसामयिक समाज की गतिविधियों को भली-भाँति परखा तथा ऐसे आवश्यक मोड़ देना अपना परम कर्त्तव्य समझा। उन अपने समाज के अंतर्गत चाहे तो और योग्यता अर्जित करने का भी समुचित अवसर न मिला हो, वे इस कारण कभी विचलि व हताश नहीं हुए। उनके पास अपना आत्मबल और दुर्दम्य साहस था, जिस कारण उन्हें विपक्ष में चलना पड़ा। वे भ्रम वालों को, चाहे वे किसी भी उच्च स्तरीय वर्ग के क्यों न रहे हों, अपनी भूलों पर बार-बार दृष्टिपात करने के लिए सजग क देना चाहते थे। ऐसा करते समय उन्होंने किसी भी वर्ग विशेष का पक्ष नहीं लिया और न ही पक्षपातपूर्ण प्रहार ही किया। उ उन्होंने कभी कोई शब्द किसी उपदेश के रूप में भी कहा, उस दशा में भी उन्होंने बराबर यही चेष्टा की कि जिसके भी प्र ऐसा कहा जा रहा हो वह उसकी, अपने अनुभव द्वारा स्वयं-जांच पड़ताल कर लें। जो कोई भी बात स्वीकार की जाय, व निजी बनाकर ही अंगीकार किया जाय।"

◆◆◆

2. कबीर की निर्गुणोपासना

कबीर की निर्गुणोपासना की विवेचना कीजिए। **(Most Imp.)**

अथवा

कबीर की निर्गुणोपासना की विशेषताएं बताइए।

उत्तर–कबीर की निर्गुणोपासना–कबीर जिस काल में अवतरित हुए और अपनी वाणी से भारत भूमि को भक्तिरस से अभिसिक्त किया, हिन्दी साहित्य के कालक्रम में वह समय 'भक्तिकाल' कहलाता है। उस समय भारतवर्ष में प्रायः समस्त कवियों ने ही भक्तिपरक रचनाओं का प्रणयन किया। उस काल की भक्ति-भावना मुख्यतः दो प्रकार की है–(i) निर्गुण भक्ति-भावना (ii) सगुण भक्ति-भावना। जहाँ सूरदास एवं तुलसीदास जैसे भक्त-कवि सगुणोपासक हैं, वहीं कबीरदास, रैदास, नानक देव जैसे भक्त कवि निर्गुणोपासक हैं। निर्गुणोपासक कवि ईश्वर को निर्गुण, निराकार, अजन्मा तथा अलक्ष्य मानते हैं।

निर्गुणोपासक कवि भी क्रमशः दो प्रकार के होते हैं–(i) संत कवि तथा (ii) सूफी कवि। सूफी कवियों के यहाँ प्रेम मार्ग का प्रभाव है तो संत कवियों के यहाँ ज्ञान मार्ग का। इसीलिए सूफी कवियों को जहाँ प्रेममार्गी निर्गुणोपासक कहा जाता है, वहीं संत कवियों को ज्ञानमार्गी निर्गुणोपासक कहा जाता है। ज्ञानमार्गी निर्गुणोपासक संत कवियों में भक्त कवि कबीरदास का स्थान सर्वोत्कृष्ट है।

निर्गुणोपासक संत कवि कबीरदास की निर्गुणोपासना की विवेचना अब हम निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत कर सकते हैं–

कबीर की निर्गुणोपासना

1. निर्गुण-निराकार ईश्वर में विश्वास
2. बहुदेववाद एवं अवतारवाद का विरोध
3. सदगुरु का महत्त्व
4. जातिपातिगत भेदभाव का विरोध
5. रूढ़ियों और आंडबरों का विरोध
6. रहस्यवादी विचारधारा
7. भजन तथा नाम स्मरण पर बल
8. मार्मिक विरह भावना
9. लोक संग्रह की भावना
10. नारी के प्रति निंदापरक दृष्टिकोण

निर्गुण-निराकार स्वीकार किया है। कबीरदास ने भी राम की उपासना पर बल देते हुए उन्हें निर्गुण निराकार माना है—

निर्गुन राम जपहु रे भाई।
अविगत की गति लखी न जाई।।

उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि उनके राम दशरथ के पुत्र नहीं हैं, अपितु उनका मर्म तो कुछ दूसरा ही है—

दसरथ सुत तिहुं लोक बखाना,
राम नाम का मरम है आना।

कबीर के राम तो वैसे ही घट-घट में विराजमान हैं जैसे कस्तूरी मृग की नाभि में रहती है और व्यर्थ ही उसे वन में के लिए भटकता फिरता है। इसी प्रकार से घट-घट व्यापी राम को बाहर ढूँढने की आवश्यकता नहीं है—

कस्तूरी कुण्डिल बसै म्रिग ढूढै वन माहि।
तैसे ही घट-घट राम हैं, दुनिया देखै नाहि।।

उनके अनुसार वह परम तत्त्व पुष्प गन्ध से भी पतला है तथा उसके मुंह, मस्तक या रूप-रेख कुछ भी नहीं है—

जाके मुंह माथा नहीं, नाहीं रूप-कुरूप।
पुहुप बास ते पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप।।

2. बहुदेववाद और अवतारवाद का विरोध—निर्गुणोपासक कवियों ने बहुदेववाद और अवतारवाद का विरोध किया है। तो यहां तक कह देते हैं कि मेरा सिर अवतारी राम के समक्ष नहीं झुक सकता, चाहे वह टूटकर गिर जाए—

यह सिर नवे न राम कू, चाहे गिरियो टूट।
आन देव नहिं परसिये, यह तन जायो छूट।।

कबीरदास भी स्पष्ट कर देते हैं कि उनके राम—

ना जसरथ घर औतारि आया, ना लंका का राव सताया।

उनका तर्क है कि कर्ता, कर्मों से परे होता है। अतः यदि तुम राम को ही ईश्वर मान लेते हो तो उनके पिता दशरथ तथा दशरथ के पिता और राम के बाबा के किसने सिरजा था?

साधो करता करम ते न्यारा!
आवै न जाइ, मरै नहिं जनमै, ताका करो विचार।
'राम को पिता' जसरथ कहिये, जसरथ कौने जाया।
जसरथ पिता राम कौ दादा कहयौ कहां ते आया।।

3. सद्गुरु का महत्त्व—प्रायः सभी निर्गुणोपासक कवियों ने साधना में सद्गुरु की महत्ता का प्रतिपादन किया है। सगुण भक्त कवियों ने भी सदगुरु की महत्ता स्वीकार की हैं किन्तु सन्त कवि तो उसे एक प्रकार से ईश्वर का स्थानापन्न मानते हैं। कबीर के निम्नांकित दोहे में सद्गुरु से भी बढ़कर स्वीकार किया गया है—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूं पाइ।
बलिहारि गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो मिलाइ।।

4. जाति-पांतिगत भेद-भाव का विरोध—सिद्धों और नाथों की भांति निर्गुणोपासक कवियों ने भी जाति-पातिगत भेदभाव का विरोध किया है, जो एक प्रकार से उनके लिए आवश्यक भी था। कारण यह था कि सिद्धों और नाथों की भांति सन्त कवियों से भी अधिकांश निम्न जातियों से संबंधित थे। कबीर ने भी कहा है—

जाति-पांति पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।

इसके साथ ही उन्होंने उच्च वर्ग के लोगों अर्थात् ब्राह्मणों को चुनौती देते हुए कहा है—

तू बाह्मन, मैं कासी का जुलाहा, चीन्ह न मोर गियाना।

9. लोकसंग्रह की भावना–डॉ. शिवकुमार शर्मा ने इस संदर्भ में यह उचित ही मत व्यक्त किया है कि–"इस वर्ग के
कवि पारिवारिक जीवन व्यतीत करने वाले थे, नायपंथियों की भांति योगी नहीं। यही कारण है कि इनकी वाणी में जीवनगत
ही सर्वांगीणता है। सन्तों की साधना में वैयक्तिकता की अपेक्षा सामाजिकता अधिक है। सन्तों ने आत्म-शुद्धि पर
देया है किन्तु वह भी समाज को दृष्टि में रखकर चली है। नाथ-सम्प्रदाय की साधना व्यक्तिगत और पद्धति शास्त्रीय थी
सन्तों की साधना सामाजिक और पद्धति स्वतन्त्र है। जहां एक ओर ये लोग सन्त, कवि और भक्ति आंदोलन के उन्नायक है,
समाज-सुधारक भी। आलोचकों का कबीर को अपने युग का गांधी कहना सर्वथा उपयुक्त है।" सन्तों ने कृष्ण-भक्त कवियों
समान समाज और राजनीति के प्रति आंखें नहीं मूंद रखी थीं। सन्तकाव्य में उस समय का समाज प्रतिबिम्बित है।
इनकी बानी की सार है।

10. नारी के प्रति निन्दापरक दृष्टिकोण–यद्यपि कबीर ने पतिव्रता नारियों की प्रशंसा भी की है–

पतिव्रता मैली भली, काली कुचित कुरूप।
पतिव्रता के रूप पर बारों कोटि सरूप।।

किन्तु सन्तों का नारी-विषयक दृष्टिकोण अधिकांशतया निन्दापरक ही रहा है। नारी की निन्दा का कारण यह है कि
की दृष्टि में नारी माया का प्रतिरूप और हरि-स्मरण में बाधक रहा है। कबीर ने भी नारी के विषय में बड़े निन्दात्मक
व्यक्त किए है। जैसे–

(क) **नारी की झाईं परत, अंधा होत भुजंग।**
कबिरा तिन की कौन गति जे नित नारी संग।।

(ख) **एक कनक अरु कामिनी, दुर्गम घाटी दोय।**

(ग) **नारी तो हम भी करी, कीया नहीं विचार।**
जब जानी तब परिहरी, नारी बड़ा विकार।।

सधुक्कड़ी भाषा, गेय मुक्तक शैली, प्रतीकात्मकता आदि कतिपय अन्य शैलीगत विशेषताएं भी, जो निर्गुणोपासक
कवियों की विशेषताएं हैं, कबीर-काव्य में भी उपलब्ध होती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि कबीर-काव्य में निर्गुण संत
की सभी प्रमुख विशेषताएं विद्यमान हैं और वे निर्गुणोपासक कवि-माला में सुमेरु की भांति महत्त्वपूर्ण है।

◆◆◆

3. कबीर की भक्ति

3. कबीर की भक्ति-भावना पर प्रकाश डालिए। (Most Imp.)

अथवा

कबीर की भक्ति-भावना पर एक सारगर्भित निबंध लिखिए।

अथवा

कबीर की भक्ति के स्वरूप का वर्णन कीजिए।

अथवा

कबीर की भक्ति-भावना पर प्रकाश डालते हुए उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–कबीर की भक्ति–कबीरकालीन भारतीय समाज पूर्णतः अस्त-व्यस्त हो गया था। मुस्लिम शासक हिन्दुओं पर तरह-तरह
के अत्याचार कर रहे थे और उन्हें मुस्लिम धर्म ग्रहण करने के लिए बाध्य कर रहे थे। दूसरी ओर, ब्राह्मणों ने हिन्दू धर्म की
रक्षा करने के लिए उन्हें नियम तथा संयम में जकड़ने का प्रयास किया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि संसार में हीन कहे जाने
वाले लोग हिन्दू धर्म से दूर हटने लगे। इसके साथ-साथ हिन्दुओं तथा मुसलमानों में वैमनस्य उत्पन्न हो चुका था। सिद्ध और

अपनी-अपनी साधना के द्वारा जन-साधारण को भी मोहित कर रहे थे। परिणाम यह हुआ कि उस समय प्रचलित नाना धर्म सम्प्रदाएँ जनता को भुल-भुलैया में डाल रही थीं। ऐसी स्थिति में कबीर की भक्ति ने भारतीय जन-मानस को आलंबन प्रदान किया। उन्होंने अपनी प्रेम भक्ति द्वारा जनता को राम-रस में डुबो दिया। कबीर से पहले रामानंद ने भक्ति की धारा प्रवाहित की थी। उनके बारे में कहा भी गया है–

'भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानन्द।'

परंतु रामानंद के प्रसार का चैत सीमित था। इसलिए कबीरदास ने ही अपनी प्रेमाभक्ति का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। इसलिए कहा जाता है कि कबीर ने **'सतद्वीप नवखण्ड'** में भक्ति को प्रकट किया।

भक्ति का स्वरूप–कबीर की भक्ति को वैष्णव विचारधारा ने आंशिक रूप से प्रभावित किया। परंतु कबीर की भक्ति का विवेचन करने से पहले हमारे लिए यह जानना आवश्यक है कि भारतीय भक्ति का स्वरूप क्या है और आचार्य ने इसकी व्याख्या किस प्रकार की है। **रामानुजाचार्य ने 'ब्रह्म सूत्र'** का भाष्य प्रस्तुत करते हुए भक्ति के बारे में कहा है–

'ध्रुवानुस्मृतिरेव भक्तिशब्देनाभि धीयते।'

अर्थात् परमात्मा के निरंतर स्मरण को ही भक्ति कहते हैं। व्यास ने कहा है कि प्राणिधान वह भक्ति है जिसके द्वारा परमेश्वर उस योगी पर कृपा दृष्टि करते हैं तथा उसकी इच्छाओं की पूर्ति कर उसे वरदान देते हैं। इस प्रकार की भक्ति पतंजलि, भोज आदि ने भी की है। **भक्तराज प्रह्लाद** ने भक्ति की सुंदर व्याख्या करते हुए कहा है– **"जैसे तीव्रासक्ति अविवेकी पुरुष को इंद्रियों विषयों में होती हैं उसी प्रकार आसक्ति आप का (प्रभु) स्मरण करते समय मेरे हृदय से निकल न जाए।" नारद** ने **'भक्ति** सूत्र के अंतर्गत भक्ति की महिमा का गान करते हुए लिखा है–

"सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा। अमृतस्वरूपा च।"

अर्थात् वह भक्ति ईश्वर के प्रति प्रेमरूप है और वह अमृत स्वरूप भी है। **पराशर** ने उसे निहित विधि कर्मों में सीमित करते हुए अनुरागनपूर्ण माना है-

"पूजादिष्वनुराग।"

शांडिल्य भक्ति सूत्र में उसे पराकोटि की मानते हुए ईश्वर के प्रति परम अनुराग रूप माना है।

"सा परानुरक्तिरीश्वरे।"

भक्ति के भेद–नारद ने भक्ति के दो रूप माने हैं– प्रेम रूपा तथा गौणी।

प्रेमारूपा भक्ति के उन्होंने दो भेद किए हैं, प्रथम है– काम रूपा जिसमें एक ही भाव की प्रधानता होती है जैसे गोपियों की कृष्ण में भक्ति कामरूपा कही जाएगी। दूसरी, संबंध रूपा होती है जिसमें दास्य, साख्य, वात्सल्य, आत्म आदि भाव विद्यमान रहते हैं। कबीर की भक्ति मुख्यतः कामरूपा है लेकिन संबंध रूपा के उदाहरण भी उसमें देखे जा सकते हैं। कुछ उदाहरण देखिए–

दास्यासक्ति :
"कबीर कूता राम का मुतिया मेरा नाउँ।
गले राम की जेवड़ी, जित खैचे तित जाउँ।"

कांतासक्ति :
"मोरे घर आये राम भरतार।
तन रति कर मैं गन रति करिहौं, पाँच तत्त्व बराती
रामदेव मोहे ब्याहन आये, मैं जोवत मदमाती।"

वात्सल्यासक्ति :
"हरि जननी मैं बालक तोरा।
काहि न अवगुन बकसहु मोरा।"

कबीरदास की भक्ति किसी संप्रदाय विशेष से प्रभावित दिखाई नहीं देती। उन्होंने अपने आराध्य के लिए अनेक नामों का प्रयोग किया है। कहीं वे उसे राम कहते हैं, कहीं शिव, कहीं हरि, कहीं खुदा तथा कहीं अल्लाह। उनकी भक्ति का स्वरूप तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार दिखाई देता है। कबीर ने देखा कि तत्कालीन हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख आदि रूढ़ियों तथा बाह्य आडंबरों के शिकार बने हुए हैं। मुस्लिम शासक मुल्लाओं के कहने पर हिन्दुओं पर अत्याचार कर रहे थे और बलपूर्वक

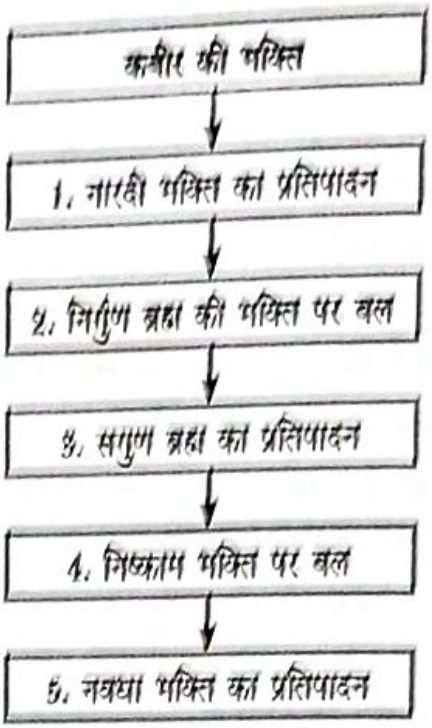

...जबरन धर्म परिवर्तन करा रहे थे। ऐसी स्थिति में कबीर ने निर्गुण ब्रह्म की भक्ति पर बल दिया। भक्ति के स्वरूप से परिचित होने के उपरांत हम कबीर साहित्य के आधार पर कबीर की भक्ति-भावना का विवेचन निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर कर सकते हैं—

1. नारदी भक्ति का प्रतिपादन—कबीरदास एक सच्चे समाज-सुधारक तथा भक्त थे। कवि तो वह स्वतः बन गए। यद्यपि उनकी भक्ति-भावना सब धर्मों से अलग है, परंतु उनकी भक्ति-भावना पर नारद भक्ति सूत्र का बहुत प्रभाव देखा जा सकता है। नारदी भक्ति उनके जीवन का आदर्श था और इसके द्वारा वे भवसागर से पार उतरना चाहते थे। एक स्थल पर वे कहते भी हैं—

"भगति नारदी मगन सरीरा,
इहि विधि भव तरी कहे कबीरा।"

इस उक्ति के अनुसार कर्म, ज्ञान तथा योग आदि से भक्ति अधिक प्रभावशाली मानी गई है। कबीरदास भी इसी दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। उनका तो स्पष्ट कथन है कि भक्ति के बिना योग साधना पूर्णतः सफल है। यदि कोई साधक निष्काम भावना से योग साधना नहीं करता तो उसके सारे प्रयास व्यर्थ हैं। एक स्थल पर वे कहते भी हैं—

"सुध बुध होइ भज्यौं नहीं सांई, काछ्यौ ड्यंग उदत कै तांई।
हिरदै कपट हरि सूं नहीं सांचौ, कहा भयो जे अनहद नाच्यौ।"

परंतु कबीरदास ने नारदी भक्ति के अतिरिक्त प्रेमाभक्ति को भी आवश्यक माना है। फिर भी वे नारदी भक्ति का ही समर्थन करते हुए, देखे जा सकते हैं—

"हिंडोलना तहाँ झूलै आतमराम।
प्रेम भगति हिंडोलनाँ, सब सन्तनि कौ विश्राम।।
× × × × × ×
प्रेम भक्ति ऐसी कीजिए, मुनि अमृत बरिषै चंद।
आपही आप विचारिये, तब केता कोइ अनंद रे।।"

कबीरदास ने मूर्ति पूजा को अस्वीकार किया है, इसलिए वैष्णव भक्ति का उनकी भावना में कोई स्थान नहीं है। यद्यपि उन्होंने कुछ स्थानों पर वैष्णवों के प्रति अपनी श्रद्धा को व्यक्त किया है, परंतु वे वैष्णव भक्त नहीं थे फिर भी उनका थोड़ा-बहुत झुकाव वैष्णव की ओर देखा जा सकता है। वैष्णव भक्ति से संबंधित उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ विशेष महत्त्व रखती हैं—

(i) मेरे संगी दोई जणां एक वैष्णव एक राम।

(ii) वैष्णौं की छपरी भली, न साकत को बड़ गाऊँ।

परंतु अन्यत्र वे वैष्णव संप्रदाय के अंधविश्वासों तथा बाह्य आडंबरों का विरोध भी करते हैं और वे माला फेरने वाले को फटकार भी लगाते हैं–

"वैष्णव, हुआ तो क्या भया, माला मेली चारि।
बाहर कंचनवा रहा, भीतरि भरी भंगरि।।"

अन्यत्र वे रामानंद की भक्ति-भावना के अनुसार जातिगत भेदभाव को नकारते भी हैं–

"जाति-पांति पूछै नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई।।"

2. निर्गुण ब्रह्म की भक्ति पर बल–कबीर ने अपनी भक्ति में जिस आराध्य का वर्णन किया है वह उपनिषदों की अद्वैत धारणा से मेल खाता है, लेकिन कुछ स्थलों पर वे अद्वैत से भिन्न भी दिखाई देते हैं। कारण यह है कि कबीरदास किसी सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं करते। उन्होंने ब्रह्म का जो कुछ तथा जितना भी वर्णन किया है वह सब अनुभव पर आधारित है। वे पहले भक्त हैं और बाद में कवि हैं। जिस-जिस रूप में वे ब्रह्म के स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं, उसी रूप में उसका वर्णन करते हैं। इसी कारण है कि कबीर के ब्रह्म का स्वरूप निश्चित नहीं है। वह किसी भी दर्शन के माप दंड से परे है। वह पुस्तकीय ज्ञान से अन्य परंतु प्रेम से प्राप्य हैं। उनके ब्रह्म का स्वरूप अनुभूति का विषय है। उसे केवल वहीं जानते हैं। इसलिए **डॉ. रामकुमार वर्मा** ने उचित ही लिखा है– **"वह ऐसा गुलाब है जो किसी बाग में नहीं लगाया जा सकता, केवल उसकी सुगंध ही पाई जा सकती है। वह ऐसी सरिता है कि हम उसे किसी प्रशस्त वन में नहीं देख सकते, वरन् उसे कलकल वाद करते हुए ही सुन सकते हैं।"** अनुभूति के अनुसार कबीर का ब्रह्म कहीं अद्वैत है, कहीं द्वैताद्वैता, कहीं विशिष्टाद्वैत है, उसका एक स्वरूप नहीं है। परंतु उन्होंने प्रायः अद्वैत वर्ग का ही वर्णन किया है–

"कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूढै बन माहि।
ऐसे घट, घट राम है, दुनियाँ देखे नाहिं।।
× × × × × ×
मृगा पास कस्तूरी बास, आप न खोजै खौजे घास।"

वे अद्वैत की सत्ता को ही स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि वह ब्रह्म रोम-रोम में सृष्टि के कण-कण में निवास करता है। यद्यपि वह हमारे हृदय में विद्यमान है, परंतु वह हमें दूर दिखाई देता है। कबीर का कथन है कि जब प्रियतम हमारे साथ है तो हम उसे संदेश क्यों भेजें क्योंकि संदेश भेजना मात्र दिखावा है। हम जहाँ चाहें ईश्वर की सत्ता को देख सकते हैं। यह केवल अनुभव करने की बात है–

"प्रियतम को पतिया लिखूं, जो कहीं होय विदेस।
तन में, मन में, नैन में, ताको कहा संदेस।।
× × × × × ×
कागद लिखै सो कागदी, कि व्यवहारी जीव।
आलम दृष्टि कहा लिखै, जित तित पीव।।"

कबीर ने ब्रह्म की स्थिति सर्वत्र मानी है। उन्होंने ईश्वर की व्यापकता को अनुभव किया। अपनी अद्वैत भक्ति के अनुसार वे निर्गुण तथा निराकार ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं। उनका ब्रह्म ही संसार को बनाने वाला है और नष्ट करने वाला है। यह आत्मा उसी ब्रह्म का अंश है। जब आत्मा इस नश्वर शरीर को त्यागकर परमात्मा में लीन हो जाती है तब वह ब्रह्म लीन बन जाती है। कबीरदास कहते भी हैं–

"जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, इति तत्त कथ्यौ ग्यानी।।"

(vii) वत्सल-भाव–कबीर ने ईश्वर को कहीं माता के रूप में और कहीं पिता के रूप में देखा है। प्रभु पर मातृ भाव का आरोप करते हुए वे कहते हैं–

> "हरि जननी मैं बालक तोरा।
> काहे न औगुण बकसहु मोरा।।
> बाप राम सुनि बीनति मोरी।
> तुम्ह सो प्रगट लोगनि सूं तोरी।।"

(viii) आचरण की शुद्धता पर बल–कबीर की भक्ति-भावना की अन्य विशेषता यह है कि उसमें सदाचार पर बल दिया गया है। कवि सदाचार को भक्ति का प्रमुख अंग मानते हैं। इसलिए उनका कहना है कि मनुष्य का आचरण शुद्ध होना चाहिए। आचरण की यह शुद्धता तभी आ सकती है जब भक्त संपूर्ण विकारों को उत्पन्न करने वाली दो वस्तुओं कनक तथा कामिनी का प्रयोग न करे। **''एक कनक एक कामिनी दुर्गम घाटी दोय'** कहकर कबीर ने एक कनक और कामिनी को भक्ति मार्ग की प्रमुख बाधा सिद्ध किया है। ये दोनों मानव के शत्रु हैं। इनमें से कामिनी तो मानव के सुखों का विनाश कर देती है और मनुष्य भक्ति और मुक्ति में प्रवेश नहीं कर पाता–

> **"नारि नसावै तीन सुख, जा नरं पासै होय।**
> **भगति मुकति निज ज्ञान में, पैसि न सकई कोय।।"**

कवि ने कामिनी को काली नागिन भी कहा है। वह खांड की बनी मधुर मछली है। इन दोनों को त्यागकर भक्त काम, क्रोध, भय, मोह, अहंकार से स्वतंत्र हो जाता है परंतु साथ ही कबीर ने आचरण की शुद्धता के लिए कुसंगति के त्याग पर बल दिया है। कबीर के विचारानुसार सज्जनों की संगति करने से मानव शुद्ध आचरण की ओर प्रवृत्त होता है और दुर्गति का विनाश होता है–

> **"कबीर संगति साधु की, बगि करीजै जाइ।**
> **दुरमति दूरि गँबाइ सो, वेसी सुमति बताइ।।"**

इस प्रकार कबीर जी एक सच्चे भक्त कवि थे। उनकी भक्ति पीयूष-सलीला भगीरथी के समान पावन है। जो भी साधक उसमें अवगाहन करता है उसके मन-कुरंग को विश्रांति मिलती है। भले ही कबीर ने अपनी भक्ति पद्धति में हठयोग का मिश्रण किया है। मुख्यतः उन्होंने निर्गुण भक्ति का प्रतिपादन किया है। इस संदर्भ में **डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना** लिखते भी हैं- **''कबीर की भक्ति-भावना का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उसमें निष्काम भाव की प्रबलता है, निर्गुण ब्रह्म के प्रति अटूट श्रद्धा एवं विश्वास प्रकट किया गया है।"**

बाह्य साधनों की अपेक्षा आंतरिक साधनों पर जोर देते हुए मानसिक पूजा एवं मानसिक ध्यान को महत्त्व प्रदान किया गया है, शुद्ध आचरण एवं सत्याचरण पर जोर दिया गया है। मूर्तिपूजा एवं अवतारवाद का खण्डन करते हुए केवल नाम-स्मरण द्वारा ब्रह्म के साक्षात्कार करने का आग्रह किया गया है। भगवान के गुण-कीर्तन को महत्त्व देते हुए भक्त के आत्म-समर्पण को भक्ति का अनिवार्य अंग घोषित किया गया है तथा सत्संगति, साधु सेवा, इन्द्रिय विग्रह, वैराग्य, माया एवं तृष्णा का परित्याग, गुरु सेवा, माधुर्य भाव आदि का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए सहज एवं सरल रूप में दीनता एवं विनम्रता के साथ भगवान की भक्ति को अपनाने का आग्रह किया गया है।

◆◆◆

4. कबीर का दार्शनिक चिंतन

---

4. **कबीर साहित्य के आधार पर कबीर के दार्शनिक चिंतन पर प्रकाश डालिए।** **(Imp.)**

अथवा

कबीर की दार्शनिक विचारधारा का परिचय दीजिए।

अथवा

कबीर के जीवन-दर्शन पर विचार करते हुए उनके काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–कबीर का दार्शनिक चिंतन–कबीर के जीवन-दर्शन को समझने से पहले यह जान लेना जरूरी है कि जीवन-दर्शन का क्या अर्थ है। साधारण शब्दों में हम कह सकते हैं कि जीवन-दर्शन का अर्थ है कि कवि का जीवन तथा जगत के बारे में

दृष्टिकोण। वस्तुतः कबीर का लक्ष्य न तो कविता करना था और न ही दर्शन की किसी गुत्थी को सुलझाना। परन्तु उन्होंने अपनी भक्ति में प्रेम की विविध भावनाओं को व्यक्त करते हुए ब्रह्म जीव तथा माया के बारे में अपने दृष्टिकोण को भी प्रकट कर दिया। उनके इन्हीं विचारों के आधार पर हम उनकी विभिन्न धारणाओं को जान सकते हैं। भले ही कविता तथा दर्शन अलग-अलग विषय होते हैं परन्तु प्रत्येक कवि की कविता में कुछ-न-कुछ दार्शनिक विवेचन भी रहता है। लेकिन कवि का दार्शनिक पक्ष व्यवस्थित रूप में नहीं रहता जैसे किसी दार्शनिक विद्वान का रहता है। इस सन्दर्भ में 'महादेवी वर्मा' ने कहा भी है—"कवि में दार्शनिक को खोजना बहुत साधारण हो गया है। जहाँ तक सत्य के मूल रूप का सम्बन्ध है वे दोनों एक दूसरे के अधिक निकट हैं, परंतु साधन और प्रयोग की दृष्टि से उनका एक होना सहज नहीं है। बुद्धि के निम्न स्तर पर अपनी खोज आरम्भ करके उसे सूक्ष्म बिन्दु तक पहुँचाकर दार्शनिक सन्तुष्ट हो जाता है। उसकी सफलता यही है कि सूक्ष्म सत्य के उस रूप तक पहुँचने के लिए जो बौद्धिक दशा सम्भव रहे। बुद्धि अन्तर का बोध कराकर एकता का निर्देश करती है और सहज एकता की अनुभूति हृदय का एकता की ओर संकेत है। परिणाम यह है कि चिन्तन की विभिन्न रेखाओं का समान्तर रहना अनिवार्य हो जाता है। योग जिस क्रम पर बढ़कर सत्य की प्राप्ति करता है, वह वेदान्त को अंगीकृत न होगी और वेदान्त जिस क्रम से चलकर सत्य तक पहुँचता है, वे योग स्वीकार न कर सकेगा।"

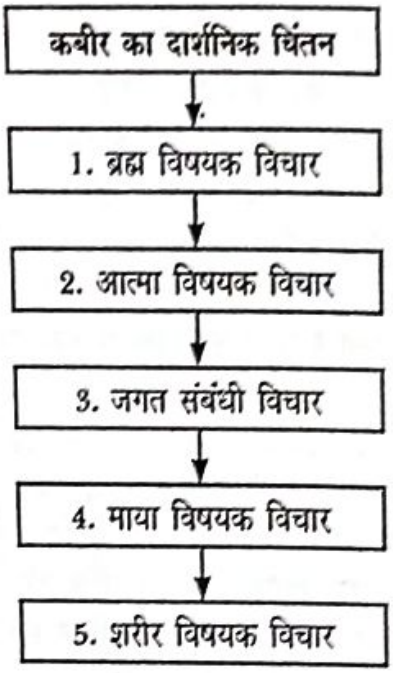

महादेवी का यह कहना भी है कि काव्य में बुद्धि हृदय से अनुशासित होती है। इसलिए उसका दर्शन न तो बौद्धिक तर्क प्रणाली है और न ही सूक्ष्म बिन्दु पर पहुँचने वाली विचार प्रवृत्ति है। इसलिए कवि का दर्शन उसकी आस्था का दूसरा नाम है। कबीरदास सांसारिक जीवन से विरक्त हो गए थे और जीवन मुक्ति की दशा में पहुँच गए थे। इसी सन्दर्भ में कबीरदास ने अपने कुछ विचारों को व्यक्त किया है जो कि उनके दार्शनिक चिन्तन का परिणाम कहा जा सकता है—

1. ब्रह्म विषयक विचार—कबीर का ब्रह्म उपनिषदों के अद्वैतवाद से अत्यधिक प्रभावित दिखाई देता है। परन्तु उस अद्वैत की प्राप्ति का आरम्भ परमात्मा से वियुक्त हृदय की मनोभावना द्वारा अभिव्यक्ति प्राप्त करता है। यह स्थिति द्वैत की है जो कि एक भ्रम और अज्ञान है। परन्तु इस द्वैत भावना से कबीर का द्वैतवाद तनिक भी प्रभावित नहीं होता। कवि अद्वैत का निरूपण उपनिषदों के समान करते दिखाई देते हैं। एक स्थल पर वे कहते हैं—

"कस्तूरी कुण्डल बसै मृग ढूंढ़े बन माहिं।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनियाँ देखे नाहिं।"

कबीर के ब्रह्म सम्बन्धी विचार उनकी आत्मा-विभूति तथा आत्म-चिन्तन पर आधारित हैं। ऐसा लगता है कि कवि ने ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया था। कवि को यह अनुभव हुआ कि प्रिय ब्रह्म की ज्योति चारों ओर फैली हुई है। कबीर ने इसे अनुभव किया और उसे ढूँढ़ने के लिए निकल पड़े। अन्ततः कबीर को ब्रह्म का पूर्ण साक्षात्कार हुआ और चारों ओर लाली-ही-लाली दिखाई दी। इसलिए कबीरदास कहते भी हैं—

"लाली मेरे लाल की जित देखूं उत लाल,
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।"

कबीर ने ब्रह्म की साधना की और उसका साक्षात्कार किया, परन्तु कबीर इसका श्रेय अपने गुरु को देते हैं, क्योंकि उन्होंने ब्रह्म का प्रकाश दिया। कबीरदास बार-बार दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि उनके जीवन का लक्ष्य ब्रह्म पर विचार करना है। परन्तु कोई सहज कार्य नहीं है। जिस पर गोविन्द की कृपा होती है, वह ही उसकी ओर अग्रसर होता है। परन्तु ब्रह्म क्या है यह बात कठिन है। कबीरदास उसे गूंगे का गुड़ कहते हैं। यह सत्य है कि ब्रह्म का अनुभव करके उसका वर्णन करना असम्भव है। इस सन्दर्भ में कबीरदास कहते भी हैं–

"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ, जल जलहि समाना, इहि तत्त कथ्यो ज्ञानी।"

डॉ. सरनाम सिंह ने कबीर के ब्रह्म के बारे में लिखा है, **"उसी अद्वैत तत्त्व को कबीर ने अनेक नामों से अभिहित किया है। परमात्मा, ब्रह्म परमात्मा, हरि, निरंजन, अलख, खालिक, निर्गुण, भगवान, राम, पुरुषोत्तम आदि अनेक नामों से वे उसी अद्वैत ब्रह्म की ओर संकेत करते हैं। वे गुण-विहीन हैं। उसका न कोई रूप है, न रंग है, उसमें न ही देखने की कोई चीज है। उसका कोई नाम भी नहीं रखा जा सकता क्योंकि वह निर्गुण और निराकार है।"** अन्य अद्वैतवादियों के समान कबीरदास मानते हैं कि ब्रह्म से ही सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण होता है और अन्त में उसी में विलय होता है। पानी और बर्फ के रूपक द्वारा कबीरदास इसी तत्त्व को व्यक्त करते हुए कहते हैं–

"पानी हि ते हिम गया, हिमे ही गया बिलाय।
कबीरा जो था सो भया, अब कुछ कहा ना जाय।"

कबीर का ब्रह्म केवल सृष्टि का निर्माता ही नहीं है, वह पूर्ण निराकार, रूप-विहीन तथा निर्लिप्त है। वह ब्रह्म प्रत्येक अणु में व्याप्त है तथा प्रत्येक हृदय में निवास करता है। वह शरीर में स्थित ज्योतिस्वरूप निराकार है। वह अखण्ड तथा एकरस भी है। सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त होने के कारण उसी महिमा अपरम्पार है। वह सब कुछ जानने वाला तथा सब कुछ करने वाला है। बिना किसी रूप, आकार तथा बिना इन्द्रियों के वह सब कार्य करता रहता है–

"शरीर सरोवर भीतर आद्दे कमल अनूप।
परम ज्योति पुरूषोत्तम, जाकै रेख न रूप।"

× × × × × ×

"आदि मध्य औ अन्त लौ अविहड़ सदा अभंग।
कबीर उस कर्त्ता की सेवक तजै न संग।"

× × × × × ×

"बिन मुख खाइ, चरन बिन चालै, बिन जिभा गुण गावै
आधे रहै ठौर नहीं द्दाड़ै दस दिसिहीं फिरि आवै।।
बिनहीं ताला बजावै, बिन मंडल पर ताला।
बिनहीं सबद अनाहद बाजै, तहाँ निरतत है गोपाला।"

कबीर ने ब्रह्म निरूपण करते समय अनेक नामों का प्रयोग किया है। इससे पाठक के मन में भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि वह राम और हरि शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग कर रहे हैं। इससे हमें यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि वे विष्णु के अवतारवाद में विश्वास रखते हैं अथवा वे दशरथ के पुत्र राम या देवकी के पुत्र हरि को ही ब्रह्म मानते हैं। उन्होंने ईश्वर का स्मरण करने के लिए ही इन नामों का सहारा लिया है। यह भी सम्भव है कि स्वामी रामानंद के प्रभाव स्वरूप राम के नाम का बार-बार प्रयोग किया। इसी प्रकार कबीरदास कहते भी हैं–

"दशरथ सुत तिहूँ लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना।"

कबीर के विचारानुसार ब्रह्म को कोई नहीं पहचान सकता है। जो पहचानता है वह ब्रह्म के समान हो जाता है। धार्मिक सम्प्रदायों ने ब्रह्म को जटिल जाल में जकड़ लिया है। सभी उसके ऊपरी रूप को देखते हैं, उसके असल रूप को कोई नहीं जान पाता इसीलिए वह ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर पाते तथा ब्रह्म तथा अज्ञान का शिकार हो जाते हैं। जब ब्रह्म ज्ञान का पर्दा हटता है तभी साधक ब्रह्म को जान पाता है। इस सन्दर्भ में 'कबीरदास' लिखते भी हैं–

"न जाने साहब कैसा है।
मुल्ला होकर बाँग जो देवे।
क्या तेरा साहब बहरा है
कीड़ी के पग नेवर बाजे,
सो भी साहब सुनता है
माला फेरी तिलक लगाया,
लम्बी जटा बढ़ाता है
अन्तर तेरे कुफ्र-कटारी,
यो नहीं साहब मिलता है।"

यही कारण है कि कबीरदास ने भले ही ब्रह्म को राम, गोपाल, कृष्ण, मुरारी आदि नामों से सम्बोधित किया है, परन्तु वैष्णवों के अवतारी नाम को मान कर भी ब्रह्म को अवतारी नहीं मानते। जहाँ कहीं उन्होंने सगुण भक्त के समान उक्तियों का प्रयोग किया है, वह केवल ब्रह्म के प्रति प्रेमातिरेक के कारण है। कबीरदास जी लिखते भी हैं–

"जा जसरथ घरि औतरि आवा, ना लंका का राव सतावा
देवै कूखि न औतरि आवा, मां जसवै लै गोद खिलावा।"
× × × × × × × ×
ना वो ग्वालन के संग फिरिया, गोवरधन लै न कर धरिया।
बावन होइ नहीं बलि छलिया, धरनी वेद लेन उधरिया।"

कबीरदास ने साधना क्षेत्र में ही प्रेम क्षेत्र को जोड़ दिया है। वे मानते हैं कि प्रेम ही ईश्वर है, ईश्वर ही प्रेम है। परन्तु यह प्रेम कोई मौसी का घर नहीं है। इसमें प्रवेश करना बड़ा कठिन है। प्रत्येक व्यक्ति इस प्रेम को नहीं पा सकता। जो व्यक्ति अपने शीश को उतार सकता है, वही ब्रह्म के घर में प्रवेश कर सकता है। पहले बलिदान करना होगा, तभी ब्रह्म को पाया जा सकता है। इसका अर्थ है–**अहम् का विर्सजन करना।** जो व्यक्ति अपने अहम् का विनाश कर लेता है, वही ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कबीर का ब्रह्म व्यक्त रूप है तो अव्यक्त रूप भी है। वह बुद्धिमूलक है तो प्रेममय भी है। कवि के ब्रह्म निरूपण पर वेदान्त का प्रभाव है और वे उपनिषदों की व्याख्या करते हैं। इस सन्दर्भ में गोविन्द त्रिगुणायत लिखते भी हैं– **"कबीर ने अपने ब्रह्म का वर्णन उपदेशात्मक, भावात्मक, रहस्यात्मक और बुद्धिमूलक शैली में ही किया है। उपनिषदों में भी ब्रह्म का वर्णन अधिकतर रहस्यमयी भावात्मक शैली में ही हुआ है। यही कारण है कि उनका ब्रह्म निरूपण उपनिषदों के अधिक मेल में है। उपनिषदों में अद्वैतवाद को पूर्ण प्रतिष्ठा मिली है। उपनिषदों का अद्वैतवाद कबीर में भी मिलता है।"**

2. आत्मा विषयक विचार–कबीरदास अध्यात्म लोक के साधक थे। उनके काव्य में अनुभूति तथा चिन्तन का संयोग मिलता है। उन्होंने अनेक विषयों पर अपने दार्शनिक विचार प्रस्तुत किए हैं। परन्तु सर्वत्र उनके विचारों में मौलिकता देखी जा सकती है। आत्मा के सन्दर्भ में भी उन्होंने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। वे पूर्णतया मौलिक हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं–**"कबीर की साखियों और पदों को देखने से स्पष्ट होता है कि उन्होंने आत्म-विचार को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। कवि ने साधना करते हुए आत्म-चिन्तन किया तथा उपनिषदों के कथन का पालन करते हुए अपने आप को जानने का प्रयास किया। यही कारण है कि कवि के आत्म-तत्त्व में गहराई तथा व्यापकता है।"** वे कहते भी हैं–

"आप पिछाने आपै धाय।"
अपने में रंगि आपन यौ जान।
जिहिं रंगि जानि ताहि कू भानू।"

कबीर ने आत्मा को हंस अथवा हंसा कहा है और उसे चेतना की चेतावनी भी दी है। कवि बार-बार प्रश्न करता है कि यह किस देश से आया है और उसे कहाँ जाना है। यह हंसा कहाँ विश्राम करेगा और किसकी आशा लगाई है। परन्तु वे हंस को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि हमारे साथ चलो और उस मूल स्थान पर पहुँच जाओ जहाँ ब्रह्म का आनंद है। वहाँ पहुँचकर सभी प्रकार का संशय नहीं है। इसलिए कवि आत्मा को अजर-अमर कहता है। कवि लिखता भी है-**"हे जीव! तुम इस बात को समझो कि यहाँ आने से पहले तुम कहाँ थे, क्या थे और यहाँ क्यों आये? तुझे यहाँ क्या करना था, तुम यहाँ क्या कर रहे हो? अभी भी चेत जाओ देर नहीं हुई है। अपने उसी मूल स्थल पर पहुँच जाओ जहाँ ब्रह्म का आनंद है और जहाँ पहुँचकर किसी प्रकार के संशय और सुख आदि की गुंजाइश नहीं रह जाती।"**

कबीरदास ने आत्मा को परमात्मा का अंश माना है। इस दृष्टि से वे उपनिषदों से अत्यधिक प्रभावित दिखाई देते हैं। जिस प्रकार अद्वैतवादियों ने ब्रह्म और आत्मा की एकता को स्थापित करने का प्रयास किया, उसी प्रकार कबीरदास ने आत्मा और परमात्मा को अंश, अंशी माना और उनकी एकता पर विचार किया। कबीरदास अपने रहस्यवाद में सर्वत्र आत्मा-परमात्मा की एकता की स्थापना करते दिखाई देते हैं–

"प्रीतम कूं पंतियाँ लिखूं, जौ कही होय विदेस।
तन में मन में नैन में, ताकौ कहाँ संदेस।।"

कबीर की आत्मा ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए व्याकुल है। वे इस विरह को अधिक मानते हैं और स्पष्ट करते हैं कि जो आत्मा है वही परमात्मा है, जो परमात्मा है वही आत्मा है। जो इस तथ्य को जान लेता है, वही परमात्मा को पा लेता है–

"सेई तुम्ह सेई हम एक कहियत, जब आपा पर नहीं जाना।
ज्यूं जल में पसि न निकसै, कहै कबीर मन माना।"

किन्तु आत्मा और परमात्मा की पृथकता का कारण माया है। वह आत्मा और परमात्मा को कभी एक नहीं होने देती, बल्कि एक बाधा का काम करती है। परन्तु जब माया का वरण हट जाता है तो आत्मा और परमात्मा एक हो जाते हैं। यह उसी प्रकार है जैसे जल में तैरते हुए कुंभ में भी जल होता है। ये दोनों जल एक जैसे हैं लेकिन फिर भी अलग-अलग हैं। इन दोनों जलों का मिलन तभी संभव है जब कुंभ रूपी माया (शरीर) की सत्ता समाप्त हो जाएगी।

"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, इहि तत् कथ्यौ ग्यानी।"

कबीर के आत्म-तत्त्व विवेचन में आत्मानुभूति तथा आत्म-चिंतन है। यदि उन पर उपनिषदों का गहरा प्रभाव है तो गीता का भी है। कहीं-कहीं वे आत्मा की जगह 'प्राण' शब्द का प्रयोग करते हैं तथा उसे मुक्त हंस भी कहते हैं। उनके अनुसार दीपक की ज्योति के समान आत्मा सदैव प्रकाशमान है। यद्यपि कवि ने आत्मा का वर्णन निराकार रूप में किया है, कहीं-कहीं वे साकार रूप में उसका वर्णन करते हैं। इस सन्दर्भ में **डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत** लिखते भी हैं–**"आत्मा के इस साकार वर्णन के अतिरिक्त अन्य सभी स्थलों पर कबीर ने उसको निराकार और निर्गुण ही ध्वनित किया है। वे निज स्वरूप को ही मानते हैं। वे निर्गुण सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। जीव के सत्य स्वरूप को कबीर ने विविध प्रकार से ध्वनित किया है। कभी तो वे आत्मा को अमर कहते हैं, कभी उसे ब्रह्म के समकक्ष मानते हैं और कभी वे उसे घरवासी अद्वैत तत्त्व कहते हैं। आत्मा की चित्तशक्ति में भी कबीर को पूर्ण विश्वास है। वे उसे ज्ञान स्वरूप और सक्रिय एवं स्वयं प्रकाश चेतन तत्त्व मानते हैं। आत्मा के आनन्द-स्वरूप होने में उन्हें कोई सन्देह नहीं है।"**

जब आत्मा परमात्मा की खोज में निकलती है तो उसे सर्वत्र परमात्मा दिखाई देता है, अतः आत्मा उस परमात्मा में लीन हो जाती है। इसे हम आत्मा-परमात्मा की एकता भी कह सकते हैं।

"लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल।"

3. जगत सम्बन्धी विचार–कबीर के काव्य में मानव जीवन के सभी पक्षों पर चिंतन किया गया है। उनके काव्य में अनुभूति पक्ष के साथ-साथ चिन्तन पक्ष भी विद्यमान है। कवि ने जीवन के जिन पहलुओं को देखा, उन पर विचार किया और अपने विचारों को कविता में स्पष्ट किया। वे ब्रह्म, आत्मा, माया आदि पर विचार करते हुए जगत पर भी विचार करते हैं, बल्कि उन्होंने जगत के बारे बहुत कुछ लिखा है। यूँ तो कबीर की कविता पर सदैव उपनिषदों का प्रभाव देखा जा सकता है, परन्तु कबीर का दृष्टिकोण पूर्णतः मौलिक है। उन्होंने अपने काव्य में जिस जगत के स्वरूप का वर्णन किया है, वह उनकी मौलिक उद्भावना है।

कबीर से पूर्व इस संसार के बारे में कई ऋषि-मुनि चिन्तन कर चुके हैं। कबीरदास ने भी इस पर गम्भीरता से चि संसार को एक बाजार की संज्ञा दी। कवि का विचार है कि यह संसार एक ऐसा बाजार है जहाँ सभी लोग व्या हैं। इसे कवि कर्म-क्षेत्र भी कहता है। यहाँ रहते हुए मनुष्य कर्म से मुक्त नहीं हो सकता, परन्तु कुछ लोग व्यापार भी गँवा देते हैं। यदि मूल नष्ट हो गया तो लाभ कहाँ से प्राप्त होगा। पुनः संसार में जन्म तथा मरण का क्रम च होगा। कबीरदास कहते भी हैं–

"यह संसार हाट करि जान, सबको बणि जण आया।
चेति सकै सो चेतौ रे भाई मूरखि मूल गंवाया।"
थाके नैन बैन भी थाके सुन्दर काया।
जामण मरण ए द्वै थाके, एक न थाकी माया।"

एक अन्य स्थल पर कबीरदास ने संसार को अंधा कहा है जिसे कुछ दिखाई नहीं देता। यह उसे चेतावनी दे कोई समझना नहीं चाहता।

सभी प्राणियों को पेट की चिन्ता लगी हुई है। वे भौतिक साधनों का संग्रह करने में लगे हुए हैं। वे जानते है अस्थिर है और उनके शरीर भी नश्वर हैं। जैसे ओस की बूंद क्षण भर में नष्ट हो जाती है, वैसे ही संसार भर की भी में देर नहीं लगती। इस पर कबीरदास कहते भी हैं–

"यह जग अन्धा मैं केहि समझावों।
इक-दुई हों उन्हें समुझावों सबही भुलान पेट के धंधा
पानी के घोड़ा पवन असवरवा ढरिकि परै जस ओस के
गहरी नदिया अगम बहै धरवा खेवनहारा पड़िगा फन्दा बंदा
घर की वस्तु निकल नहीं आवत दियना बारि के ढूंढ़त अन्धा।
लागी आग सकल बन जरिगा बिन गुरु ज्ञान भटकिया बंदा।
कहै कबीर सुनो भई साधो एक दिन जाय लंगोटी झार बंदा।।"

अन्यत्र कबीरदास स्पष्ट करते हैं कि यह संसार मिथ्या है तथा इसकी स्थिति क्षणिक है। यह मानव के लिए दुखद है। राम के बिना यह संसार कोहरे के समान है क्योंकि सिर पर यमराज का पहरा लगा हुआ है। अतः संसार का नाश निश्चित है। इसे उत्पन्न करने में तथा नष्ट करने में कुछ भी समय नहीं लगता। फिर भी मानव विश्वास नहीं करता, वे शरीर को अमर मानता है तथा सद्मार्ग को त्यागकर कुमार्ग पर चलने लगता है। वह स्वयं मरता है और औरों को भी है। कबीरदास कहते भी हैं–

"ना जाणे अमर मेरी काया, घर घर बात दुपहरी छाया
मारग छाँड़ि कुमारग जोवै, आपण मरै और कू रोवै।
कछु एक किया कछु, एक करणां, मुगध न चेत निहचौ मरणा
ज्यूं जल बूंद तैसा संसारा, उपजत बिन सत लगै न बारा।"

कबीरदास ने जगत के बारे में जो कुछ कहा है, उस पर वेदांत के रूप को स्पष्ट कहा जा सकता है। उनकी आत्मानु और आत्मचिंतन उनके जगत संबंधी विचारों में भी देखे जा सकते है। कबीरदास कहते भी हैं–

"पंच तत्त्व अविगत थे उत्पना थके लिया निवासा।
बिछुरे सत फिर सहिज समाना रेख रही नहीं आसा।।"

अंत में डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के शब्दों में–"कबीर की सृष्टि जिज्ञासा अत्यन्त तीव्र है। कबीर वास्तव में स्वप्नवादी किंतु उनका स्वप्नवाद, गौंडवादाचार्य और बौद्धों के स्वप्नवाद के अनुरूप है। प्रत्यक्ष रूप से कहीं उन पर सांख्यों का प्रभाव दिख पड़ता है, किंतु सांख्यों का द्वैतवाद उन्हें मान्य है। उनका ब्रह्म और जगत का संबंध भी यही प्रकट करता है कि वह अद्वैतवादी हैं।

4. माया विषयक विचार–कबीरदास ने अद्वैतवादियों के समान माया को मिथ्या माना है। उनकी माया धर्म और स्वभाव में अद्वैतवादियों की प्रकृति से मेहनती है। कबीर के अनुसार माया ने समस्त संसार को अपने वश में कर लिया है। इसलिए वे ब्रह्म को व्यभिचारिणी तक भी कह डालते हैं। वे कहते भी हैं–

"तू माया रघुनाथ की, खेलड़ चढ़ी अहेड़ै।
चतुर चिकारे चुणि चुणि मारे, कोई द छोड़या नैड़ै।।
मुनियर पीर डिगंबर मारे, जतन करता जोगी।
जगत महि के जंगम मारे, तू रे फिर बलिवंती।।
वेद पढ़न्ता ब्राह्मण मारा, सेवा करता स्वामी।
अरथ करता मिसर पछाड़या तू रे फिरै मैंमंती।।"

कबीर माया के स्वरूप को अच्छी तरह पहचानते हैं। वे उसकी शक्ति को भी पहचानते हैं। उनका विचार है कि माया में बड़ी शक्ति है, वह छोड़ी नहीं जाती। यदि मनुष्य माया को छोड़ने का प्रयास करे तो भी छोड़ी नहीं जा सकती क्योंकि माया फिर से मनुष्य को अपने में लीन कर लेती है। माया ही तो ब्रह्मज्ञान में बाधक है। इसलिए कबीरदास माया को ठगनी कहते हैं। वह संसार में सभी को ठगती रहती है। वह संसार के प्राणियों को अपने मधुर जाल में फंसा लेती है। उससे बच पाना बड़ा कठिन है। कबीर अपनी वाणी में कहते भी हैं–

"माया महा ठगिनी हम जानी।
तिरगुन फांसि लिये कर डोलै, बोले मधुरी बानी।।
केसव के कमला होई बैठी, सिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरत होई बैठी, तीरथ हू में पानी।
भक्तन के भक्तिन होई बैठी, ब्रह्म के ब्रह्मानी।।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, यह सब अकथ कहानी।।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर के माया के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं–**"यह त्रिगुणात्मक प्रकृति की माया है। पर जो माया चैतन्य स्वरूप ब्रह्म को ईश्वर रूप में प्रकट करती है वह सत्व-गुण-प्रधान है, अर्थात् उसमें रजोगुण और तमोगुण का प्रायः अभाव है। कुछ वेदान्ती आचार्य प्रकृति को दो प्रकार की मानते हैं, विशुद्ध सत्व प्रधान और अविशुद्ध सत्व प्रधान। पहली ईश्वर की उपाधि है और दूसरी जीव की। इसलिए कहा जा सकता है कि माया ही संसार को चला रही है। क्योंकि मायोपधिक चैतन्य ही ईश्वर है। इसी भाव को लक्ष्य करके कबीरदास ने कहा था कि रघुनाथ की माया ही है जो शिकार खेलने निकली है। कबीरदास के पदों से जान पड़ता है कि उन्होंने 'माया' को 'अविद्या' से अलग करके नहीं देखा। वेदान्त ग्रंथों में माया और अविद्या की एकात्मकता के पोषक वाक्य बहुत-से मिल सकते हैं। सो माया ही कबीरदास के मत से जीवों को भरमा रही है।"**

माया से बचने के लिए कबीर जी ने उपाय बताया है। वे कहते हैं कि यदि भक्त माया के मिथ्यात्व को अच्छी प्रकार समझ ले और इसे मिथ्या मान ले तो वह माया से दूर रहने का उपाय कर सकता है, फिर यह भक्त की दासी बन जाती है और दासी के समान उसके चारों ओर घूमती रहती है।

वे अपनी वाणी में कहते भी हैं–

"कबीर माया मोहनी, मांगी मिलै न हाथि।
मनह उतारी झूठ करि, तब लागी डोलै साथि।"

इस सिद्धांत को अपनाकर संत लोग माया को अपनी दासी बना लेते हैं। ऐसी स्थिति में माया ईश्वर के स्मरण में बाधा नहीं बनती और हंसात्मा सभी आकर्षणों से मुक्त होकर प्रभु का स्मरण करता है–

"माया दासी संत की, ऊंची देइ असीम।
विलसी अरु लातौं छड़ी, सुमरि सुमरि जगदीस।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. कबीरदास का साहित्यिक परिचय अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर–कबीरदास निर्गुण भक्ति काव्य धारा के प्रवर्तक थे। कबीरदास न केवल कवि थे अपितु महान संत भी थे। वे निरक्षर होते हुए भी महापंडित थे। अभिव्यक्ति की अद्भुत क्षमता उनमें थी। उन्होंने अपने विषय में एक शब्द न कहकर सच्चे भक्त, संत एवं महान समाज सुधारक की भूमिका निभाई है।

कबीरदास का जीवनवृत्त आज तक विवादास्पद बना हुआ है। उनके जन्म एवं जीवन को लेकर विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। उनके जन्म के विषय में यह पद विख्यात है–

"चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भए।।
घन गरजे दामिनि दमके, बूँदें बरसें झर लाग गए।
लहर तालाब में कमल खिले, तहँ कबीर भानु प्रगट भए।।"

उपर्युक्त पद्य के अनुसार कबीर का जन्म सम्वत् 1455 ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को सोमवार के दिन हुआ। लेकिन ज्योतिष गणना के अनुसार यह सम्वत् 1456 में पड़ता है। आचार्य शुक्ल, डॉ. द्विवेदी आदि विद्वान् सम्वत् 1456 को ही कबीर का जन्म वर्ष मानते हैं। लेकिन इण्डियन क्रोनोलॉजी के आधार पर इनका जन्म सम्वत् 1455 ही स्वीकार किया गया है। जनश्रुति के आधार पर वे काशी की एक विधवा ब्राह्मणी से पैदा हुए थे। लोक-लाज के कारण वह इन्हें लहरतारा नामक तालाब के पास छोड़ आई। नीरू और नीमा नामक एक जुलाहा दम्पती ने इनका पालन-पोषण किया। उन्होंने ही इनका नाम कबीर रखा। कबीर का अर्थ है–महान। इनकी पत्नी का नाम लोई था। इनके एक बेटा कमाल और बेटी कमाली थी। स्वामी रामानन्द इनके गुरु थे। सूफी सन्त शेख तकी के सम्पर्क में आने के कारण वे सूफी धर्म और विचारों से प्रभावित हुए।

कबीरदास के व्यक्तित्व का मस्तमौलापन, अक्खड़, निर्भीकता, विद्रोही, क्रांतिकारी आदि प्रमुख विशेषताएं थीं। इनके स्वाभिमानी एवं अक्खड़पन के कारण ही तत्कालीन लोदी शासक सिकन्दर लोदी ने इनके ऊपर कई अत्याचार किए किन्तु वे उसकी परवाह किये बिना अपनी निर्भीक वाणी के माध्यम से समाजसुधार एवं हिन्दू मुस्लिम एकता के काम में जुटे रहे थे।

120 वर्ष की आयु में संवत् 1575 में इनका देहान्त हो गया था।

प्रमुख रचनाएँ–कबीरदास की एकमात्र प्रामाणिक रचना उपलब्ध है–बीजक। इसके तीन भाग हैं–'सखी', 'सबद' और 'रमैनी'। इनके कुछ पद गुरुग्रंथ साहिब में भी संकलित हैं।

साहित्यिक विशेषताएँ–कबीरदास की निर्गुण ईश्वर में विश्वास रखते थे। उनका मत है कि ईश्वर एक है और वह कण-कण में व्याप्त है। उन्होंने सब मनुष्यों को उसी ईश्वर की सन्तान माना है।

उन्होंने बहुदेववाद तथा मूर्ति पूजा का खंडन किया। यही नहीं उन्होंने गुरु को परमात्मा से अधिक महत्व दिया। उनका कहना था कि गुरु की कृपा से ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। यही नहीं कबीरदास ने हिंदू मुसलमानों में प्रचलित अंधविश्वासों, रूढ़ियों तथा आडम्बरों का डटकर विरोध किया और सदाचार तथा मानवधर्म की स्थापना पर बल दिया। वे हिंदुओं तथा मुसलमानों में एकता स्थापित करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने जाति-पांति, वर्ग-भेद का भी विरोध किया। उनका कहना था कि बाह्यआडम्बरों से ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती। सच्चे मन से भक्ति करने पर ही ईश्वर मिलता है। उन्होंने माया का भी विरोध किया।

भाषा शैली–कबीर की भाषा के संबंध में भी एक मत नहीं है। इसका कारण यह है कि उनकी भाषा का कोई एक रूप नहीं है। कबीर की भाषा जन-भाषा है। उनकी भाषा में राजस्थानी, पंजाबी, खड़ी बोली, पूर्वी हिन्दी, ब्रज तथा फारसी आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर की भाषा को 'सधुक्कड़ी' भाषा कहा है, जिसमें विभिन्न स्थानीय बोलियों के शब्दों का भरपूर वर्णन किया गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनकी भाषा के विषय में लिखा है–**"भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा, उसे उसी रूप में कहलवा दिया।"**

प्रश्न 2. कबीर के काव्य के स्वरूप पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर–कबीरदास महान संत, साधक, समाजसुधारक होने के साथ-साथ कवि भी थे। यह बात भी सत्य है कि उनका लक्ष्य काव्य-रचना करना नहीं था अपितु काव्य के माध्यम से अपने विचारों को जन-जन तक पहुँचाना उनका लक्ष्य था। इसलिए कबीर ने जो कुछ कहा उसमें गहन अनुभूति है। कबीर की गम्भीर वाणी में उनका व्यक्तित्व उमड़ा रहता है। उनकी अभिव्यक्ति में काव्य कला का उच्च स्वरूप दिखलाई पड़ता है।

कबीर यद्यपि अपने आप को अनपढ़ घोषित करते हुए कहते हैं–'मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहि हाय।' फिर भी कबीर की वाणी पर्याप्त मात्रा में मिलती है। उनके समस्त काव्य को दो भागों में विभाजित किया गया है–बानी और बीजक। बानी के तीन भाग किये गये हैं–

1. साखी 2. सबद 3. रमैनी।

बीजक में यही तीन रूप मिलते हैं किन्तु उसमें साखी एवं सबद की संख्या कम है। बानी की अपेक्षा बीजक संग्रह बाद में हुआ प्रतीत होती है। कबीर का सम्पूर्ण काव्य मुक्त काव्य है। कबीर की वाणी में जिसे 'साखी' कहा गया है, वस्तुतः वे दोहे हैं। कबीरदार जी के दोहे काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार पूर्ण रूप से खरे नहीं उतरते क्योंकि वे छन्दशास्त्र से अनभिज्ञ थे। गीत व लय में जो शब्द जहाँ और जिस रूप में फिट बैठ गया, उसे वहीं रख दिया। कबीर ने मात्राओं के घटने-बढ़ने की चिंता नहीं की थी। उन्होंने तो अपनी बात को इस रूप कहा है कि जो सुनने वाले हृदय में बैठ जाए और फिर बैठ कर जम जाए। इस दृष्टि से कबीर का काव्य बेजोड़ है। कबीर के 'सबद' और 'रमैनी' संबंधी पदों में कबीर के गहन एवं गूढ़ विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। कबीर के पद विभिन्न राग रागनियों पर आधारित है। उन्हें सरलता से गाया जा सकता है। कबीर के पदों में गुरु के प्रति श्रद्धा, माया से सावधान, ब्रह्म जीवन व जगत जैसे गम्भीर विषयों पर विचार व्यक्त हुए हैं। कबीर की पदावली का अत्यन्त महत्त्व है। भाव व कला की दृष्टि से भी ये अद्वितीय रचनाएँ हैं।

'रमैनी' कबीर के काव्य का अलग रूप है। इसमें उन्होंने चौपाई एवं दोहा छन्दों का प्रयोग किया है। रमैनी भी विभिन्न रागों को आधार बनाकर रची गई है। 'रमैनी' में कबीरदास ने भक्ति के सिद्धान्तों की चर्चा प्रस्तुत की है। रमैनी को विषय की दृष्टि से सृष्टि तत्व, संसार की उत्पत्ति, परमतत्त्व, रामतत्त्व, कर्मकाण्ड आदि चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। इस रचना में कवि ने ब्रह्म के सर्वव्यापक रूप का उल्लेख किया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कबीर के काव्य रूपों में भले ही काव्य कला की कुशलता का अभाव खटकता हो किन्तु भावों के सौंदर्य का सागर उमड़ता हुआ सर्वत्र दिखाई देता है। भले कबीर का लक्ष्य काव्य-रचना न हो, फिर भी उसमें काव्यात्मकता की कमी नहीं है। कबीर के काव्य के विभिन्न रूप है जिनके माध्यम से उन्होंने अपने विचारों को जन-जन तक बड़ी कुशलता से पहुँचाया है।

प्रश्न 3. 'साखी' शब्द के अर्थ पर प्रकाश डालते हुए कबीर की साखियों के महत्व का उल्लेख कीजिए।

उत्तर–कबीर की रचनाओं में सबसे अधिक महत्व साखियों का माना जाता है। 'साखी' शब्द संस्कृत के साक्षी शब्द का अपभ्रंश रूप है। साक्षी का अर्थ है–गवाही अर्थात् जो कुछ स्वयं देखा या अनुभव किया है, वह सच्चाई और ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करना ही साक्षी देना है। इस आधार पर कबीर की 'साखी' का अभिप्राय भी उनके साक्षात् या प्रत्यक्ष अथवा यथार्थ ज्ञान से लगाया जा सकता है। जिस प्रकार एक गवाही देने वाला व्यक्ति अपना आँखों से देखी हुई सच्ची घटना को न्यायाधीश के सम्मुख प्रकट करता है, इसी प्रकार कबीर ने भी अपने साक्षात् अनुभव व यथार्थ ज्ञान को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया है। वस्तुतः साखी ज्ञान की आँख कहलाती है। इन साखियों में विद्यमान ज्ञान के बिना सांसारिक उलझनों से मुक्ति नहीं मिलती–

साखी आँखी ज्ञान की, समझि देखि, मन माहिं।
बिन साखी संसार का, झगरा छूटत नाहिं।।

कबीरदास से स्वयं साखी के महत्व को अनेक स्थलों पर व्यक्त किया है। कबीर ने कहा है कि पदों का ज्ञान प्राप्त करने से केवल मन को प्रसन्नता प्राप्त होती है किन्तु साखी के कहने से आनन्द की प्राप्ति होती है–

"पद गाये, मन हरषिया, साखी कह्या आनन्द।।"

अतः स्वयं कबीर की दृष्टि में पदों की अपेक्षा साखी अधिक महत्वपूर्ण है। कबीरदास ने साखियों के कहने के लक्ष्य पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि परमपिता परमात्मा ने कबीर को यह प्रेरणा प्रदान की है कि वे साखी कहें। सम्भव है भवसागर के प्राणियों में से कोई इन साखियों द्वारा किनारे पर जा लगे–

"हरिजी यहे विचारिया साखी कहौ कबीर।
भौ सागर में जीव हैं, जै कोई पकड़ै तीर।।"

साखी रचना की परम्परा का आरम्भ गुरू गोरखनाथ से माना जाता है। गुरू गोरखनाथ की प्रथम साखी रचना 'जोगेश्वरी साखी' है। संत नामदेव जी के नाम से भी साखी प्राप्त हुई है। कबीर पर गुरू गोरखनाथ एवं संत नामदेव दोनों का प्रभाव देखा जा सकता है। अतः यही कारण है कि कबीरदास ने साखी परम्परा के अनुकूल अपने उपदेशों के प्रचार-प्रसार के लिए साखी को माध्यम बनाया। कबीर ग्रंथावली में 819 साखियां संकलित हैं। कबीर ने अपनी साखियों को अनेक अंगों में विभाजित किया है। जैसे गुरू को अंग, सुमरिण को अंग, विरह को अंग, परचा को अंग, माया को अंग आदि। साखियों में गुरू के महत्व, माया से सावधान, नाम स्मरण की महत्ता, ज्ञान प्राप्ति की महत्ता आदि का सरसता एवं सरलतापूर्वक उल्लेख किया गया है।

लोकानुभव पर आधारित में साखियाँ संसार की असारता, मोहमाया की मृग तृष्णा आदि का विवेचन करके मनुष्य को सही मार्ग दिखाती हैं। वस्तुतः साखियाँ ज्ञान के भण्डार हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि साखियाँ वैयक्तिक अनुभूतियों के भण्डार हैं, प्रगल्भता एवं प्रभविष्णुता में बेजोड़ है। ज्ञान-भक्ति, नैतिकता, व्यावहारिकता, दार्शनिकता, आध्यात्मिकता और लौकिकता से परिपूर्ण हैं। इन साखियों के माध्यम से कबीरदास ने सर्वसाधारण को परमपिता परमात्मा से जोड़ने का प्रयास किया है। कुछ साखियों में कबीरदास ने स्पष्ट शब्दों में परम्परागत रूढ़ियों, धर्म के नाम पर किये गये दिखावे, अन्धविश्वास आदि का विरोध किया है। वे साखियों के माध्यम से परनिन्दा, असत्य, वैर-विरोध, छल-कपट को त्यागकर दया, अहिंसा, करूणा, मधुर वाणी जैसे गुणों को धारणा करने के लिए प्रेरित करते हैं। कहा गया है–

"ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहु सीतल होय।।"

इसीलिए कबीर की साखियों का महत्व स्वतः सिद्ध है। वे अत्यन्त महत्वपूर्ण भावों एवं अद्‌भुत सौंदर्य से ओतप्रोत हैं। इनमें कबीर का सर्वजयी व्यक्तित्व विद्यमान है।

प्रश्न 4. कबीर के काव्य में प्रयुक्त सबद या 'साबदी' पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–कबीर के सबदों को विद्‌वानों ने पद भी कहा है। कबीर सभी पर गेय हैं। इनके लिए 'वाणी' शब्द का प्रयोग भी किया है। गुरू गोरखनाथ की 'शब्दी' कबीर के सबदों व पदों के अन्यन्त निकट है। कबीर ग्रंथावली और आदिग्रंथ में संकलित कबीर के जो पद मिलते हैं उनका विभाजन रागों के आधार पर किया गया है। कबीर की प्रमुख रचना 'बीजक' में पदों को सबद कहा गया है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि पद, वाणी व सबद तीनों ही पर्यायवाची हैं। कबीर की वाणी का यह एक प्रमुख काव्य रूप है। विषय की दृष्टि से इन पदों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–प्रथम लौकिक भाव प्रधान तथा द्वितीय पारलौकिक भाव प्रधान है। लौकिक भाव प्रधान पदों में कबीरदास ने तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र अंकित किया है। इसका प्रमुख कारण है कि कबीर ने अपने युग में प्रचलित सामाजिक रुढ़ियों, बाह्य आडम्बरों, कुप्रथाओं आदि को दूर करने हेतु यथाशक्ति प्रयास किया है। दूसरी ओर उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों में एकता स्थापित करने का भी प्रयास किया है। दोनों धर्मों के लोगों को भटके हुए मार्ग से हटाकर सही मार्ग पर लाने का प्रयास किया है–

जाति पाँति पूछे नहिं कोय।
हरि को भजै सो हरि का होय।।

पारलौकिक विषयों से संबंधित पदों में वैराग्य, सिद्धांत निरूपण, विरह मिलन तथा उलटबासियों आदि का वर्णन है। इन पदों में जहां एक ओर संसार की नश्वरता और सारहीनता का वर्णन है वहां दूसरी ओर प्रभु के नाम स्मरण पर बल दिया गया है। सिद्धांत निरूपण संबंधी पदों में साधना और योग की अनेक बातें समाविष्ट हैं। परन्तु विरह और मिलन के पदों में सन्त कबीर की भक्ति की प्रगाढ़ता देखी जा सकती है। यहाँ कवि ने निर्गुण, निराकार ईश्वर के प्रेम को पदों का विषय बनाया है। अविनाशी पुरुष से विवाह होने के बाद उत्पन्न प्रेम और उल्लास का उदाहरण देखिए–

दुलहिनि गावहु मंगलाचार।
हम घरि आए हो राजाराम भरतार।।

इसी प्रकार से विरहानुभूति के भी असंख्य पद देखे जा सकते हैं जिनमें विरहिणी आत्मा अपने प्रियतम को पाना चाहती है–

बालम आउ हमारे गेह रे, तुम बिनु दुखिया देह रे।
सबको कहै तुम्हारी नारी, मोको यही अंदेह रे।
एकमेक है सेज न सोवै, तब लगि कैसा नेह रे।

अतः स्पष्ट है कि कबीर के काव्य में सबदी या सबदों का महत्वपूर्ण स्थान है। भाव की दृष्टि से नहीं अपितु काव्य कला की दृष्टि से भी अद्वितीय काव्य-रचना है।

प्रश्न 5. कबीर के काव्य रूप 'रमैनी' पर सार रूप में प्रकाश डालिए।

उत्तर–'रमैनी' कबीरदास के काव्य का एक प्रमुख रूप है। इस काव्य रूप में उन्होंने चौपाई और दोहा छंदों का प्रयोग किया है। 'कबीर ग्रंथावली' में रमैनी को विभिन्न राग-रागनियों के आधार पर विभाजित किया गया है। रमैनी में कबीरदास दार्शनिक विचारों की अभिव्यंजना हुई है। इसमें परमतत्व, परमात्मा, जीवन, रामभक्ति, संसार ब्रह्म आदि के विषय में विस्तृत चर्चा की गई है। रमैनी को विषय की सृष्टि से तत्व और संसार की उत्पत्ति, परमतत्त्व, कर्मकाण्ड आदि चार प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है। बीजक की रमैनियों में सृष्टि की रचना प्रक्रिया से संबंधित विचार प्रायः पौराणिक ही है। जीव रूप परमात्मा ने ही अन्तःज्योति को प्रकाशित किया है तथा इससे इच्छा रूपी नारी को उत्पन्न किया है। इसका नाम गायत्री रखा। ब्रह्मा, विष्णु, महेश रति के पुत्र हैं। कबीरदास छः दर्शन 96 पाखण्ड माया आदि की चर्चा करते हुए सिद्ध, साधक, संन्यासी, सुर, नर, मुनि आदि का भी उल्लेख किया है। कबीर ग्रंथावली में संकलित रमैनियों में सृष्टि तत्व पर विस्तार रूप में प्रकाश डाला गया है। रमैनियों में ब्रह्म के सर्वव्यापक रूप का उल्लेख किया गया है। उन्होंने ब्रह्म अथवा परमतत्त्व को मन और वाणी के लिए आगम्य घोषित किया है। इस संबंध में कबीरदास ने लिखा है–

"जस तू तस तोहि कोई न जान। लोक कहै सब अनाहिं आन।
वो है तैसा वो ही जाने, ओ ही अहि आहिं नहिं आने।।"

राम तत्व की व्याख्या करते हुए कहा है कि उसका राम दशरथ सुत नहीं है। वह अवतारों से परे है–

"ना दशरथ धरि औतरि आवा। ना लंक का राव सतावा।।"

बीजक में कुल 84 रमैनियाँ हैं। इन रमैनियों को पृथक्-पृथक् 'सतपदी', 'अष्टपदी', 'बारहपदी', 'चौपदी', 'दुपवती' आदि शीर्षकों के अन्तर्गत रखा गया है। कबीर पंथियों का विचार है कि कबीरदास ने छः लाख छियानबे हजार रमैनियाँ लिखी हैं–

"सहस छानवे और छव लाखा
जग परमान रमैनी भाषा।"

कबीर पंथियों के इस मत में अतिशयोक्ति प्रतीत होती है।

(Most Imp.)

प्रश्न 6. कबीर की सामाजिक विचारधारा पर सार रूप में प्रकाश डालिए।

उत्तर–कबीर का आविर्भाव उस युग में हुआ जब भारतीय समाज पतनोन्मुख था। उस समय हिन्दू मुसलमानों में पारस्परिक धार्मिक द्वेष जोरों पर था। दोनों धर्म के नाम पर लड़ते रहते थे। संकीर्ण विचारों के कारण उस समय धार्मिक अव्यवस्था, सामाजिक विषमता, कुरीतियों एवं कुप्रथाओं का बोलबाला था। धर्म के नाम पर मात्र दिखावा रह गया था। कबीरदास ने अपने युग की विषमताओं को देखा एवं परखा तथा इन समस्याओं को अपने काव्य में स्थान दिया।

संत कबीरदास सामाजिक विचारधारा के प्रगतिशील सुधारक थे। उन्होंने अपने युग में धर्म के नाम पर होने वाले पाखण्डों का तथा अन्धविश्वास का खण्डन किया।

"कांकर पायर जोरि के, मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।।"

कबीरदास ने अपने युग में प्रचलित जातिगत भेदभाव का भी कड़ा विरोध किया है। कबीर के अनुसार सारे संसार के प्राणी एक परमपिता परमात्मा की सन्तान हैं–

"अला एकै नूर उपनाया, ताकि कैसी निंदा।
ता नूर ये सब जग कीया, कौन भला कौन मंदा।।"

एक अन्य स्थान पर कबीरदास जाति-पाँति का विरोध करते हुए कहते हैं–

"जाति-पाँति पूछे नहीं कोय
हरि को भजे सो हरि का होय"

कबीर ने साधना के सभी क्षेत्रों में बाह्याचार का विरोध किया है। उन्होंने प्रदर्शन करने वाले योगियों की निन्दा की है क्योंकि वे कच्चे सिद्ध हैं, जो माया के बंधन में पड़े हैं। लोग शरीर का योग साधते हैं, मन का योग बिरला ही कोई साधता है–

"कबीर तन कौं जोगी सब करै, मन कौ बिरला कोय।
सब सिद्धि सहजी पाइये, जे मन जोगी होय।"

कबीरदास, तीर्थ-व्रत, पूजा अर्चना, रोजा नमाज़ को भी बाह्याचार ही मानते हैं। उन्होंने कहा है कि तीर्थ और व्रत विष की बेल हैं, जो सारे संसार पर छाई हुई हैं। मैंने इसकी जड़ को ही नष्ट कर दिया अन्यथा इससे उत्पन्न विषफल को खाना पड़ता–

"तीरथ, व्रत विष बेलड़ी, सब जग मेल्हा छाई।
कबीर मूल निकंदिया, कौण हलाहल खाई।"

कबीर ने शैवों, शक्तों, वैष्णवों तथा मुसलमानों की बाह्य साधना का खण्डन किया है। मूर्ति पूजा पर प्रहार करते हुए कबीर लिखते हैं कि–

"पाथर पूजे हरि मिलै तो मैं पूजूँ पहार।
ताते ये चाकी भली पीसि खाय संसार।।"

कबीर साम्प्रदायिकता के कटु विरोधी थे। उनकी दृष्टि में धर्म, तन और मन की पवित्रता का नाम है। सच्चे धर्म को भूलने के कारण ही हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सन्मार्ग से भटक गए हैं। वे दोनों को डाँटते हुए कहते हैं–

"अरे इन दोउन राह न पाइ।
हिन्दुअन की हिन्दुआई देखी, तुरकन की तुरकाई।"

कबीरदास केवल आलोचक ही नहीं अपितु सच्चे समाज सुधारक थे। उनके काव्य में परोपकार, सेवा, दया, क्षमता, धर्म, धैर्य, अहिंसा आदि का भी वर्णन किया गया है। उन्होंने जन-जीवन में शुद्धाचरण और सात्विकता पर भी बल दिया है।

प्रश्न 7. कबीर की निर्गुणोपासना का सार रूप में उल्लेख कीजिए। **(Most Imp.)**

उत्तर–कबीरदास ने निर्गुण ईश्वर का वर्णन किया है। उनका ईश्वर पुस्तकीय ज्ञान की सीमाओं में नहीं समा सकता। उसके लिए कबीर ने आत्मानुभूति को ही आधार बनाया है। उनके द्वारा निर्गुण ईश्वर या ब्रह्म की अभिव्यक्ति लौकिक शब्द शक्ति द्वारा नहीं हो सकती। इसलिए कबीरदास ने बताया है निर्गुण ईश्वर का ही स्वरूप नहीं है जो हम ग्रंथों में पढ़ते हैं। उसके स्वरूप का वर्णन करना बहुत असम्भव है। उसका वर्णन तो गूँगे व्यक्ति के लिए मीठे स्वाद के वर्णन के समान कठिन है–

"अविगत अचल अनुपम देख्या कहता कह्या न जाई।
सैन करे मन ही मन रहसैं, गूँगे जानि मिठाई।।"

कबीर के निर्गुण ब्रह्म का मर्म तो चारों वेद, स्मृतियाँ, पुराण, व्याकरण आदि कोई न बता सका–

"चारि वेद जाके सुमृत पुराना, नौ व्याकरण परम न जाना।"

कबीरदास ने अपने निर्गुण ईश्वर को निराकार, परम् तत्व, अलख निरंजन आदि के नाम से पुकारा है। उसे कोई भी ठीक प्रकार से जानकर अभिव्यक्त नहीं कर सका। कबीर का निर्गुण ब्रह्म वर्ण-अवर्ण से मुक्त, आदि, मध्य, अन्त रहित, सृष्टि और लय से परे एवं अकथ्य हैं–

"आदि अंत ताहि नहि मथै, कथ्यौ न जाई आहि अकथे'
अपरम्पार उपजै नहिं विनसै जुगतिन जानये, कथिये कैसे।"

कबीरदास ने अपने निर्गुण ब्रह्म को अनादि अनन्त बताया है। उनका मत है कि जब सृष्टि भी नहीं थी तब भी वह अक्षय तत्व विद्यमान था। भला ऐसे तत्व का वर्णन कौन कर सकता है–

"अवगति की गति का कहूं, जाकर गाँव न नाऊँ।
गुन-बिहिन का पेषिये काकर धरिये नाऊँ।।"

कबीरदास जी का स्पष्ट मत है कि परमतत्व अर्थात् निर्गुण ईश्वर निराकार और अवर्णनीय सत्ता है। वह विश्व के कण-कण में व्याप्त है। उसे आत्मचिंतन के द्वारा सहज अनुभूति के रूप में प्राप्त किया जा सकता है। ऐसे तत्व को अनुभव करना ही साधक की सर्वोच्च साधना है। उनका मत है कि साधक निर्गुण ईश्वर को जिस रूप में अनुभव करता है, उसे उसी रूप में समझना और समझाना दोनों ही असम्भव हैं। सबसे बड़ी बात तो उस निर्गुण निराकार को समझना बड़ी बात है–

"जस तू तस तोहि कोई न जान,
लोग कहैं सब आनहि आन।।"

प्रश्न 8. कबीर की भक्ति भावना पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

उत्तर–कबीर की भक्ति भावना नारद भक्ति सूत्र से प्रभावित है। इसमें भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से भी अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। कबीर दृढ़ विश्वास एवं अनन्य भाव से हरि भक्ति करने का उपदेश देते रहे हैं। ज्ञान, कर्म आदि तो कबीर के लिए साधनस्वरूप रहे हैं, पर भक्ति तो साक्षात् साध्य रही है।

इसके बावजूद कबीर की भक्ति किसी सम्प्रदाय से सम्बद्ध नहीं है। उन्होंने अपने आराध्य के लिए राम, केशव, हरि, रहीम, खुदा, अल्लाह आदि विविध नामों का समान श्रद्धाभाव से प्रयोग किया है। उन्होंने अपने युग की सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप भक्ति के स्वरूप को निर्धारित किया था। इसी के साथ-साथ राम के नाम के प्रति उनका विशेष आग्रह था और वैष्णवों के प्रति विशिष्ट आस्था और श्रद्धा–

"वैष्णव की छपरी भली, नहिं साकत को गाँव।"

कबीर के राम केवल निर्गुण थे। वे रूप-रंग, आकार-प्रकार और जन्म मरणादि से मुक्त हैं। वे सर्वव्यापक, निर्गुण, निराकार, घट-घट व्यापी हैं–

"निर्गुण राम जपहु रे, भाई।
अविगति की गति लखि न जाई।।"

कबीर की भक्ति-भावना में गुरु का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे गुरु को ईश्वर से भी बढ़कर मानते हैं। उनकी मान्यता है कि यदि गुरु न होता तो ईश्वर-भक्ति का मार्ग कौन दिखाता। गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए वे मानते है–

"सतगुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपकार।
लोचन अनंत उघारिया, अनन्त दिखावणहार।"

वस्तुतः कबीर की भक्ति साधना के तीन सोपान हैं–हरि गुणगान, निष्काम भक्ति साधना तथा भगवान के सान्निध्य प्राप्ति का प्रयास। अपनी प्रथम अवस्था में कबीर ने अपने आराध्य को अनेक दिव्य गुणों से सम्पन्न कर सगुण सा बना दिया है, पर इतने से कबीर सगुणोपासक नहीं हो जाते। वस्तुतः अन्तिम दो अवस्थाओं में उनके राम निर्गुण और निराकार ही हैं। कबीर ने निष्काम भक्ति का समर्थन करते हुए सकाम भक्ति को निष्फल सिद्ध किया है। कबीर अपने उपास्य के लिए, उन्हें रिझाने के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने को तैयार हैं–

"नैना अन्तरि आंव तू ज्यौं हौं नैन झपेऊ।
ना मैं देखूँ और कू, न तोहीं देखन देऊं।।"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कबीर सहज भाव की भक्ति में विश्वास रखते थे। उनकी भक्ति में बाह्य आडम्बरों के लिए कोई स्थान नहीं था। प्रेम भाव उनकी भक्ति का अनिवार्य अंग बनकर आया है। उनकी दृष्टि में राम की शरण ही जीवन का आधार है। उन्होंने भक्ति को सबके लिए साध्य बताया है।

प्रश्न 9. कबीर के ब्रह्म विषयक विचारों का उल्लेख कीजिए।

अथवा

कबीर की वाणी में चित्रित पारब्रह्म के स्वरूप पर सार रूप में प्रकाश डालिए।

उत्तर–कबीर निर्गुण निराकार ब्रह्म के उपासक थे जो निर्गुण निराकार हो उसके स्वरूप का वर्णन करना बहुत ही कठिन नहीं अपितु असम्भव भी है। कबीर ने अपने ब्रह्म के विषय में यहाँ तक कहा है, वह तो निर्गुण व सगुण दोनों से परे है–

"निर्गुण सगुण से परे तहाँ हमारौ ध्यान।"

इतना ही नहीं कबीर उसकी पहचान बताने में भी अपने आपको [illegible] मस्तिष्क है, न रूप है और न कुरूप, अपितु जो पुष्प की सुगन्ध से भी पतला होने के कारण अत्यन्त सूक्ष्म है–

"जाके मुख माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुहप बास तें पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप।।"

कबीरदास का मत है कि पारब्रह्म का वर्णन वाणी द्वारा नहीं किया जा सकता। वह वाणी से परे है। वह ज्योतिस्वरूप है किन्तु बाह्य आँखों से नहीं देखा जा सकता। उसे तो केवल अनुभव ही किया जा सकता है–

"पारब्रह्म के तेज का कैसा है उन्मान।
कहिबे कूँ शोभा नहीं, देखया ही परवान।"

कबीर का ईश्वर निर्गुण, निराकार परमात्मा है। वह सगुण से परे की वस्तु है। वही आत्मा रूप में हर प्राणी में विद्यमान है–

"पानी ही तैं हिम भया, हिम ही गया बिलाई।
जो कुछ था सोई भया, अब कछू कहा न जाइ।।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अपनी सारग्राही मनोवृत्ति के अनुकूल ही कबीरदास ने सभी धर्मों में प्रचलित ब्रह्म-भावना के सार तत्त्व को ध्यान में रखते हुए अपने ब्रह्म के स्वरूप को स्पष्ट किया है। उनका परब्रह्म निर्गुण, निराकार एवं सर्वत्र व्याप्त है। उसकी अनुभूति से मानव-जीवन में सुख प्राप्त होता है तथा सभी प्रकार के दुख नष्ट हो जाते हैं।

प्रश्न 10. कबीर के जीव संबंधी विचारों का सार रूप में उल्लेख कीजिए।

अथवा

जीव तत्त्व के विषय में कबीर के विचारों का वर्णन कीजिए।

उत्तर–कबीर ने जहाँ ब्रह्मतत्व पर विचार व्यक्त किये तो वहाँ पर भी बताया है जीवात्मा का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वह परमात्मा का ही एक अंश या लघु रूप है। यही कारण है कि कबीरदास जीवात्मा को न मनुष्य कहा, न देवता, न इसे योगी और यती कहा, न ही इसे अवधूत की संज्ञा दी। इसे माता, पिता, पुत्र आदि कोई नाम नहीं दिया। न ही इसे गृहस्थी, राजा, रंक कहा तथा न ही इसे ब्राह्मण ही कहा। अपितु इसे राम का अंश मानकर यह घोषित किया है कि जिस प्रकार कागज के ऊपर से स्याही का चिह्न नहीं मिटता, उसी प्रकार यह भी नित्य एवं निर्विकार रूप में विद्यमान रहता है–

"ना इहु मानसु न इहु देउ।
ना इहु जति कहावै केउ।।
ना इहु जोगी ना अवधूता।
ना इहु माइ न काहू पूता।।

....

कहै कबीर इहु राम का अंसु।
जस कागद पर मिटै न अंसु।।"

कबीर का मत है कि माया के भाव से प्रभावित होकर यह जीवात्मा संसार के जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा रहता है। जब यह माया के प्रभाव से मुक्त हो जाता है, वैसे यह परम तत्त्व का ही रूप है और परमात्मा और जीवात्मा में निरन्तर अद्वैत का भाव बना रहता है। जब तक इस दृश्यमान जगत का आवरण इस जीवात्मा पर पड़ा रहता है तब तक यह परमतत्व से अलग होकर भटकता रहता है।

कबीरदास ने जीवात्मा और परमात्मा के अद्वैतभाव को अनेक स्थानों पर अभिव्यक्त किया है तथा बूँद और समुद्र का उदाहरण देकर यह घोषित किया है कि ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर आत्मा परमात्मा में और परमात्मा आत्मा में पूर्ण विलीन हो जाता है। फिर दोनों का कोई अलग अस्तित्व नहीं रह जाता–

"हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराय।
बूँद रुझानी समुद्र में, सो कत हेरी जाए।।"

कबीर की आत्मा ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए व्याकुल रहती है। वे इस विरह को अधिक मानते हैं तथा स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जो आत्मा है वही परमात्मा है, जो परमात्मा है वही आत्मा है। जो इस तथ्य को समझ जाता है–

"सेई तुह रोई हम एक कहियत, जब आपा पर वहीं जाना।
ज्यू जल में पसि न निकासै, कहै कबीर मम माना।।"

प्रश्न 11. कबीर वाणी में अभिव्यक्त जगत् संबंधी विचारों का सार रूप में उल्लेख कीजिए। (Imp.)

उत्तर–कबीर के अनुसार जगत का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। केवल माया के कारण ही इसकी सत्ता का आभास होता है। वैसे सर्वथा मिथ्या है। इस पर नाम और रूप का आरोप होने के कारण वह सत्य प्रतीत होता है अन्यथा इस जगत् का मूल आधार भी परब्रह्म ही है क्योंकि जिस प्रकार सोने से अनेक आकार-प्रकार के आभूषण बनते हैं, उसी प्रकार यह नाना नाम रूपात्मक संसार भी उसी परब्रह्म से उत्पन्न होता है और अन्ततः उसी में विलीन हो जाता है–

"जैसे कंचन के भूषण में कहि गालित बाहिंगे।
ऐसे हम लोक वेद के बिछुरै सुन्निहि माहि समाहिंगे।।"

वे संसार के मिथ्या भाव को प्रकट करने के लिए उसे सेमल का फूल, आकाश नीलिमा, धुआँ धरोहर आदि कहते हैं। वे स्पष्ट घोषणा करते हैं–

"यहुं ऐसा संसार है, ज्यों सेमर का फूल,
दिन दस के व्यवहार में झूठै रंग न भूल।।"

प्रायः मानव के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ। कबीरदास भी सृष्टि को देखकर उसके रहस्य को जानना चाहते हैं।

कबीर ने सृष्टि की उत्पत्ति और लय का कारण तो परमात्मा को माना है। परन्तु उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया कि सृष्टि कैसे उत्पन्न हुई तथा किस क्रम से हुई। यह जिज्ञासा होने पर भी कबीरदास संसार को रहस्यमय घोषित करते हैं। परन्तु उन्हें यह एहसास भी होता है कि सृष्टि में कोई अव्यक्त सत्ता निवास करती है–

"जो तुम देखो सो यहु नाहीं यहु पद अगम अगोचर माँही।
कहै कबीर जे अम्बर जाने ताहीं सूं मेरा मन मानै।।"

अन्यत्र कबीरदास स्पष्ट करते हैं कि यह संसार मिथ्या है तथा इसकी स्थिति क्षणिक है। यह मानव के लिए दुःखदायी भी है। राम के बिना यह संसार कोहरे के समान है क्योंकि सिर पर यमराज का पहरा लगा हुआ है। अतः संसार का नाश पूर्णतया निश्चित है। इसे उत्पन्न करने में तथा नष्ट करने में कुछ भी समय नहीं लगता। फिर भी मानव विश्वास नहीं करता, वे अपने शरीर को अमर मानता है तथा सद्मार्ग को त्यागकर कुमार्ग पर चलने लगता है। वह स्वयं मरता है और औरों को भी रूलाता है। कबीरदास कहते भी हैं–

"ना जाणे अमर मेरी काया, घर घर बात दुपहरी छाया
मारग छाँड़ि कुमारग जोवै, आपण मरै और कू रोवै।
कछु एक किया कछु, एक करणां, मुगध न चेत निहचौ मरणा
ज्यूँ जल बूँद तैसा संसारा, उपजत बिन सत लगै न वारा।"

अतः स्पष्ट है कि कबीर के मतानुसार जगत् सर्वथा मिथ्या है और तनिक भी सत्य नहीं है। ब्रह्म का ज्ञान होते ही माया का आवरण हट जाता है तब केवल ब्रह्म की सत्ता ही शेष रह जाती है। **दिवस चारि क्या पेषणा विनसि जाएगा काल्हि** कहकर जगत की क्षण भंगुरता की घोषणा की है।

प्रश्न 12. कबीर के काव्य में व्यक्त 'माया' संबंधी विचारों का सार रूप में उल्लेख कीजिए।

उत्तर–कबीरदास ने माया को मिथ्या माना है। कबीरदास का मत है कि सारा संसार माया के वश में है अर्थात् उससे प्रभावित है। रजस, तमस व सत्य ये तीनों गुण ईश्वर के नहीं अपितु माया के हैं। ईश्वर तो निर्गुण निराकार है। इस जगत का जन्म माया की प्रकृति से ही होता है किन्तु यह माया सम्पूर्ण जगत को अपने वश में करके उसके चरित्र को भ्रष्ट कर देती है। इसी कारण कबीर ने माया का व्यभिचारिणी कहा है।

माया ही संसार को अज्ञान के अंधकार में धकेलती है। अतः कबीर ने माया की इसी प्रवृत्ति के कारण उसे पापिणी, मोहिनी, विश्वासघातिनी, ठगिणी, सर्पिणी, डाकिनी आदि कहा है। आत्मा माया के प्रभाव में आकर अपने स्वरूप को भूलकर संसार को सत्य समझने लगती है। कबीर की दृष्टि में सारा जगत् मायामय है। कबीर दास का कथन है–

"माया महाठगिनी हम जानी
निरगुन फाँस लिए कर डौलै बोले मधुरी वानी
कबीर माया पापणी फंद लै बैठी हाटि,
सब जग तो फंदै पाड्या गया कबीर काटि।।"

कबीरदास ने माया के कनक और कामिनी दोनों प्रधान प्रतीक बताए हैं। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह ये पाँचों उसके मित्र हैं। इन्हीं के सहयोग से माया जीव को अपने फंदे में फांस लेती है। कबीर ने ईश्वर को माया के खसम (स्वामी) के रूप में चित्रित किया है। उनका कथन है–

"एक पुरूष, एक है नारी, ताकर करुहू विचारा।।"

कबीरदास ने जीव की सांसरिक यात्रा का मूलकारण भी माया को ही बताया है। माया के भ्रम में भ्रमित होकर जीव ईश्वर विमुख हो जाता है तथा वह आवागमन के चक्कर में पड़ जाता है तथा दुःख भोगता रहता है।

कबीरदास ने माया से बचने के लिए ईश्वर की शरण को उत्तम उपाय बताया है। ईश्वर की प्राप्ति के लिए माया मोह को त्यागना पड़ता है। जो लोग माया को त्यागने में सफल हो जाते हैं माया उनकी चेरी बनकर उनके साथ-साथ डोलती फिरती है। कबीर ने अपनी वाणी में कहा है–

"कबीर माया मोहिनी, मांगी मिलै न हाथि।
मनह उतारी झूठ करि, तब लागी डोलै साथि।।"

कबीर के इस मत को अपनाकर संत लोग माया को अपना दास बना लेते हैं। ऐसी स्थिति में माया ईश्वर की भक्ति में बाधा नहीं बनती। तब सभी आकर्षणों से मुक्त होकर ईश्वर को स्मरण करना सम्भव होता है–

"मायादासी संत की ऊँची देइ असीम।
बिलसी अरू लातौं छड़ी, सुमरि सुमरि जगदीश।।"

प्रश्न 13. कबीर के काव्य की प्रासंगिकता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। **(Most Imp.)**

उत्तर–प्रासंगिता का अर्थ है–आधुनिक युग के सन्दर्भ में पूर्ववर्ती रचनाकार के नैतिक तथा सामाजिक मूल्यों का विवेचन करना। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जब कोई साहित्य अपने युग की समस्याओं के निराकरण प्रस्तुत करने हेतु लिखा जाता है। यदि वही साहित्य परवर्ती किसी युग की समस्याओं का भी निवारण करने में समर्थ हो, तो कहा जाता है कि वह साहित्य इस युग में प्रासंगिक है। प्रासंगिकता की दृष्टि से जब कबीर के साहित्य का अध्ययन करते हैं, तो कह सकते है कि मध्यकाल के जिस युग में कबीर का काव्य रचा गया उस युग और आज के युग में बहुत सी समस्याएँ समान हैं। अतः प्रायः जिन समस्याओं का समाधान करने में कबीर का काव्य उस युग में सक्षम था, वह आज के युग में भी उतना ही कारगर सिद्ध है।

कबीरदास ने अपने युग में फैले धार्मिक आडम्बरों का खण्डन किया और जातिगत भेदभाव को समाप्त करके समाज में एकता स्थापित करने का प्रयास किया। इसलिए उसे तत्कालीन शासक इब्राहिम लोदी के कोप का भाजन बनना पड़ा। इसी प्रकार कबीरदास ने निम्न जाति के लोगों की दयनीय दशा और उच्च जाति के लोगों द्वारा उनके शोषण का भी कड़े शब्दों में विरोध किया। कबीरदास तत्कालीन पीड़ित और शोषित जाति के लोगों को समाज में उच्च स्थान दिलाने का प्रयास किया। कबीर ने तत्कालीन, ब्राह्मण व काजी को भी उनके कर्त्तव्यों का बोध कराया–

"सो हिन्दू सो मुसलमान जा का धर्म रहे ईमान।
जो ब्राह्मण जो कहे, ब्रह्म ज्ञान, काजी जो जाने रहिमान।।"

.....

"भूला भरमि परै जो कोई।
हिन्दु तुरक झूठ फुल दोई।।"

.....

हिन्दू और मुस्लिम धर्म आज भी व्याप्त पाखण्डों के लिए कबीर काव्य सटीक मार्गदर्शन करता है–

"कांकर पत्थर जोड़ के मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ मुल्ला बाँग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।।"

.....

"पत्थर पूजै हरि मिलै तो मैं पूँजू पहार।
ताते तो चाकी भली पीस खास संसार।।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि कबीर मूर्ति पूजा तथा मिथ्याचारों को समाप्त करने के पक्ष में थे। इस दृष्टि से उनकी वाणी आज भी प्रासंगिक है।

कबीरदास ने जातिगत भेद भाव को समाप्त करके समाज में एकता स्थापित करने का सफल प्रयास किया था। उन्होंने सभी मनुष्यों को एक ईश्वर की सन्तान बताकर सबको समान समझाने का उपदेश दिया है। जातिगत भेद भाव का जोरदार शब्दों में खण्डन किया है–

"जाति-पाँति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई।"

कबीर ने अपने काव्य के माध्यम से कुरीतियों को त्यागकर सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया आदि उदात्त गुणों को धारण करने का सन्देश दिया है। उनको यह सन्देश आज भी हमारे समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

प्रश्न 14. कबीर को क्रांतिकारी युगद्रष्टा कहना कहाँ तक उचित है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–कबीर का युग अत्यन्त पतनशील युग था। जीवन के हर पक्ष में अंधकार छाया हुआ था। उन्होंने तत्कालीन, संकीर्ण सामाजिक, राजनीतिक, सामाजिक व धार्मिक वातावरण का खण्डन व विरोध करके एक ऐसे युग या वातावरण का आरम्भ करने का प्रयास किया था जिसमें जीवन को सहज रूप में किया जा सकता था। उन्होंने उन सब परम्पराओं व पाखण्डों का कड़ा विरोध किया था जो मानव जीवन के सहज विकास में बाधक बने हुए थे। उन्होंने अपने नवीन विचारों से भारतीय समाज में क्रांति उत्पन्न की थी। इसके उन्हें तत्कालीन शासकों का कोपभाजन भी बनना पड़ा था।

कबीर ने अपने काव्य के माध्यम से सामाजिक विषमता को अन्याय घोषित किया तथा आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा लोगों में सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जागृति उत्पन्न की। तत्कालीन समाज में जातिगत भेदभाव इतना जोरों पर था कि निम्न जाति के लोगों का जीना दूभर हो रहा था। कबीर ने जातिगत स्तर पर व्याप्त भेद का खण्डन किया और सारे लोगों को एक ईश्वर की सन्तान घोषित किया। जब पिता एक है तो फिर भेदभाव कैसा–

"अला एकै नूर उपजाया ताकी कैसी निंदा।
ता नूर ये सब जग कीमा, कौन भला कौन मंदा।।"

इसी प्रकार जाति-पांति का विरोध करते हुए कहते हैं–

"जाति पाँति पूछे नहि कोय।
हरि को भजै सो हरि का कोय।।"

कबीदास की इस घोषणा ने निम्न जाति के लोगों के लिए ईश्वर भक्ति के द्वार खोल दिये थे और कबीरदास निश्चित रूप से जनकवि थे। उन्होंने जनता की भावनाओं और आकांक्षाओं को भली-भांति समझा। यही कारण है कि उन्होंने जन भाषा का सहारा लेते हुए समाज की विषमताओं पर प्रहार किये ताकि जनता भी समझ सके। अपनी इन्हीं युगांतकारी विशेषताओं के काव्य के क्रांतिकारी कवि बन सके थे। कबीर की इन्हीं विशेषताओं को देखते हुए **आचार्य परशुराम चतुर्वेदी** जी ने लिखा है–

"सन्त कबीर की गणना उन इने-गिने महान् पुरुषों में निस्सन्देह की जा सकती है, जिन्होंने अपने समसामयिक समाज की गतिविधियों को भलीभांति परखना तथा ऐसे आवश्यक मोड़ देना अपना परम कर्तव्य समझा। उन्हें अपने समाज के अन्तर्गत चाहे पर्याप्त योग्यता अर्जित करने का कभी समुचित अवसर मिला हो, परन्तु वे इस कारण कभी विचलित व हताश नहीं हुए। उनके पास आत्मबल था और दुर्दम्य साहस था, इसी कारण उन्होंने विपथ पर चलकर भटकने वालों को चाहे वे किसी भी उच्च स्तरीय वर्ग के क्यों न रहे हों, अपनी भूलों पर एक बार दृष्टिपात करने के लिए सजग कर देना चाहा। ऐसा करते समय उन्होंने किसी भी वर्ग विशेष का पक्ष नहीं लिया और न ही कोई पक्षपातपूर्ण प्रहार किया।"

कबीरदास भक्तिकाल के सर्वाधिक प्रासंगिक कवि थे। ... तत्कालीन, सामन्ती समाज के प्रति अपना आक्रोश निर्भय होकर तीखे शब्दों में व्यक्त किया। एक तरफ तो कबीर का विद्रोही स्वर है तो दूसरी ओर पारब्रह्म के प्रति उनका समर्पण है। इसीलिए कबीर की विशिष्ट पहचान है।

प्रश्न 15. कबीर के काव्य में प्रयुक्त भाषा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

अथवा

कबीर भाषा के बादशाह थे। इस कथन के आधार पर कबीर की भाषा पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–कबीर की भाषा के विषय में एकाएक निर्णय लेना आसान काम नहीं है, क्योंकि उनकी भाषा का कोई एक रूप नहीं मिलता। उनकी भाषा सरल एवं स्पष्ट होते हुए भी भाव के अनुसार बदलती हुई या नाना रूप धारण करती हुई आगे बढ़ती है। उनकी भाषा में अद्भुत भावाभिव्यक्ति क्षमता है। उन्होंने भाषा जो चाहो जिस रूप में चाहा सहज ही कहलवा लिया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनकी भाषा के विषय में लिखा है–**"भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा, उसे भाषा से उसी रूप में कहलवा लिया है। बन गया तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा दे कर। भाषा कबीर के सामने कुछ लाचार भी नज़र आती है। उसमें हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी बात को पूरा न कर सके और अकथ कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की जैसी ताकत कबीर की भाषा में है, वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है।"**

कबीर के काव्य की भाषा ब्रज भाषा है किन्तु उसमें पंजाबी, राजस्थानी, खड़ी बोली, ब्रजभाषा व संस्कृत के शब्दों का सार्थक प्रयोग किया गया है। विभिन्न बोलियों के शब्दों का भी भरपूर उपयोग कबीर की काव्य भाषा में किया गया है। इसलिए उनकी भाषा को कोई एक निश्चित नाम देना भी कठिन कार्य है। कबीर के काव्य की भाषा में ब्रजभाषा की क्रियाओं के साथ-साथ राजस्थानी, पंजाबी एवं अरबी-फारसी आदि के शब्दों का परिचय भी मिलता है। इस तथ्य को देखते हुए विद्वानों ने उनकी भाषा को 'सधुक्कड़ी' भाषा कहा है।

कबीर के युग में संस्कृत धर्माधिकारियों की भाषा थी किन्तु कबीर ने संस्कृत भाषा के प्रयोग की अपेक्षा तत्कालीन जनभाषा का प्रयोग किया। संस्कृत उस समय कुछ लोगों की भाषा थी। कबीर दास ने उसे 'कूप जल' कहा तथा जन भाषा को बहता नीर बताया। कबीरदास ने जन भाषा को व्यावहारिक रूप प्रदान करने हेतु विभिन्न बोलियों व लोक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया। कबीर के काव्य की भाषा में कहीं बनावटीपन नहीं है। उनकी भाषा में सर्वत्र सरलता, सरसता एवं स्वाभाविकता के दर्शन होते हैं, उसमें भावाभिव्यक्ति की भरपूर क्षमता है। कबीर की सरल एवं सहज भाषा का यह उदाहरण देखिए–

"सतगुरु हम पर रीझि कर, एक बह्या प्रसंग।
बरस्या बादल प्रेम का, भीजि जाइ सब अंग।।"

कबीरदास ने विविध अलंकारों का सहज प्रयोग किया है जिससे उनकी भाषा एवं भावों में आकर्षण स्वतः समाहित हो गया। कबीरदास ने दोहा छंद के अतिरिक्त चौपाई छंद तथा विविध राग रागिनियों का भी प्रयोग किया है। उनका सम्पूर्ण काव्य गेय है। उपमा एवं दृष्टांत का यह उदाहरण देखिए–

"पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जात।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा प्रभात।।"

लोक प्रचलित मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग से कबीर के काव्य की भाषा अत्यन्त सारगर्भित एवं सुगठित बनी हुई है। यथा–

"पाँव कुल्हाड़ी मारिया मूरख अपने हाथ।"

लोकोक्ति का सफल प्रयोग देखते ही बनता है–

"आछे दिन पाछे गए, हरि सै कि न हेत।
अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।।"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कबीर का भाषा पर पूर्ण अधिकार था। उनकी भाषा में सादगी और अभिव्यंजना शक्ति का अद्भुत समन्वय है। सम्प्रेषणीयता उनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है। अनुभूति की तीक्ष्णता के कारण उनकी भाषा सर्वत्र प्रभावशाली बन पड़ी है। भाषा-प्रयोग की दृष्टि से कबीरदास बेजोड़ थे।

प्रश्न 16. कबीर के काव्य शिल्प पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। **(Most Imp.)**

उत्तर–कबीर पहले संत हैं बाद में कवि। उनका लक्ष्य काव्य-रचना नहीं था। काव्य को तो उन्होंने अपने विचारों को जन-जन तक पहुँचाने का साधन बनाया था। इस दृष्टि से यदि कबीर के काव्य का अध्ययन किया जाए तो वहाँ भाव पक्ष की श्रेष्ठता ही दिखाई देगी तथा कला पक्ष गौण। कबीरदास एक सच्चे कवि की भाँति युगदृष्टा थे। उन्होंने अपने युग को और युगीन जीवन की अत्यन्त निकटता से देखा व परखा था। उसमें व्याप्त बुराइयों व अच्छाइयों को देखकर उनके प्रति अपनी धारणा बनाई। उन धारणाओं को अनुभूति और कल्पना के बल पर अपनी वाणी (काव्य) में सशक्त रूप में अभिव्यक्त किया।

यथा–

"झूठे को झूठा मिलै, दूणा बहौ सने हे।
झूठे को साँचा पिलै, तब ही टूटै नेह।।"

कबीरदास इस दोहे को देखकर उनके कवि होने पर कोई सन्देह नहीं रह जाता। उन्होंने कितने बड़े सत्य को व्याख्यात्मक आवाज में लपेटकर जन सामान्य के समक्ष प्रस्तुत किया है। निश्चय काव्य का भाव पक्ष काव्य की आत्मा है। किन्तु भाव पक्ष को सही अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए काव्य के सशक्त कला पक्ष का होना भी आवश्यक है। इस दृष्टि से कबीर का काव्य सफल काव्य कहा जा सकता है। कबीर का काव्य अनुभूतियों से परिपूर्ण है। कबीर की पैनी दृष्टि युगीन जीवन की तह तक पहुँच कर उसके गुण दोषों को ढूँढ़ निकालने में सफल रहीं है। किन्तु कुछ विद्वान उनकी खिचड़ी भाषा को देखकर उन्हें कवि मानने से इन्कार कर देते हैं। निश्चय ही कबीरदास के काव्यशास्त्र का ज्ञान नहीं था तथा न ही काव्य शास्त्र के नियमों को अनुकूल काव्य-रचना की। वे इस सत्य को स्वीकार करते हैं–

"मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहि हाथ।"

निश्चय ही कबीर के काव्य में सूरदास एवं तुलसीदास के काव्य जैसी सुखद अनुभूति व सरसता नहीं है। यही कारण है कि कुछ विद्वानों ने उनके काव्य पर प्रश्न चिह्न लगा दिये हैं। **डॉ. रामकुमार वर्मा** ने कबीर के काव्य के विषय में लिखा है– **"कबीर का काव्य बहुत स्पष्ट एवं प्रभावशाली है। यद्यपि कबीर ने पिंगल और अलंकार के आधार पर रचना नहीं की। तथापि उनकी काव्यानुभूति इतनी उत्कृष्ट है कि वे सरलता से महाकवि कहे जा सकते हैं।"** इसी प्रकार डॉ. माता प्रसाद ने लिखा है, **"यदि कविता विचार और भावनाओं की प्रभावपूर्ण सरस अभिव्यक्ति मात्र है तो कबीर के काव्य में कवित्व की कमी नहीं है और निःसन्देह अपनी इस विशेषता में किसी से कम नहीं है।"**

उपर्युक्त विद्वानों के कथनों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कबीर भले संत व भक्त पहले थे। उनकी वाणी में जीवन मुक्त संत के गूढ़ एवं गम्भीर अनुभूतियों का भंडार है। उनकी वाणी में व्यक्तित्व की भी कमी नहीं है। उनकी अनुभूति की अभिव्यक्ति में काव्य-कला के दर्शन सर्वत्र होते हैं। उनकी वाणी में जहाँ गुरु की महिमा, निर्णय ईश्वर में विश्वास, जातिगत भेदभाव का विरोध, मूर्ति पूजा व बाह्याडम्बरों का विरोध, विरह भावना एवं संयोग चित्रण, ब्रह्म, जीव, जगत आदि संबंधी भावों का वर्णन हुआ है, वहीं उन्होंने इन भावों की अभिव्यक्ति हेतु कल्पना, प्रतीक, बिम्ब, अलंकार, छन्द, विषयानुकूल भाषा की सफल योजना करके अपने भावों को सशक्त काव्य शिल्प में ढाला है। इससे स्पष्ट है कि कबीर काव्यशास्त्र के नियमों व काव्य रूढ़ियों से अनभिज्ञ होते हुए भी महान शब्द चितेरे और महान कवि थे। काव्य मर्मज्ञ न होकर भी महान काव्य शिल्पी थे।

प्रश्न 17. कबीर के काव्य में प्रयुक्त अलंकारों का सार रूप में उल्लेख कीजिए।

उत्तर–अलंकार शब्द की उत्पत्ति दो प्रकार से मानी गई है–

"अलंकरोति इति अलंकारः या अंलक्रियतेऽनेन इति अलंकारः।"

अर्थात् जो अलंकृत करता है, जो सुशोभित करता है, सजाता है, संवारता है, वही अलंकार है। अलंकारों का प्रयोग भावों को सुस्पष्ट करने प्रभावोत्पादक बनाने के लिए किया जाता है। किन्तु कबीरदास का लक्ष्य अलंकार प्रयोग करना नहीं था अपितु अलंकार सहज एवं स्वाभाविक रूप में भावों को स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त हुए है। काव्य में चमत्कार प्रदर्शन हेतु अलंकारों का प्रयोग करना कबीर का लक्ष्य नहीं था।

काव्य शास्त्र के अनुसार अलंकार तीन प्रकार के होते हैं–शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा मिश्रित अलंकार। कबीर के काव्य में तीनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग हुआ है। कबीर ने अलंकार प्रयोग के लिए विशेष प्रयोग नहीं किया है। कबीर के काव्य में प्रस्तुत अलंकार उनके भावों को स्पष्ट, सरल, सरस एवं प्रभावोत्पादक बनाते हैं। कबीरदास के काव्य में यद्यपि सभी प्रकार

के अलंकारों का प्रयोग हुआ है फिर भी उनके काव्य में रूपक और अन्योक्ति अलंकारों का ही सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

रूपक– नैनों की करि कोटरी, पुतरी पंलग बिठाय।
पलकों की चिक डारिकै पिय को लिया रिझाय।।

दृष्टांत– संत न छाड़ै संतई जो कोटिक मिलै असंत।
मलय भुजंगहि बेधिया, सीतलता न तजंत।।

अन्योक्ति– माली आवत देखि करि कलियाँ करी पुकार।
फूले फूले चुनि लिए, काल्हि हमारी बार।।

उपमा– यहु ऐसा संसार है, जैसा सेंबल फूल।
दिन दस के ब्योहार कौ, झूठे रंगि न भूल।।

कबीर के रूपकों के अतिरिक्त उनकी उपमाएँ भी काफी आकर्षक बन पड़ी हैं। उपमाओं में भी उन्होंने प्रायः परम्परागत उपमानों का प्रयोग न करके मौलिक उपमानों का प्रयोग किया है। साथ ही इनका संबंध सामान्य जीवन की वस्तुओं से है।

इनके अतिरिक्त कबीरदास ने उत्प्रेक्षा, अत्युक्ति, लोकोक्ति, विभाजन, वक्रोक्ति अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग, दृष्टांत, असंगति विशेषोक्ति आदि अलंकारों का सफल प्रयोग किया है। उपमा अलंकार का उदाहरण देखिए–

"पानी केरा बुदबुदा ज्यों मानस की जात।
देखत ही छिप जायेगा ज्यों तारा प्रभात।।"

प्रश्न 18. कबीर काव्य में प्रयुक्त छन्द विधान का सार रूप में वर्णन कीजिए।

उत्तर–कबीरदास संत पहले और कवि बाद में हैं। उन्होंने काव्य की रचना अपने विचारों एवं उपदेशों को जनता तक पहुँचाने के लिए साधन के रूप में की है। उन्हें काव्य शास्त्र का ज्ञान नहीं था। इसलिए सहज रूप में जिन छंदों का प्रयोग हुआ, उन्होंने उन्हीं छंदों का प्रयोग किया है। इसलिए कबीर ने अपनी वाणी में प्रायः दोहा छंद का ही प्रयोग किया है। इस छंद के प्रयोग में कवि को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। गागर में सागर भरने की जो बात बिहारी के लिए कही जाती है, वही कबीर के विषय में भी कही जा सकती है। कवि के एक-एक दोहे में भाव सागर भरा हुआ है। एक उदाहरण देखिए–

यहु ऐसा संसार है जैसा सेमल फूल।
दिन दस के त्योहार कौ, झूठे रंगिन भूलि।।

.....

चंवन की कुटकी भली, नां बँबूर की अपराऊँ।
बेश्नों की छपरी भली, ना साकत का बड़गाउँ।।

इन दोहों में अनेक भावों का सम्मिश्रण है। दोहा छंद के अतिरिक्त कबीर ने अपने पदों में गौढ़ी, रामकली, आसावरी, केदारों कोढ़ी, बिलावल, ललित, वसंत, कल्याण, सारंग, मलाल तथा धनाश्री रागों का भी सफल प्रयोग किया है। विशेषकर कबीर के सभी पद विभिन्न राग रागिनियों में रचित हैं तथा इनमें तुक का विधान रखा गया है तथा रमैणी की रचना चौपाई छंद के आधार पर की गई है। यथा–

जिन कलमां काल माँहि पढ़ावा। कुदरत खोज तिनहूं नहिं पावा।
करम करीम भए करतूता। वेदा करनि भए दोउ रीता।

प्रश्न 19. कबीर के रहस्यवाद पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर–रहस्यवाद क्या है? इस संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है, उसे रहस्यवाद कहते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा ने रहस्यवाद का जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन कहा है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्चल संबंध जोड़ना चाहती है और यह संबंध इतना बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता। महादेवी वर्मा के अनुसार, अपनी सीमा को असीम तत्व में खो देना ही रहस्यवाद है।

कबीर हिन्दी के प्रथम [illegible] कहे जा सकते हैं। उनकी अनेक साखियों और पद में उस अज्ञात सत्ता के प्रति नाना प्रकार की अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं। कबीरदास ने अनेक स्थलों पर परमतत्त्व से संबंध स्थापित करते हुए उसका परिचय दिया है। कबीर की रहस्यवादी चेतना के गहन अध्ययन करने से पता चलता है कि उनका रहस्यवाद, वेदांत, हठ्योग तथा सूफियों के प्रेम तत्व पर आधारित है। कबीर ने एक सच्चे अद्वैतवादी की भांति सम्पूर्ण संसार में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया है। उनका मत है–

''पारब्रह्म के तेज का कैसा है उन्मान,
कहिबे कूँ सोभा नहिं देखा हि परमान।''

कबीरदास आत्मा परमात्मा की एकता पर बल देते हैं। वे आत्मा को परमात्मा का ही अंश स्वीकार करते हैं। किन्तु उनके भेद का कारण माया के प्रभाव को बताते हैं।

''ना इहु मानसु न इहु देउ।
ना इहु जति कहावै सेउ।।
ना इहु जोगी ना अवधूता।
ना इहु माइ न काहू का पूता।।
....
कहै कबीर इहु राम का अंसु।
जस कागद पर मिटै न मंसु।।''

कबीर की रहस्यवादी चेतना में रहस्यवाद की सभी प्रमुख स्थितियों का वर्णन मिलता है। जिज्ञासा तत्त्व के कारण ही कबीर उस परमतत्त्व को जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक दिखाई देते है–

''नहीं ब्रह्मांड प्यंड पुनि नाहीं पंचतत्त भी नाहीं।
इला प्यंगुला सुषमन नाहीं ए गुण कहाँ समाहीं।।''

कबीर का रहस्यवाद भौतिक न होकर आध्यात्मिक है। ससीम न होकर असीम है, भावात्मक न होकर साधनात्मक है। सामाजिक न होकर वैयक्तिक है तथा पौराणिक एवं परम्परागत न होकर स्वानुभूतिमूलक है।

◆◆◆

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'कबीर' नामक ग्रंथ के संपादक का नाम लिखिए।
उत्तर–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।

2. कबीर का संबंध हिन्दी साहित्य के इतिहास के किस युग से है?
उत्तर–भक्ति युग या भक्ति काल।

3. कबीर का जन्म कब माना गया है?
उत्तर–कबीर का जन्म संवत् 1455 तदनंतर 1398 ई. के लगभग माना गया है।

4. जनश्रुति के अनुसार कबीर किसके गर्भ से पैदा हुए थे?
उत्तर–एक विधवा ब्राह्मणी से।

5. कबीरदास जुलाहा दम्पत्ति को कहां मिले थे?
उत्तर–लहरतारा नामक तालाब के किनारे से।

6. कबीर का पालन किसने किया था?
उत्तर–नीरू नीमा नामक जुलाहा दम्पति ने।

7. कबीर का व्यवसाय क्या था?
उत्तर–कपड़ा बुनने (जुलाहे) का।

8. कबीर की पत्नी का क्या नाम था?
उत्तर–लोई।

9. कबीर के गुरू कौन थे?
उत्तर–स्वामी रामानन्द।

10. कबीर के बेटे का क्या नाम था?
उत्तर–कमाल।

11. कबीर की पुत्री का क्या नाम था?
उत्तर–कमाली।

12. कबीर कितने वर्षो तक जीवित रहे?
उत्तर–लगभग 120 वर्षो तक।

13. कबीर का निधन कब हुआ था?
उत्तर–संवत 1575 तदनंतर 1518 ई. में।

14. कबीर भक्ति काव्य की किस शाखा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं?

उत्तर—कबीर भक्ति काव्य की सन्त काव्य शाखा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं।

15. कबीर की वाणी के संग्रह ग्रंथ का क्या नाम है?

उत्तर—कबीर की वाणी के संग्रह ग्रन्थ का नाम 'बीजक' है।

16. बीजक के कितने भाग हैं?

उत्तर—कबीर वाणी के ग्रन्थ 'बीजक' के तीन भाग हैं।

17. कबीर की काव्य-रचना 'रमैणी' किस शैली में लिखी गई है?

उत्तर—कबीर की 'रमैनी' दोहा-चौपाई शैली में लिखी गई हैं।

18. कबीर की सबद शीर्षक रचना किस भाषा में रचित है?

उत्तर—कबीर की सबद शीर्षक रचना ब्रजभाषा में रचित है।

19. कबीर के काव्य में साखी किसे कहा गया है?

उत्तर—दोहों को।

20. साखी शब्द का क्या अर्थ है?

उत्तर—साक्षी / गवाह।

21. कबीरदास के समकालीन दो अन्य संत कवियों के नाम लिखें।

उत्तर—रैदास तथा संत पीपा।

22. कबीर ने किस प्रवृत्ति को अपनाया था?

उत्तर—खण्डन मण्डन की प्रवृत्ति को।

23. हजारी प्रसाद ने कबीर की मृत्यु कहाँ बताई है?

उत्तर—मगहर में।

24. कबीर को किस शासक ने मरवाने का प्रयास किया था?

उत्तर—सिकन्दर लोधी।

25. कबीर वाणी के दो सम्पादकों के नाम लिखिए।

उत्तर—कबीर ग्रंथावली—श्याम सुन्दर दास।
कबीर—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।

26. विद्वानों ने कबीर की भाषा को क्या नाम दिया है?

उत्तर—सधुक्कड़ी भाषा।

27. 'कबीर' शब्द का अर्थ क्या है?

उत्तर—महान।

28. कबीर को वाणी का डिक्टेटर किसने कहा है?

उत्तर—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।

29. कबीरदास किस निर्गुण शाखा के प्रतिनिधि संत थे?

उत्तर—ज्ञानमार्गी शाखा।

30. कबीर से पूर्व किन्हीं निर्गुण संतों के नाम लिखो।

उत्तर—ज्ञानदेव तथा नामदेव।

31. कबीर की परम्परा में पड़ने वाले किन्हीं दो सन्तों के नाम लिखो।

उत्तर—धर्मदास तथा गरीबदास।

32. कबीर ईश्वर के किस रूप में विश्वास करते हैं?

उत्तर—कबीर ईश्वर के निर्गुण रूप में विश्वास करते हैं।

33. विद्वानों ने कबीर को कहाँ का निवासी बताया है?

उत्तर—विद्वानों ने कबीर को काशी का निवासी बताया है।

34. कबीरदास ने हिन्दू धर्म के किस मत की प्रशंसा की है?

उत्तर—कबीर ने वैष्णव मत की प्रशंसा की है।

35. कबीर ने ईश्वर भक्ति का प्रमुख साधन किसे बताया है?

उत्तर—कबीर ने नाम स्मरण को ईश्वर भक्ति का प्रमुख साधन बताया है।

36. कबीर ने गोविन्द से बढ़कर किसे माना है?

उत्तर—कबीर ने गुरू को गोविन्द से बढ़कर माना है।

37. कबीर अपने आपको किसका कुत्ता बताते हैं?

उत्तर—कबीर अपने आपको राम कुत्ता बताते हैं।

38. कबीरदास ने माया को क्या कहा है?

उत्तर—महाठग।

39. कबीर के अनुसार माया कैसी वाणी का प्रयोग करती है?

उत्तर—मधुर वाणी।

40. माया हाथ में क्या लेकर घूमती रहती है?

उत्तर—तीन गुणों (सत्व, रजस, तमस) का फंदा लेकर।

41. कबीर के अनुसार माया के प्रभाव से कैसे बचा जा सकता है?

उत्तर—कबीर के अनुसार गुरू के ज्ञान से माया के प्रभाव से बचा जा सकता है।

42. कबीर ने जीवन का सार किसे कहा है?

उत्तर—कबीदास ने ईश्वर के नाम-स्मरण को जीवन का सार कहा है।

43. कबीरदास ने किसे लूटने के लिए प्रेरित किया है?

उत्तर—कबीरदास ने राम के नाम को लूटने की प्रेरणा दी है।

44. कबीरदास ने मानव को कौन सा रस पीने के लिए प्रेरित किया है?

उत्तर—कबीरदास ने मानव को हरि रस पीने के लिए प्रेरित किया है।

45. कबीर किस दार्शनिक मत से संबंधित थे?

उत्तर–अद्वैतवाद।

46. कबीर ने 'बालम' शब्द का प्रयोग किसके लिए किया?

उत्तर–ईश्वर के लिए।

47. कबीर के काव्य की भाषा को पंचमेल खिचड़ी किसने कहा है?

उत्तर–डॉ. श्यामसुन्दर ने।

48. भक्ति को दक्षिण से उत्तर में कौन लाए थे?

उत्तर–रामानंद।

49. 'आदि ग्रंथ' में कबीर की कुल कितनी साखियाँ संकलित हैं?

उत्तर–कुल 203 साखियाँ।

50. कबीर वाणी का प्रथम लिपिकार कौन है?

उत्तर–धर्मदास।

51. निर्गुण काव्य धारा के प्रमुख कवि कौन हैं?

उत्तर–कबीरदास।

52. संत मत के संस्थापक कौन थे?

उत्तर–नामदेव।

53. कबीर की उल्टवासियों पर किसका प्रभाव सर्वाधिक है?

उत्तर–सिद्धों एवं नाथों का।

54. कबीर के राम कौन हैं?

उत्तर–निर्गुण ब्रह्म।

55. कबीर ने शाक्त तथा वैष्णवों में से किस का पक्ष लिया?

उत्तर–वैष्णवों को।

56. कबीर ने माया से बचने के क्या उपाय बताया है?

उत्तर–ईश्वर की भक्ति।

57. कबीर के अनुसार माया दीपक के समान है तो मानव किसके समान है?

उत्तर–मनुष्य पंतगे के समान है।

58. कबीरदास ने पानी और बर्फ के उदाहरण के माध्यम से किसके विषय में बताया है?

उत्तर–कबीरदास ने पानी और बर्फ के उदाहरण के माध्यम से पारब्रह्म के स्वरूप के विषय में बताया है।

59. कौन-सा जन्म मिलना दुर्लभ है?

उत्तर–मानव जन्म मिलना दुर्लभ है।

60. कबीरदास ने माया को कैसी बताया है?

उत्तर–कबीरदास ने माया को दीपक के समान बताया है।

61. कबीरदास ने कैसा धन संचित करने के लिए कहा है?

उत्तर–राम नाम रूपी धन, जो जीवन के अन्तिम समय भी काम आता है।

62. हरि के चरणों में ध्यान लगाने से क्या प्राप्त हो जाता है?

उत्तर–हरि के चरणों में ध्यान लगाने से स्वर्ग प्राप्त हो जाता है।

63. कबीर ने किसे बड़ा मनुष्य कहा है?

उत्तर–कबीर ने सद् कर्म या अच्छे कर्म करने वाले को बड़ा मनुष्य कहा है।

64. कबीरदास ने संसार रूपी सागर से पार उतरने के लिए किसे नाव बताया है?

उत्तर–ईश्वर भक्ति एवं भजन को।

65. कबीरदास मानव को कौन-सा रस पीने को कहा है?

उत्तर–हरि नाम रूपी रस।

66. कबीरदास ने पवित्र जीवात्मा की उपमा किससे दी है?

उत्तर–हंस से।

67. कबीर ने किसके जीवन को श्मशान के समान बताया है?

उत्तर–जिसके जीवन में विरह (आत्म के विरह) का संचार न हो।

68. कबीर दास ने भक्ति के द्वार को कैसा बताया है?

उत्तर–कबीरदास ने भक्ति के द्वार को अत्यन्त संकीर्ण बताया है।

69. 'संत न बाँधे गाठड़ी पेट समाता लेई'–इस पंक्ति में कवि ने संत की किस विशेषता को व्यक्त किया है?

उत्तर–इस पंक्ति के माध्यम से संत की सन्तोषी प्रवृत्ति को व्यक्त किया है।

70. कबीरदास ने अपनी वाणी में कैसी नारी की प्रशंसा की है?

उत्तर–पतिव्रता नारी की।

71. कबीरदास ने 'भाई' शब्द का सम्बोधन किसके लिए किया है?

उत्तर–जनसाधारण के लिए।

72. कबीरदास ने अपनी वाणी में साखियों के अध्यायों को किस नाम से अभिव्यक्त किया है?

उत्तर–अंग के नाम से जैसे-माया को अंग।